# महाजनपद की सामाजिक स्थिति का विश्लेषण

**(Analysis of Social Status of Mahajanapada)**

विधान सिंह

# महाजनपद की सामाजिक स्थिति का विश्लेषण

# महाजनपद की सामाजिक स्थिति का विश्लेषण

## (Analysis of Social Status of Mahajanapada)

विधान सिंह

**भाषा प्रकाशन**

नई दिल्ली - 110002

© प्रकाशक

I.S.B.N. : 978-81-323-5637-0

प्रथम संस्करण : 2021

**भाषा प्रकाशन**

22, प्रकाशदीप बिल्डिंग, अंसारी रोड,
दरियागंज, नई दिल्ली - 110002

द्वारा वर्ल्ड टेक्नोलॉजीज नई दिल्ली के सहयोग से प्रकाशित

# प्रस्तावना

समाज में भिक्षु और ब्राह्मणों का स्थान सर्वोपरि था। उनका कर्म मांगलिक पूजा पाठ करना होता था। आचार्य की अनुपस्थिति में आदेशानुसार उनके शिष्य ब्रह्मचारी पूजा करवाते थे, जैसा कि उज्जयिनी के चित्त और सम्भूत ने तक्षक्षिला में शिक्षा प्राप्त करते समय पूजा पाठ किया था।

पालि-पिटक के अनुसार इस युग के ब्राह्मणों की दो प्रकार की श्रेणियाँ थी। प्रथम श्रेणी उन ब्राह्मणों की थी, जो शास्त्रसम्मत ब्राह्मण-कर्म एवं वेदों का अध्यनाध्यापन करने वाले, पुरोहित एवं तपस्वी थे। दूसरी श्रेणी उन ब्राह्मणों की थी, जो शास्त्र नुमोदित ब्राह्मणोचित कर्मों से विमुख हो गये थे और यह स्वाभाविक भी था, क्योंकि समाज की परिवर्तनशील परिस्थितियों तथा आर्थिक आवश्यकताओं ने अनेक ब्राह्मणों को इसके लिए बाध्य किया होगा, कि वे अपने पैतृक कर्मों अध्यापन एवं पौरोहित्य का त्यागकर अन्य पेशे स्वीकार करें।

बौद्ध एवं जैन साहित्य में क्षत्रियों का स्थान सर्वोपरि था। पालिपिटक से ज्ञात होता है कि राजमंत्री, सेनानायक, प्रशासकीय उच्च पदाधिकारी तथा सामन्त प्रायः क्षत्रिय ही हुआ करते थे, केवल मंत्रिपद में अधिकतर ब्राह्मणों को नियुक्त किया जाता था। क्षत्रिय जाति प्रमुखतः युद्धजीवी थी, परन्तु आर्थिक परिस्थितिवश ब्राह्मणों के समान क्षत्रियों को भी अनेक प्रकार के कर्मक्षेत्रों में प्रवेश करने के लिए बाध्य होना पड़ा और उन्होंने वणिक, हस्तशिल्प, कुम्भकार, गायक-वादक आदि का कर्म भी किया। पालिपिटक में वैश्य वर्ण के लिए वेस्स, गहपति, सेट्टि, कुटुम्बिक इत्यादि संज्ञाएँ प्रयुक्त की गई हैं। वस्तुतः सेट्टि बड़े व्यापारी थे, जिनका राज्य एवं समाज में बड़ा सम्मान था।

पुस्तक लेखन में कई लिखित व अलिखित स्रोतों से मदद ली गई है, मैं उन सभी विज्ञ लेखकों के प्रति अपना आभार प्रकट करता हूँ। आशा करता हूँ कि पुस्तक पाठकों के लिए उपयोगी सिद्ध होगी।

**–लेखक**

# अनुक्रम


| | | |
|---|---|---|
| | *प्रस्तावना* | *v* |
| 1. | **महाजनपद** | **1** |
| | राजधानी | 1 |
| | महाजनपद का विस्तार | 2 |
| | कुरु महाजनपद | 5 |
| | महाजनपदों के प्रमाण | 7 |
| | 16 महाजनपद | 7 |
| | कुरु–जनपद | 14 |
| | उत्तर कौसल और | 19 |
| | कुशावती और | 21 |
| | अंग महाजनपद | 22 |
| | पौराणिक वर्णन | 24 |
| | मत्स्य महाजनपद | 28 |
| | ऋग्वेद में उल्लेख | 29 |
| | ह्वेनसांग का वर्णन | 31 |
| | प्राचीन अवंती वर्तमान उज्जैन | 32 |
| | गांधार महाजनपद | 32 |
| | प्राचीन नाम | 33 |
| | महाजनपद का प्रशासन | 39 |

**2. महाजनपद की सामाजिक स्थिति** **41**
महाजनपद काल का समाज 42
समाज के प्रमुख तत्त्व 49
**3. मगध महाजनपद** **54**
मगध साम्राज्य के उदय का कारण 54
मगध साम्राज्य का उदय 55
मगध की सर्वोच्चता–मुख्य कारक 58
अशोक का कलिंग युद्ध 67
अशोक एवं बौद्ध धर्म 67
अशोक के अभिलेख 70
मौर्य साम्राज्य का पतन 73
शुंग राजवंश 74
शुंगकालीन संस्कृति के प्रमुख तथ्य 74
पुष्यमित्र के उत्तराधिकारी 75
गुप्त वंश की स्थापना 78
चन्द्रगुप्त द्वितीय की विजय यात्रा 81
गुप्तोत्तर बिहार 85
पाल वंश 86
**4. महाजनपद का धार्मिक विकास** **88**
बुद्ध और बौद्ध धर्म 88
बुद्ध का जन्म और युग 89
बुद्ध की जीवनी 92
संगीतियाँ और निकाय 103
बौद्ध धर्म का ह्रास 112
अष्टांगिक मार्ग 116
बोधिसत्त्वयान 121
तीर्थंकर 126
दर्शन 128
**5. महाजनपदों की शासकीय व्यवस्था** **139**
शब्द की उत्पत्ति 140
प्रक्रियाएं और शासन 140

विभिन्न परिभाषाएं 141
राज्य और राजनीति 142
शासन के प्रकार 143
**6. महाजनपदों की अर्थव्यवस्था और व्यापार 148**
सिंधु घाटी सभ्यता 149
प्राचीन और मध्ययुगीन विशेषताएँ 149
ब्रिटिश काल के पूर्व भारत में उद्योग-धंधे 151
आभूषण उद्योग 153
लकड़ी का काम 154
इमारती सामान एवं भवन-निर्माण 155
चमड़ा उद्योग 156
धातु उद्योग 158

# 1

# महाजनपद

प्रारंम्भिक भारतीय इतिहास में छठी शताब्दी ईसापूर्व को परिवर्तनकारी काल के रूप में महत्त्वपूर्ण माना जाता है। यह काल प्राय: प्रारंम्भिक राज्यों, लोहे के बढ़ते प्रयोग और सिक्कों के विकास के लिए जाना जाता है। इसी समय में बौद्ध और जैन सहित अनेक दार्शनिक विचारधाराओं का विकास हुआ। बौद्ध और जैन धर्म के प्रारंम्भिक ग्रंथों में महाजनपद नाम के सोलह राज्यों का विवरण मिलता है। महाजनपदों के नामों की सूची इन ग्रंथों में समान नहीं है, परन्तु वज्जि, मगध, कौसल, कुरु, पांचाल, गांधार और अवन्ति जैसे नाम अक्सर मिलते हैं। इससे यह ज्ञात होता है कि ये महाजनपद महत्त्वपूर्ण महाजनपदों के रूप में जाने जाते होंगे। अधिकांशत: महाजनपदों पर राजा का ही शासन रहता था परन्तु गण और संघ नाम से प्रसिद्ध राज्यों में लोगों का समूह शासन करता था, इस समूह का हर व्यक्ति राजा कहलाता था। भगवान महावीर और भगवान बुद्ध इन्हीं गणों से संबन्धित थे। वज्जि संघ की ही तरह कुछ राज्यों में जमीन सहित आर्थिक स्रोतों पर राजा और गण सामूहिक नियंत्रण रखते थे। स्रोतों की कमी के कारण इन राज्यों के इतिहास लिखे नहीं जा सके परन्तु ऐसे राज्य सम्भवत: एक हजार साल तक बने रहे थे।

## राजधानी

हर एक महाजनपद की एक राजधानी थी, जिसे किले से घेरा दिया जाता था। किलेबंद राजधानी की देखभाल, सेना और नौकरशाही के लिए भारी धन की जरूरत होती थी। सम्भवत: छठी शताब्दी ईसा पूर्व से ब्राह्मणों ने संस्कृत

भाषा में धर्मशास्त्र ग्रंथों की रचना प्रारम्भ की। इन ग्रन्थों में राजा व प्रजा के लिए नियमों का निर्धारण किया गया और यह उम्मीद की जाती थी कि राजा क्षत्रिय वर्ण के ही होंगे। शासक किसानों, व्यापारियों और शिल्पकारों से कर तथा भेंट वसूल करते थे। संपत्ति जुटाने का एक उपाय पड़ोसी राज्यों पर आक्रमण कर धन एकत्र करना भी था। कुछ राज्य अपनी स्थायी सेनाएँ और नौकरशाही तंत्र भी रखते थे और कुछ राज्य सहायक-सेना पर निर्भर करते थे, जिन्हें कृषक वर्ग से नियुक्त किया जाता था।

## महाजनपद का विस्तार

### *अवन्ति जनपद*

बुद्धकाल में अवन्ति जनपद शक्ति और विस्तार की दृष्टि से भारत का प्रबलतम् और विशालतम् जनपद था। सर्वप्रथम ऋग्वेद की एक ऋचा में अवन्ति शब्द का उल्लेख मिलता है, जिसके आधार पर विद्वान इस नगर के नामकरण की संयोजना करते हैं। ब्राह्मण और आरण्यकों में भी यह नाम आता है। किन्तु राज्य अथवा स्थान के नाम की दृष्टि से अवन्ति का प्रथम उल्लेख पाणिनी की अष्टाध्यायी के सूत्र 'स्त्रियामवन्ति-कुरूभ्यश्च' में हुआ है। इसके पश्चात् अवन्ति और अवन्ती (ह्रस्व और दीर्घ ईकारान्त) नामों का प्रचलन हो गया।

भौगोलिक दृष्टि से अवन्ति राज्य का विस्तार नर्मदा नदी की घाटी में मान्धाता नगर से लेकर महेश्वर (इंदौर) तक फैला हुआ था।

**हरिहरनिवास द्विवेदी** और **विजय गोविन्द** द्विवेदी ने मध्यभारत के अवन्ति जनपद की सीमाओं का उल्लेख किया है कि उत्तर मध्यभारत में उस समय वन्य प्रदेश था और ग्वालियर, नरवर तथा भेलसा के मध्य चम्बल, सिन्ध और बेतवा के बीच जो विन्ध्य शृंखलाएँ हैं वे विन्ध्याटवी कही जाती थीं। आगे दशार्ण प्रदेश आता था, जो दशार्ण नदी (वर्तमान धसान) से सिंचित था।

दीपवंश के अनुसार राजा अच्चुतगामी ने उज्जयिनी नगरी की स्थापना की थी। चीनी यात्री हेनसांग ने सातवीं शताब्दी में अपने यात्रा विवरण में उज्जयिनी (उ-शे-ये-ना) के नगर विस्तार का उल्लेख किया है। उसने इस नगर का विस्तार तीस ली (करीब 5 मील) बताया है और कहा है कि उस समय यह एक घनी बस्ती वाली नगरी थी। सम्पूर्ण उज्जयिनी प्रदेश का विस्तार चीनी युआन ने 6000 ली या करीब एक हजार मील बताया है।

## *चेदि जनपद ( चेति, चैद्य )*

भगवान बुद्ध के समय (ई.पूर्व छठी शताब्दी) में उत्तरी भारत का अधिकांश भाग, जिन सोलह महाजनपदों में विभक्त था, चेदि उनमें से एक था। इसकी राजधानी सोत्थिवती (शुक्तिमती) थी, जो शुक्तिमती (केन) नदी के तट पर थी। यह महाभारत की शुक्तिमती से निश्चय ही अभिन्न है। इस शुक्तिमती को मध्यप्रदेश में स्थित माना जाता है। सुत्तनिपात की अट्ठकथा (परमत्थजोतिका) में कहा गया है कि चेति जनपद में 'चेति' या 'चेतिय' नाम धारण करने वाले राजाओं ने शासन किया था, इसलिये उसका नाम चेति पड़ा। कालान्तर में यह चेदि जनपद, चैद्य, डाहल (डभाला, डाहाल, डाहल, डहाला, डहला) और त्रिपुरी आदि पर्यावाची नामों से विख्यात हुआ।

साहित्यिक साक्ष्य में चेदि देश का प्रारम्भिक इतिहास ऋग्वैदिक काल से प्राप्त होता है, जिसके एक दानस्तुति सूत्त में चैद्य (चेदि का राजा) कशु द्वारा ब्रह्मातिथि नामक ऋषि को सौ ऊँट और एक हजार गायें दान देने का उल्लेख मिलता हैं। वाल्मीकि रामायण में चेदि देश का उल्लेख नहीं मिलता। महाभारत में चेदि की गणना भारत के प्रमुख जनपदों में की गई है। उपरिचर वसु ने चेदि पर विजय प्राप्त की और पृथ्वी पर इन्द्रमह का प्रवर्तन किया। शिशुपाल चेदि का राजा था, जिसका वध श्रीकृष्ण द्वारा किया गया। तत्पश्चात् उसका पुत्र धृष्टकेतु चेदि देश का राजा बना। इस देश का राजा सुबाहु, राजा नल का समसामयिक था और दमयन्ती ने यहाँ सुखपूर्वक निवास किया था। पाण्डव नकुल की पत्नी करेणुमती चेदि देश की राजकुमारी थी। महाभारत युद्ध में चेदि नरेश धृष्टकेतु ने पाण्डवों का साथ दिया था। धृष्टकेतु की मृत्यु पश्चात् उसका अनुज शरभ राजा हुआ। शरभ के पश्चात् चेदि देश के राजाओं की वंशावली ज्ञात नहीं है। पुराणों से भी स्पष्ट होता है कि विदर्भ के पौत्र और केशिक के पुत्र चिदि ने यमुना के दक्षिण में चैद्य वंश की स्थापना की।

भौगोलिक दृष्टि से चेदि जनपद की सीमाएँ कालानुसार बदलती रही हैं। फिर भी ज्ञात साक्ष्यों के आधार पर स्पष्ट होता है कि चेदि जनपद वत्स जनपद के दक्षिण में, यमुना नदी के पास, उसकी दक्षिण दिशा में स्थित प्रदेश था। इसके पूर्व में काशी जनपद, दक्षिण में विंध्य पर्वत, पश्चिम में अवन्ति और उत्तर-पश्चिम में मच्छ (मत्स्य) और सूरसेन जनपद थे। चेदि जनपद का सबसे समीपी पड़ोसी वंस (वत्स) जनपद ही था। इसीलिए दीघनिकाय के जमवसभसुत्त में चेदि और वंस जनपद का साथ-साथ वर्णन किया गया है "चेतिवंसेसु"।

चेदि जनपद का विस्तार साधारणतः आधुनिक बुन्देलखण्ड और उसके आस-पास के प्रदेश के बराबर माना जा सकता है। चेतिय जातक में चेदि देश के राजाओं की वंशावली दी गई है, जिसमें महासम्मत और मन्धाता (मान्धाता) राजाओं को उनके आदिपूर्वज बताया गया है। इसी जातक में अन्तिम चेदि-नरेश उपचर (अपचर) के पाँच पुत्रों ने हत्थिपुर (हस्तिनापुर), अस्सपुर (अंग), सीहपुर (उत्तरी पँजाब), उत्तरपाँचाल (अहिच्छत्र- उत्तरपांचाल की राजधानी) और दद्दरपुर (हिमवन्त प्रदेश में संभवतः दर्दिस्तान) नगरों के बसाए जाने का उल्लेख है।

प्राचीन चेदि देश की दक्षिणी सीमा के संबंध में विद्वानों में मतभेद है। **पार्जिटर** के मतानुसार चेदि देश उत्तर में यमुना के दक्षिणी तट से दक्षिण में मालवा के पठार और बुन्देलखण्ड की पहाड़ियों तक तथा दक्षिण-पूर्व में चित्रकूट के उत्तर-पूर्व में बहने वाली कार्वी नदी से उत्तर-पश्चिम में चम्बल नदी तक फैले हुए विस्तृत प्रदेश का नाम था।

चेदि जनपद के अन्तर्गत अनेक प्रसिद्ध नगरों का उल्लेख हुआ है, जहाँ भगवान बुद्ध स्वयं विहार करते हुए गये थे। इतना ही नहीं, कुछ प्रसिद्ध नगरों में वर्षावास भी किया था। इसकी सीमाएँ नेपाल के समीपवर्ती क्षेत्र तक थी। चेदि जनपद के अन्तर्गत ऐसे अनेक नगर थे, जिनका सम्बन्ध बुद्ध या उनके शिष्यों से रहा है।

जैसे-सहजाति (सहजातिय), सहचनिका (सहंचनिका), बालकलोणकार, पाचीन वंस (मिग), पारिलेय्यक, भद्दवती (भद्दवतिका), चालिका, जन्तुगाम इत्यादि महत्त्वपूर्ण व्यापारिक नगर थे।

- इसमें से सहजातिया व सहजाति नगर (इलाहाबाद के पास भीटा) में भगवान बुद्ध ने चेतिय लोगों को उपदेश दिया था।
- बालकलोणकर ग्राम में बुद्ध के रुकने का उल्लेख मिलता है।
- पारिलेय्यक नगर (कौशाम्बी के पास) के रक्षित वनखण्ड में बुद्ध ने दसवाँ वर्षावास किया था।
- चालिका ग्राम के समीप चालिक या चालिय पर्वत पर बुद्ध ने तेरहवाँ, आठरहवाँ, और उन्नीसवाँ वर्षावास किया था।

अतः चेदि जनपद बौद्ध धर्म का एक बड़ा केन्द्र था जहाँ भगवान बुद्ध ने उपदेश दिए।

## कुरु महाजनपद

कुरु उत्तरी लौह युग के भारत में एक वैदिक इंडो-आर्यन आदिवासी संघ का नाम था, जिसमें दिल्ली, हरियाणा, पंजाब और उत्तर प्रदेश के पश्चिमी भाग (दोआब का क्षेत्र, प्रयाग तक) शामिल थे।), जो मध्य वैदिक काल (सी. 1200-सी 900 ईसा पूर्व) में दिखाई दिया और भारतीय उपमहाद्वीप में पहले दर्ज राज्य-स्तरीय समाज में विकसित हुआ।

कुरु साम्राज्य ने निर्णायक रूप से प्रारंभिक वैदिक काल की वैदिक विरासत को बदल दिया, वैदिक भजनों को संग्रह में व्यवस्थित किया, और नए अनुष्ठानों को विकसित किया, जिन्होंने भारतीय सभ्यता में श्रुत संस्कार के रूप में अपना स्थान प्राप्त किया, तथाकथित 'शास्त्रीय संश्लेषण' में योगदान दिया। यह परीक्षित और जनमेजय के शासनकाल के दौरान मध्य वैदिक काल का प्रमुख राजनीतिक और सांस्कृतिक केंद्र बन गया, लेकिन बाद के वैदिक काल (सी. 900 - सी. 500 बीसीई) के दौरान इसका महत्त्व कम हो गया और यह 'कुछ' हो गया। 5 वीं शताब्दी ईसा पूर्व में महाजनपद काल से एक बैकवाटर'। हालांकि, कौरवों के बारे में परंपराएं और किंवदंतियां वैदिक काल के बाद में जारी रहीं, जो महाभारत महाकाव्य के लिए आधार प्रदान करती हैं।

## *16 महाजनपदों का इतिहास*

प्राचीन भारत के 16 महाजनपदों के बारे में जानने से पहले यह जानना भी जरूरी है कि महाजनपद काल कब प्रारम्भ होता है और महाजनपद काल से पहले के समय को क्या कहा जाता था।

हड़प्पा सभ्यता के पश्चात् का काल ऋग्वेदिक काल कहलाता है, जिसका समय 1500 ई. पू. से 1000 ई. पू. है तथा 1000 ई.पू. से 600 ई.पू. तक का काल उत्तरवैदिक काल कहलाता है और उसके बाद जो समय शुरू होता है वह महाजनपद काल कहलाता है यानी महाजनपद की शुरुआत 600 ई.पू. में होती है। इस काल में छोटे-छोटे कबिलाई राज्यों के स्थान पर क्षेत्रीय राज्यों की स्थापना की प्रवृत्ति शुरू हुई, जिसका पूर्ण विकास 6 वीं शताब्दी ई. पू. तक हो जाता है।

महाजनपद काल के बारे में जानकारी सबसे पहले हमें सूत्र साहित्यों से मिलती है। वैदिक साहित्यों को आसानी से समझने के लिए उन्हें संक्षिप्त करने

के लिए सूत्र साहित्य की रचना की गयी थी ओर यही सूत्र साहित्य वेदांग के नाम से जाने जाते हैं। वैदिक साहित्यों का विभाजन 6 अंगों में हुआ था, इस प्रकार वेदांगों की संख्या 6 है। अष्टाध्यायी वेदोत्तर संस्कृत साहित्य की सबसे बड़ी रचना है, जिसकी रचना महर्षि **पाणिनि** ने की थी। **पास्क** ने निरुक्त नामक ग्रंथ की रचना की जो कि शास्त्रीय संगीत संस्कृत का सर्वाधिक प्राचीन ग्रंथ है। सूत्र काल में सामाजिक स्थिति में काफी बदलाव देखने को मिलता है। सूत्र काल में वर्ण जातियों में परिवर्तित हो गए और अब जातियों का आधार कर्म न होकर जन्म हो गया। पहले विद्वत्ता के अनुसार कर्म निर्धारित होते थे लेकिन अब जन्म के आधार पर निर्धारित होने लगा।

समाज तीन वर्गों में बंट गया ब्राह्मण, क्षत्रिय ओर वैश्य(शुद्र)। ब्राह्मण और क्षत्रियों को द्विज तथा शूद्रों को चांडाल कहा जाता था। समाज में शूद्रों की स्थिति बड़ी ही दयनीय थी, उन्हें अस्पृश्य माना जाता था। शूद्र जाति को नगर से बाहर रखा जाता था और यहीं से ही अश्पृश्यता का दौर शुरू होता है, जो वर्तमान भारत में भी देखने को मिलता है। अश्पृश्यता इतनी ज्यादा प्रभावी थी कि यदि किसी शूद्र को मन्दिर के आस-पास भी देख लिया जाता था तो इसे अपशुगन माना जाता था ओर उसे पीटकर भगा दिया जाता था अथवा उसकी हत्या कर दी जाती थी।

गृह सूत्र में 16 संस्कारों के बारे में बताया गया है तथा विवाह के 8 प्रकारों का भी वर्णन मिलता है। गृह सूत्र में बताया गया है कि इस काल में स्त्रियों की स्थिति उत्तरवैदिक काल से भी अधिक दयनीय हो गयी थी। परंतु हड़प्पा काल में स्त्रियों की स्थिति अच्छी थी। इसके पश्चात् ऋग्वैदिक काल, उत्तरवैदिक काल और महाजनपद काल के आते आते समाज में स्त्रियों की स्थिति बहुत खराब हो गयी थी।

इस प्रकार यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि महाजनपद काल में समाज में निचले तबके के लोगों की स्थिति बहुत ज्यादा दयनीय हो गयी और यही कारण था कि शूद्र समाज के लोग हिन्दू धर्म से विमुख होकर बुद्ध की शरण में चले गए थे और बौद्ध धर्म अपना लिया था।

सूत्र काल में सबसे पहले सिक्कों का प्रचलन देखने को मिलता है इन सिक्कों को आहत सिक्के या पंचमार्क सिक्के कहा जाता था। ये सिक्के मुख्यत: चांदी के होते थे। इन सिक्कों पर सूर्य, चंद्र या पीपल वृक्ष की आकृति होती थी।

## महाजनपदों के प्रमाण

16 महाजनपदों के प्रमाण मुख्यत: बौद्ध व जैन ग्रन्थों में मिलते हैं। इन ग्रंथों में महाजनपदों का सर्वाधिक उल्लेख बौद्ध ग्रंथ अंगुत्तरनिकाय व जैन ग्रंथ भगवती सूत्र में मिलता है।

महाजनपद 16 थे लेकिन इन सब का एक-दूसरे में विलय हो गया और सबसे शक्तिशाली महाजनपद के रूप में जो उभरकर सामने आया वह था मगध।

## 16 महाजनपद

### *1. काशी महाजनपद*

बनारस (वाराणसी) के आप-पास का क्षेत्र को ही काशी कहा जाता था। काशी का शासक ब्रह्मदत्त था। काशी का सबसे पहला उल्लेख अर्थर्ववेद में मिलता है। काशी का कौसल राज्य के साथ हमेशा संघर्ष चलता रहता था। (कौसल राज्य का नाम कोशल्या से पड़ा जो भगवान श्री राम की माता थी, जो अवध यानी अयोध्या से थीं)। कौसल के राजा दीक्षित थे। इन दोनों राज्यों के बीच एक निर्णायक युद्ध भी होता है, जिसमें राजा दीक्षित की हार होती है तथा कौसल राज्य का काशी में विलय हो जाता है। कई वर्षों बाद कौसल में एक राजा होता है कंश जो विद्रोह कर देता है, जो पूरी सत्ता को पलटकर रख देता है ओर काशी को फिर से कौसल में मिला लेता है।

### *2. कौसल महाजनपद*

कौसल की राजधानी श्रावस्ती थी। श्रावस्ती बहराइच, फैजाबाद व गोंडा के क्षेत्रों में बसा हुआ था। इस समय यहां का राजा प्रसेनजित था जो अपनी दानवीरता के लिए बहुत प्रसिद्ध था। राजा प्रसेनजित ने तक्षशिला से शिक्षा प्राप्त की थी, तक्षशिला गांधार (वर्तमान का पाकिस्तान) के पास था जो विश्व का पहला विश्वविद्यालय था। प्रसेनजित अपनी दानवीरता के लिए प्रसिद्ध था उसने ब्राह्मणों को दो नगर दान में दे दिए थे। आगे चलकर कौसल बहुत ही शक्तिशाली राज्य बन जाता है। कौसल और मगध के बीच हमेशा युद्ध चलता रहता था। मगध का राजा अजातशत्रु था जो बिम्बिसार का पुत्र था। इन दोनों के बीच एक निर्णायक युद्ध भी होता है, जिसमें अजातशत्रु बंदी बना लिया जाता है। अजातशत्रु बहुत ही शक्तिशाली राजा था परन्तु वह प्रसेनजित के आगे टिक नहीं पाता है

और ऐसी स्थिति में अजातशत्रु को प्रसेनजित की पुत्री वजीरा से विवाह करना पड़ता है।

रिश्ते में प्रसेनजित अजातशत्रु का मामा था, अजातशत्रु की माँ यानि बिम्बिसार की पत्नी महाकौसला राजा प्रसेनजित की बहन थी। इस प्रकार अपने मामा की लड़की वजीरा से अजातशत्रु की शादी हो जाती है। इन दोनों के बीच पहले से ही प्रेम प्रसंग चल रहा होता है। इस प्रकार दोनों राज्यों के बीच वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित होने के कारण प्रसेनजित अजातशत्रु को काशी दान में दे देता है। प्रसेनजित वृद्धावस्था में शाक्य नगर में बुद्ध की शरण में चला जाता है। जैसे ही वह कौसल छोड़कर जाता है उसकी अनुपस्थिति में कौसल में क्रांति हो जाती है, लेकिन जब प्रसेनजित वापिस कौसल आता है और सहायता मांगने के लिए अजातशत्रु के पास जाता है तो रास्ते में ही प्रसेनजित की मृत्यु हो जाती है। ऐसे में कौसल की गद्दी खाली हो जाती है और वहां कोई राजा बनने के योग्य नहीं रहता है और इस प्रकार कौसल का विलय भी मगध में कर दिया जाता है।

इस प्रकार इतिहास में मगध ही सबसे बड़े साम्राज्य के रूप में उभरकर सामने आता है क्योंकि काशी और कौसल के विलय के बाद बाकी के महाजनपद भी अंतत: मगध में विलय हो जाते हैं।

### *3. अंग महाजनपद*

अंग की राजधानी चंपा होती है। इसमें आधुनिक भागलपुर और मुंगेर का क्षेत्र आता है। कौसल के राजा बिम्बिसार (अजातशत्रु से पहले) के समय अंग ने बिम्बिसार की अधीनता स्वीकार कर ली थी और अंग को भी कौसल में मिला लिया गया था।

### *4. मगध महाजनपद*

मगध की राजधानी गिरिव्रज एवं राजगृह थी। इसमें आधुनिक पटना और गया के क्षेत्र आते हैं। पहली बौद्ध महासभा राजगृह में सप्तपर्णि नामक गुफा में होती है। मगध का सबसे प्रथम राजा वृहद्रथ होता है। ये बड़े ही संयोग की बात है कि मगध का प्रथम राजा भी वृहद्रथ होता और अंतिम राजा भी कई सालों बाद वृहद्रथ नाम का ही होता है। बिम्बिसार और अजातशत्रु के समय मगध की प्रसिद्धि होती है। इनके समय में मगध बहुत बड़ा राज्य बन जाता है। इनके समय

में मगध इतना शक्तिशाली हो जाता है कि धीरे-धीरे करके इसके पड़ोसी राज्य मगध में विलीन हो जाते हैं।

### *5. वज्जि महाजनपद*

इसमें कबिले शामिल थे। ज्ञात रहे कि इससे पहले लगभग सभी राज्यों में कबीले शामिल थे, कई कबीले मिलकर जनपद का निर्माण करते हैं और कई जनपद मिलकर महाजनपद का निर्माण करते हैं। वज्जि में दो प्रकार के कबीले होते हैं-विदेह और लिच्छवी। विदेह के राजा जनक थे, जिन्हें मिथिला नरेश कहा जाता है, मिथिला को हम जनकपुरी के नाम से भी जानते हैं। विदेह का अन्तिम राजा कलार होता है। कलार के बारे में कहा जाता है कि यह एक ब्राह्मण कन्या का अपमान कर देता है, जिसके कारण इसे श्राप मिलता है और यह वंश और राज्य सहित नष्ट हो जाता है। राजा जनक के समय विदेह राज्य को बहुत प्रसिद्धि मिलती है।

लिच्छवि राज्य के लोग बहुत ही स्वाधीनता प्रिय थे तथा युद्ध करने में बड़े ही तेज-तर्रार थे। लिच्छवियों की राजधानी वैशाली थी। इसी वैशाली में ही महावीर स्वामी का जन्म हुआ था। लिच्छवि के राजा चेटक थे। चेटक की बहिन त्रिशला थीं जो महावीर स्वामी की माँ थीं यानि चेटक महावीर स्वामी के मामा थे। चेटक की एक पुत्री थी छलना(चलना), जिसकी शादी बिम्बिसार से होती है। पीछे हमने आपको बताया था बिम्बिसार की पत्नी महाकौसला के बारे में जो कि उनकी पहली पत्नी थी जबकि छलना उनकी दूसरी पत्नी थी। बिम्बिसार ने अपने जीवन में कई शादियां की थी। लिच्छवि बुद्ध के अनुयायी थे। महावीर स्वामी का जन्म यहाँ जरूर होता है, परन्तु वे उम्र में बुद्ध से छोटे होते हैं। महावीर स्वामी से पहले ही बुद्ध प्रसिद्ध हो जाते हैं इसलिए लिच्छवी के लोग बुद्ध के ही अनुयायी रहते हैं। दूसरी बौद्ध महासभा वज्जि की राजधानी वैशाली में होती है। वैशाली वर्तमान का मुजफ्फरनगर, जिला है और यह विश्व का प्रथम गणतंत्र था।

### *6. मल्ल महाजनपद*

मल्ल एक प्रजातंत्रीय राज्य था जो दो भागों में बंटा होता है-कुशीनगर और पावा। कुशीनगर आज के कस्यां गांव को कहा जाता है, जो वर्तमान गोरखपुर में पड़ता है। पावा को पड़रौना कहा जाता है और ये भी गोरखपुर में पड़ता है। पूरा

का पूरा मल्ल देवरिया क्षेत्र में पड़ता है। बुद्ध ने अंतिम भोजन इसी पावा में ही किया था।

### 7. चेदि महाजनपद

चेदि आधुनिक बुंदेलखण्ड को कहा जाता है उस समय इसकी राजधानी सोत्थिवती या शक्तिमती थी। महाभारत काल में यहाँ का राजा शिशुपाल था जो कृष्ण जी की बुआ का लड़का था। वह बहुत ही अत्याचारी और दुर्जन किस्म का था, जिसका श्री कृष्ण ने सुदर्शन चक्र से वध किया था।

### 8. वत्स महाजनपद

वर्तमान इलाहाबाद का क्षेत्र वत्स महाजनपद में आता था। वत्स की राजधानी कोशाम्बी थी। छठी शताब्दी ई.पू. में यहाँ का राजा उदयन था जो बड़ा ही दुर्जन था, जिसे शिकार का बड़ा शौक था। इसके लिए उसने वन भी लगवाया था। इसके अपने पड़ोसी राज्यों के साथ सम्बन्ध अच्छे नहीं थे। मगध के राजा अजातशत्रु और अवंति के राजा प्रद्योत के साथ उसका निरंतर युद्ध चलता रहता था। एक युद्ध के दौरान उदयन ने मगध के राजा के साथ विवाह संधि कर ली। बाद में, उदयन के साथ युद्ध में अवन्ति की हार हो जाती है, जिसके कारण अवन्ति को उदयन के साथ विवाह संधि करनी पड़ती है। हालाँकि प्रद्योत भी एक खँखार राजा था, जिसके कारण उसे चंडप्रद्योत भी कहा जाता था लेकिन यहाँ उसे हार का सामना करना पड़ता है क्योंकि उदयन के साथ मगध का राजा अजातशत्रु और विशाल मगध सेना थी। हार के बदले में प्रद्योत को अपनी कन्या वासवदत्ता का विवाह उदयन से करना पड़ता है। ये वही वासदत्ता है, जिस पर भास नामक लेखक ने नाटक लिखा है, जिसका नाम है 'स्वपन वासदत्ता'। उदयन पहले तो बौद्ध धर्म का विरोधी था लेकिन जब बुद्ध के सम्पर्क में आया तो वह इसका अनुयायी बन जाता है और बौद्ध धर्म को राष्ट्र धर्म घोषित कर देता है।

### 9. अवन्ति महाजनपद

आधुनिक मालवा व मध्य प्रदेश का कुछ हिस्सा आता है। अवन्ति दो भागों में बंटा हुआ था उत्तरी अवन्ति और दक्षिणी अवन्ति। उत्तरी अवन्ति उज्जैन को कहा जाता था (उज्जैन में क्षिप्रा नदी यानि मालवा की गंगा के किनारे

महाकालेश्वर का मंदिर है)। दक्षिणी अवन्ति महिष्यति को कहा जाता था। यहाँ का राजा प्रद्योत था। इसने अपनी पुत्री का विवाह कोशाम्बी के राजा उदयन से कर दिया था। मथुरा के राजा शूरसेन से भी प्रद्योत के वैवाहिक सम्बन्ध थे। बौद्ध धर्म को अपनाकर प्रद्योत भी बुद्ध का अनुयायी बन जाता है।

### *10. कुरू महाजनपद*

वर्तमान दिल्ली और मेरठ के क्षेत्र कुरु राज्य में आते थे, जिसकी राजधानी इन्द्रप्रस्थ थी और इसकी स्थापना अर्जुन ने की थी। बुद्ध काल में यहाँ का राजा कौरव्य था। महाजनपद काल में कुरु की इतनी प्रतिष्ठा और महत्त्व नहीं था, जितना कि वैदिक काल में था। महाभारत काल में कुरु और पांचाल की प्रतिष्ठा चरम सीमा पर थी। यह राज्य अपने आचार और सदाचार के लिए जाना जाता था।

### *11. पांचाल महाजनपद*

रूहेलखंड के बरेली, बदायँ और फर्रूखाबाद के क्षेत्र को प्राचीन समय के पांचाल के नाम से जाना जाता था। पांचाल भी दो भागों में बंटा हुआ था –उत्तरी पांचाल और दक्षिणी पांचाल। उत्तरी पांचाल की राजधानी अहिच्छल और दक्षिणी पांचाल की काम्पिल्य थी। द्रोपदी पांचाल राज्य से ही थी। वैदिक काल में पांचाल का बड़ा ही नाम होता है। परन्तु महाजनपद काल के आते-आते पांचाल का महत्त्व ना के बराबर हो जाता है।

### *12. मत्स्य महाजनपद*

वर्तमान जयपुर के आस-पास का क्षेत्र मत्स्य महाजनपद के अंतर्गत आता था। इस राज्य का संस्थापक विराट था तथा इसकी राजधानी विराटनगर थी। वैदिक काल में यहाँ पांडवों ने 13 वर्षों का वनवास काटा था।

### *13. शूरसेन महाजनपद*

आधुनिक मथुरा और ब्रजमण्डल के आस-पास के क्षेत्र शूरसेन महाजनपद के अंतर्गत आते थे। शूरसेन की राजधानी मथुरा थी। बुद्ध के समय में यहाँ का राजा अवंतिपुत्र था।

### 14. अस्सक या अश्मक महाजनपद

यह दक्षिणी भारत का एकमात्र महाजनपद था। इसकी राजधानी पोटील या पोतना थी। यह गोदावरी नदी के तट पर स्थित था।

### 15. गांधार महाजनपद

गांधार की राजधानी तक्षशिला थी। तक्षशिला विश्व का पहला विश्वविद्यालय है। इस महाजनपद के अंतर्गत रावलपिंडी, पेशावर, तक्षशिला और कश्मीर के क्षेत्र आते थे। रामायण के अनुसार इस नगर की स्थापना भरत पुत्र तक्ष ने की थी। राजा पुष्कर सरित बुद्ध का समकालीन राजा था, जिसने अवन्ति के शासक चंडप्रद्योत को युद्ध में पराजित किया था।

### 16. कम्बोज महाजनपद

कम्बोज उत्तरापथ में स्थित था। कम्बोज की राजधानी राजपुर या हाटक थी। कहीं-कहीं द्वारका के राजधानी होने के उल्लेख मिलते हैं।

छठी शताब्दी ई.पू. में गंगा-जमुना दोआब (दो नदियों के बीच का क्षेत्र) और बिहार में लोहे का प्रयोग होने से बिहार काफी अच्छी स्थिति में पहुँच गया था। धीरे-धीरे मगध इतना शक्तिशाली हो गया था कि सभी महाजनपदों का विलय मगध में हो जाता है। सभी 16 राज्यों के मिलने से इतिहास में एक बहुत बड़ा साम्राज्य उभरकर सामने आता है—मगध साम्राज्य।

### इतिहास -

कुरु साम्राज्य को समझने के लिए मुख्य समकालीन स्रोत प्राचीन धार्मिक ग्रंथ हैं, जिसमें इस अवधि के दौरान जीवन का विवरण और ऐतिहासिक व्यक्तियों और घटनाओं के बारे में उल्लेख है।

ऋग्वेद के समय के बाद वैदिक साहित्य में कौरवों का प्रमुख स्थान है। यहाँ के कुरु गंगा-यमुना दोआब और आधुनिक हरियाणा पर शासन करते हुए प्रारंभिक भारत-आर्यों की एक शाखा के रूप में दिखाई देते हैं। बाद के वैदिक काल में ध्यान पंजाब से हटकर हरियाणा और दोआब में, और इस तरह कुरु वंश में गया।

यह प्रवृत्ति हरियाणा और दोआब क्षेत्र में पेंटेड ग्रे वेयर (PGW) बस्तियों की बढ़ती संख्या और आकार से मेल खाती है। कुरुक्षेत्र, जिले के पुरातात्विक

सर्वेक्षणों में 1000 से 600 ईसा पूर्व की अवधि के लिए तीन-स्तरीय पदानुक्रम एक अधिक जटिल (यद्यपि अभी तक पूरी तरह से शहरीकृत नहीं है) का पता चला है, एक जटिल प्रमुखता का सुझाव देते हुए या प्रारंभिक अवस्था में, दो-स्तरीय निपटान के विपरीत है। पैटर्न (कुछ 'मामूली केंद्रीय स्थानों के साथ', सरल प्रमुखों के अस्तित्त्व का सुझाव देते हुए) गंगा घाटी के बाकी हिस्सों में। यद्यपि अधिकांश पीजीडब्ल्यू साइटें छोटे खेती वाले गांव थे, कई पीजीडब्ल्यू साइट अपेक्षाकृत बड़ी बस्तियों के रूप में उभरीं, जिन्हें शहरों के रूप में जाना जा सकता है, इनमें से सबसे बड़े किले को ढलान या खंदक और लकड़ी के पाले से ढकी हुई धरती से बनाया गया था, जो कि 600 ईसा पूर्व के बाद बड़े शहरों में उभरे विस्तृत किलेबंदी की तुलना में छोटा और सरल था।

दस राजाओं के युद्ध के बाद, भरत और पुरु जनजातियों के बीच गठबंधन और विलय के परिणामस्वरूप मध्य वैदिक काल में कुरु जनजाति का गठन किया गया था। कुरुक्षेत्र क्षेत्र में अपनी सत्ता के केंद्र के साथ, कौरवों ने वैदिक काल का पहला राजनीतिक केंद्र बनाया, और लगभग 1200 से 800 ईसा पूर्व तक प्रमुख थे। पहली कुरु की राजधानी हरियाणा में थी, जिसकी पहचान हरियाणा में आधुनिक असंध से हुई थी। बाद में साहित्य इंद्रप्रस्थ (आधुनिक दिल्ली) और हस्तिनापुर को मुख्य कुरु शहरों के रूप में संदर्भित करता है।

अथर्ववेद (XX.127) परीक्षित, 'कौरवों के राजा' की प्रशंसा करता है, जो एक संपन्न, समृद्ध क्षेत्र के महान शासक के रूप में है। अन्य वैदिक ग्रंथों, जैसे कि शतपथ ब्राह्मण, परीक्षित के पुत्र जनमेजय को एक महान विजेता के रूप में स्मरण करते हैं, जिन्होंने अश्वमेध (अश्व-यज्ञ) किया था। इन दो कुरु राजाओं ने कुरु राज्य के एकीकरण और श्रुत अनुष्ठानों के विकास में एक निर्णायक भूमिका निभाई और वे बाद की किंवदंतियों और परंपराओं (जैसे, महाभारत में) में महत्त्वपूर्ण व्यक्ति के रूप में दिखाई देते हैं।

गैर-वैदिक सलवा (या सालवी) जनजाति द्वारा पराजित होने के बाद कौरवों में गिरावट आई और वैदिक संस्कृति का केंद्र उत्तर प्रदेश में पांचाल क्षेत्र में बदल गया, (जिसका राजा केयिन दल्लभ्य स्वर्गीय कुरु राजा का भतीजा था)। वैदिक संस्कृत साहित्य के बाद, कौरवों की राजधानी को बाद में कौशाम्बी में स्थानांतरित कर दिया गया था, हस्तिनापुर में बाढ़ के साथ-साथ स्वयं कुरु परिवार में उथल-पुथल के कारण नष्ट हो जाने के बाद। पश्चात् वैदिक काल (6 वीं शताब्दी ईसा पूर्व तक) में, कुरु और वत्स जनपदों में कुरु वंश विकसित

हुआ, जो क्रमशः ऊपरी दोआब/दिल्ली/हरियाणा और निचले दोआब पर शासन करते थे। कुरु वंश की वत्स शाखा आगे कौशाम्बी और मथुरा में शाखाओं में विभाजित हो गई।

कुरु महाजनपद पौराणिक 16 महाजनपदों में से एक था। इसमें आधुनिक हरियाणा तथा दिल्ली का यमुना नदी के पश्चिम वाला अंश शामिल था। इसकी राजधानी आधुनिक दिल्ली (इन्द्रप्रस्थ) थी। पुराण वर्णित प्रसिद्ध राजा कुरु के नाम पर ही इसका यह नाम पड़ा था।

### *तथ्य*

एक प्राचीन देश, जिसका हिमालय के उत्तर का भाग 'उत्तर कुरु' और हिमालय के दक्षिण का भाग 'दक्षिण कुरु' के नाम से विख्यात था। भागवत के अनुसार युधिष्ठर का राजसूय यज्ञ और श्रीकृष्ण का रुक्मिणी के साथ विवाह यहीं हुआ था।

अग्नीध के एक पुत्र का नाम 'कुरु' था, जिनकी स्त्री मेरूकन्या प्रसिद्ध है।

वैदिक साहित्य में उल्लिखित एक प्रसिद्ध चंद्रवंशी राजा था। कुरु के पिता का नाम संवरण तथा माता का नाम तपती था। शुभांगी तथा वाहिनी नामक इनकी दो स्त्रियाँ थीं। वाहिनी के पाँच पुत्र हुए, जिनमें कनिष्ठ का नाम जनमेजय था, जिसके वंशज धृतराष्ट्र और पांडु हुए। सामान्यतः धृतराष्ट्र की संतान को ही 'कौरव' संज्ञा दी जाती है, पर कुरु के वंशज कौरव-पांडवों दोनों ही थे।

## कुरु-जनपद

प्राचीन भारत का प्रसिद्ध जनपद, जिसकी स्थिति वर्तमान दिल्ली-मेरठ प्रदेश में थी। महाभारतकाल में हस्तिनापुर कुरु-जनपद की राजधानी थी। महाभारत से ज्ञात होता है कि कुरु की प्राचीन राजधानी खांडवप्रस्थ थी। कुरु-श्रवण नामक व्यक्ति का उल्लेख ऋग्वेद में है

अथर्ववेद संहिता 20, 127, 8 में कौरव्य या कुरु देश के राजा का उल्लेख है।

महाभारत के अनेक वर्णनों से विदित होता है कि कुरुजांगल, कुरु और कुरुक्षेत्र इस विशाल जनपद के तीन मुख्य भाग थे। कुरुजांगल इस प्रदेश के वन्यभाग का नाम था, जिसका विस्तार सरस्वती तट पर स्थित काम्यकवन तक

था। खांडव वन भी, जिसे पांडवों ने जला कर उसके स्थान पर इन्द्रप्रस्थ नगर बसाया था, इसी जंगली भाग में सम्मिलित था और यह वर्तमान नई दिल्ली के पुराने किले और कुतुब के आसपास रहा होगा।

मुख्य कुरु जनपद हस्तिनापुर (जिला मेरठ, उ.प्र.) के निकट था। कुरुक्षेत्र की सीमा तैत्तरीय आरण्यक में इस प्रकार है- इसके दक्षिण में खांडव, उत्तर में तूर्घ्न और पश्चिम में परिणाह स्थित था। संभव है ये सब विभिन्न वनों के नाम थे। कुरु जनपद में वर्तमान थानेसर, दिल्ली और उत्तरी गंगा द्वाबा (मेरठ-बिजनौर, जिलों के भाग) शामिल थे। पपंचसूदनी नामक ग्रंथ में वर्णित अनुश्रुति के अनुसार इलावंशीय कौरव, मूल रूप से हिमालय के उत्तर में स्थित प्रदेश (या उत्तरकुरु) के रहने वाले थे। कालांतर में उनके भारत में आकर बस जाने के कारण उनका नया निवासस्थान भी कुरु देश ही कहलाने लगा। इसे उनके मूल निवास से भिन्न नाम न देकर कुरु ही कहा गया। केवल उत्तर और दक्षिण शब्द कुरु के पहले जोड़ कर उनकी भिन्नता का निर्देश किया गया–

महाभारत में भारतीय कुरु-जनपदों को दक्षिण कुरु कहा गया है और उत्तर-कुरुओं के साथ ही उनका उल्लेख भी है।

अंगुत्तर-निकाय में 'सोलह महाजनपदों की सूची में कुरु का भी नाम है, जिससे इस जनपद की महत्ता का काल बुद्ध तथा उसके पूर्ववर्ती समय तक प्रमाणित होता है।

महासुत-सोम-जातक के अनुसार कुरु जनपद का विस्तार तीन सौ कोस था। जातकों में कुरु की राजधानी इन्द्रप्रस्थ में बताई गई है। हत्थिनापुर या हस्तिनापुर का उल्लेख भी जातकों में है। ऐसा जान पड़ता है कि इस काल के पश्चात् और मगध की बढ़ती हुई शक्ति के फलस्वरूप, जिसका पूर्ण विकास मौर्य साम्राज्य की स्थापना के साथ हुआ, कुरु, जिसकी राजधानी इस्तिनापुर राजा निचक्षु के समय में गंगा में बह गई थी और जिसे छोड़ कर इस राजा ने वत्स जनपद में जाकर अपनी राजधानी कौशांबी में बनाई थी, धीरे-धीरे विस्मृति के गर्त में विलीन हो गया। इस तथ्य का ज्ञान हमें जैन उत्तराध्यायन सूत्र से होता है, जिससे बुद्धकाल में कुरुप्रदेश में कई छोटे-छोटे राज्यों का अस्तित्त्व ज्ञात होता है।

## *पांचाल महाजनपद*

पांचाल पौराणिक 16 महाजनपदों में से एक है। पश्चिमी उत्तर प्रदेश के बरेली, बदायूँ और फर्रूखाबाद, जिलों से परिवृत प्रदेश का प्राचीन नाम है। यह

कानपुर से वाराणसी के बीच के गंगा के मैदान में फैला हुआ था। इसकी भी दो शाखाएँ थीं–

पहली शाखा उत्तर पांचाल की राजधानी अहिच्छत्र थी।

दूसरी शाखा दक्षिण पांचाल की राजधानी कांपिल्य थी।

पांडवों की पत्नी द्रौपदी को पांचाल की राजकुमारी होने के कारण पांचाली भी कहा गया।

**कनिंघम** के अनुसार वर्तमान रुहेलखंड उत्तर पांचाल और दोआबा दक्षिण पांचाल था।

पांचाल वर्तमान रुहेलखंड का प्राचीन नाम था। इसका यह नाम राजा हर्यश्व के पांच पुत्रों के कारण पड़ा था।

संहितोपनिषद ब्राह्मण में पांचाल के प्राच्य पांचाल भाग (पूर्वी भाग) का भी उल्लेख है। शतपथ ब्राह्मण में पांचाल की परिवका या परिचका नामक नगरी का उल्लेख है, जो वेबर के अनुसार महाभारत की एकचका है।

**श्री राय चौधरी** का मत है कि पांचाल पाँच प्राचीन कुलों का सामूहिक नाम था। वे ये थे–

किवि,
केशी,
सृंजय,
तुर्वसस,
सोमक।

## *ग्रंथों में उल्लेख*

ब्रह्मपुराण तथा मत्स्य पुराण में इन्हें मुदगल सृंजय, बृहदिषु, यवीनर और कृमीलाश्व कहा गया है। पांचालों और कुरु जनपदों में परस्पर लड़ाई-झगड़े चलते रहते थे। महाभारत के आदिपर्व से ज्ञात होता है कि पांडवों के गुरु द्रोणाचार्य ने अर्जुन की सहायता से पांचालराज द्रुपद को हराकर उसके पास केवल दक्षिण पांचाल (जिसकी राजधानी कांपिल्य थी) रहने दिया और उत्तर पांचाल को हस्तगत कर लिया था।

द्रोणाचार्य ने परास्त होने पर कैद में डाले हुए पांचाल राज द्रुपद से कहा–'मैंने राज्य प्राप्ति के लिए तुम्हारे साथ युद्ध किया है। अब गंगा के उत्तरतटवर्ती प्रदेश का मैं, और दक्षिण तट के तुम राजा होंगे'। इस प्रकार

महाभारत-काल में पांचाल, गंगा के उत्तरी और दक्षिण दोनों तटों पर बसा हुआ था। द्रुपद पहले अहिच्छत्र या छत्रवती नगरी में रहते थे। इन्हें जीतने के लिए द्रोण ने कौरवों और पांडवों को पांचाल भेजा था।

## *द्रौपदी का स्वयंवर*

महाभारत आदिपर्व में वर्णित द्रौपदी का स्वयंवर कांपिल्य में हुआ था। दक्षिण पांचाल की सीमा गंगा नदी के दक्षिणी तट से लेकर चम्बल नदी या चर्मण्वती नदी तक थी। विष्णु पुराण में कुरु-पांचालों को मध्यदेशीय कहा गया है। पांचाल निवासियों को भीमसेन ने अपनी पूर्व देश की दिग्विजय-यात्रा में अनेक प्रकार से समझा-बुझा कर वश में कर लिया था।

## *शूरसेन महाजनपद*

शूरसेन महाजनपद उत्तरी-भारत का प्रसिद्ध जनपद था, जिसकी राजधानी मथुरा में थी। इस प्रदेश का नाम संभवतः मधुरापुरी (मथुरा) के शासक, लवणासुर के वधोपरान्त, शत्रुन ने अपने पुत्र शूरसेन के नाम पर रखा था। शूरसेन जनपद, मथुरा मंडल अथवा ब्रजमंडल का यह नाम कैसे और किस के कारण पड़ा, यह निश्चित नहीं है। बौद्ध ग्रंथ **अंगुत्तरनिकाय** के अनुसार कुल सोलह 16 महाजनपद थे - अवन्ति, अश्मक या अस्सक, अंग, कम्बोज, काशी, कुरु, कौसल, गांधार, चेदि, वज्जि या वृजि, वत्स या वंश, पांचाल, मगध, मत्स्य या मच्छ, मल्ल, सुरसेन या शूरसेन। **डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल** का मत है कि लगभग एक सहस्र ईस्वी पूर्व से पाँच सौ ईस्वी तक के युग को भारतीय इतिहास में जनपद या महाजनपद-युग कहा जाता है। कुछ इतिहासकारों के मतानुसार यह एक कबीला था, जिसने ईसा पूर्व 600-700 के आस-पास ब्रज पर अपना अधिकार कर लिया था और स्थानीय संस्कारों से मेल बढ़ाने के लिए कृष्ण पूजा शुरू कर दी।

## *वाल्मीकि रामायण*

शूरसेन ने पुरानी मथुरा के स्थान पर नई नगरी बसाई थी, जिसका वर्णन वाल्मीकि रामायण के उत्तरकांड में है।

शूरसेन-जनपदीयों का नाम भी वाल्मीकि रामायण में आया है- 'तत्र म्लेच्छान्पुलिंदांश्च सूरसेनांस्तथैव च, प्रस्थलान् भरतांश्चौय कुरूंश्च यह मद्रकैरू'।

वाल्मीकि रामायण में मथुरा को शूरसेना कहा गया है––'भविष्यति पुरी रम्या शूरसेना न संशयरू'।

महाभारत में शूरसेन-जनपद पर सहदेव की विजय का उल्लेख है- 'स शूरसेनान् कार्त्स्न्येन पूर्वमेवाजयत् प्रभुः, मत्स्यराजंच कौरव्यो वशेचक्रे बलाद् बली'।

कालिदास ने रघुवंश में शूरसेनाधिपति सुषेण का वर्णन किया है- 'सा शूरसेनाधिपतिं सुषेणमुद्दिश्य लोकान्तरगीतकीर्तिम्, आचारशुद्धोभयवंशदीपं शुद्धान्तरक्ष्या जगदे कुमारी'।

इसकी राजधानी मथुरा का उल्लेख कालिदास ने इसके आगे रघुवंश में किया है।

श्रीमद् भागवत में यदुराज शूरसेन का उल्लेख है, जिसका राज्य शूरसेन-प्रदेश में कहा गया है।

मथुरा उसकी राजधानी थी- 'शूरसेना यदुपतिर्मथुरामावसन् पुरीम्, माथुरान्छूरसेनांश्च विषयान् बुभुजे पुरा, राजधानी ततः साभूत सर्वयादभूभुजाम्, मथुरा भगवान् यत्र नित्यं संनिहितों हरिः'।

विष्णु पुराण में शूरसेन के निवासियों को ही संभवतः शूर कहा गया है और इनका आभीरों के साथ उल्लेख है- 'तथापरान्ताः सौराष्ट्राः शूराभीरास्तथार्बुदाः'।

## *कौसल महाजनपद*

उत्तरी भारत का प्रसिद्ध जनपद, जिसकी राजधानी विश्वविश्रुत नगरी अयोध्या थी। उत्तर प्रदेश के फैजाबाद, जिला, गोंडा और बहराइच के क्षेत्र शामिल थे। वाल्मीकि रामायण में इसका उल्लेख है–

कौसलो नाम मुदितः स्फीतो जनपदो महान।
निविष्ट–सरयूतीरे प्रभूत धनधान्यवान्।।

## *ऋग्वेद में वर्णन*

यह जनपद सरयू (गंगा नदी की सहायक नदी) के तटवर्ती प्रदेश में बसा हुआ था। सरयू के किनारे बसी हुई बस्ती का सर्वप्रथम उल्लेख ऋग्वेद में हो सकता है। यही बस्ती आगे चलकर अयोध्या के रूप में विकसित हो गयी। इस उद्धरण में चित्ररथ को इस बस्ती का प्रमुख बताया गया है। शायद इसी व्यक्ति का उल्लेख वाल्मीकि रामायण में भी है।

### *रामायण काल*

रामायण-काल में कौसल राज्य की दक्षिणी सीमा पर वेदश्रुति नदी बहती थी। श्री रामचंद्रजी ने अयोध्या से वन के लिए जाते समय गोमती नदी को पार करने के पहले ही कौसल की सीमा को पार कर लिया था। वेदश्रुति तथा गोमती पार करने का उल्लेख अयोध्याकाण्ड में है और तत्पश्चात् स्यंदिका या सई नदी को पार करने के पश्चात् श्री राम ने पीछे छूटे हुए अनेक जनपदों वाले तथा मनु द्वारा इक्ष्वाकु को दिए गए समृद्धिशाली (कौसल) राज्य की भूमि सीता को दिखाई। जान पड़ता है कि रामायण-काल में ही यह देश दो जनपदों में विभक्त था-

## उत्तर कौसल और

### *दक्षिण कौसल*

राजा दशरथ की रानी कौशल्या संभवतः दक्षिण कौसल (रायपुर-बिलासपुर के, जिले, मध्य प्रदेश) की राजकन्या थी। कालिदास ने रघुवंश में अयोध्या को उत्तर कौसल की राजधानी कहा है। रामायण-काल में अयोध्या बहुत ही समृद्धिशाली नगरी थी।

### *दिग्विजय-यात्रा*

महाभारत में भीमसेन की दिग्विजय-यात्रा में कौसल-नरेश बृहद्बल की पराजय का उल्लेख है। अंगुत्तरनिकाय के अनुसार बुद्धकाल से पहले कौसल की गणना उत्तर भारत के सोलह जनपदों में थी। इस समय विदेह और कौसल की सीमा पर सदानीरा (गंडकी) नदी बहती थी। बुद्ध के समय कौसल का राजा प्रसेनजित था, जिसने अपनी पुत्री कौसला का विवाह मगध-नरेश बिंबिसार के साथ किया था। काशी का राज्य जो इस समय कौसल के अंतर्गत था, राजकुमारी को दहेज में उसकी प्रसाधन सामग्री के व्यय के लिए दिया गया था। इस समय कौसल की राजधानी श्रावस्ती में थी। अयोध्या का निकटवर्ती उपनगर साकेत बौद्धकाल का प्रसिद्ध नगर था।

### *मगध-साम्राज्य में विलीन*

जातकों में कौसल के एक अन्य नगर सेतव्या का भी उल्लेख है। छठी और पाँचवी शती ई. पू. में कौसल मगध के समान ही शक्तिशाली राज्य था किन्तु

धीरे-धीरे मगध का महत्त्व बढ़ता गया और मौर्य-साम्राज्य की स्थापना के साथ कौसल मगध-साम्राज्य ही का एक भाग बन गया। इसके पश्चात् इतिहास में कौसल की जनपद के रूप में अधिक महत्ता नहीं दिखाई देती यद्यपि इसका नाम गुप्तकाल तक साहित्य में प्रचलित था।

विष्णु पुराण के इस उद्धरण में सम्भवत: गुप्तकाल के पूर्ववर्ती काल में कौसल का अन्य जनपदों के साथ ही देवरक्षित नामक राजा द्वारा शासित होने का वर्णन है। यह दक्षिण कौसल भी हो सकता है। गुप्तसम्राट समुद्रगुप्त की प्रयाग प्रशस्ति में 'कौसलक महेंद्र' या कौसल (दक्षिण कौसल) के महेन्द्र का उल्लेख है, जिस पर समुद्रगुप्त ने विजय प्राप्त की थी। कुछ विदेशी विद्वानों (सिलवेन लेवी, जीन प्रेज़्ीलुस्की) के मत में कौसल आस्ट्रिक भाषा का शब्द है। आस्ट्रिक लोग भारत में द्रविड़ों से भी पूर्व आकर बसे थे।

### *मल्ल महाजनपद*

यह पौराणिक 16 महाजनपदों में से एक था। यह भी एक गणसंघ था और पूर्वी उत्तर प्रदेश के इलाके इसके क्षेत्र थे। मल्ल देश का सर्वप्रथम निश्चित उल्लेख शायद वाल्मीकि रामायण में इस प्रकार है कि राम चन्द्र जी ने लक्ष्मण-पुत्र चंद्रकेतु के लिए मल्ल देश की भूमि में चंद्रकान्ता नामक पुरी बसाई, जो स्वर्ग के समान दिव्य थी।

### *महाभारत में उल्लेख*

महाभारत में मल्ल देश के विषय में कई उल्लेख हैं–

'मल्ला–सुदेष्णारूप्रह्लादा माहिका शशिकास्तथा',

'अधिराज्यकुशाद्याश्च मल्लराष्ट्रं च केवलम्',

'ततो गोपालकक्षं च सोत्तरानपि कौसलान्, मल्लानामधिपं चौव पार्थिवं चाजयत् प्रभु:'।

### *बौद्ध-ग्रन्थ में उल्लेख*

बौद्ध-ग्रन्थ अंगुत्तरनिकाय में मल्ल जनपद का उत्तरी भारत के सोलह जनपदों में उल्लेख है। बौद्ध साहित्य में मल्ल देश की दो राजधानियों का वर्णन है–

## कुशावती और

### *पावा*

महापरिनिब्बानसुत्त के वर्णन के अनुसार गौतम बुद्ध के समय में कुसीनारा या कुशीनगर के निकट मल्लों का शालवन हिरण्यवती नदी (गंडक) के तट पर स्थित था।

मनुस्मृति में मल्लों को व्रात्य क्षत्रियों में परिगणित किया गया है, क्योंकि ये बौद्ध धर्म के दृढ़ अनुयायी थे।

कुसजातक में ओक्काक (इक्ष्वाकु) नामक मल्ल-नरेश का उल्लेख है। इक्ष्वाकुवंशीय नरेशों का परंपरागत राज्य अयोध्या या कौसल प्रदेश में था। राय **चौधरी** का मत है कि मल्ल राष्ट्र में बिंबिसार के पूर्व गणराज्य स्थापित हो गया था। इससे पहले यहाँ के अनेक राजाओं के नाम मिलते हैं। बौद्ध साहित्य में मल्ल जनपद के भोग नगर, अनुप्रिय तथा उरुवेलकप्प नामक नगरों के नाम मिलते हैं। बौद्ध तथा जैन साहित्य में मल्लों और लिच्छवियों की प्रतिद्वंद्विता के अनेक उल्लेख हैं– बुद्ध के कुशीनगर में निर्वाण प्राप्त करने के उपरान्त, उनके अस्थि-अवशेषों का एक भाग मल्लों को मिला था, जिसके संस्मरणार्थ उन्होंने कुशीनगर में एक स्तूप या चैत्य का निर्माण किया था। इसके खंडहर कसिया में मिले हैं। इस स्थान से प्राप्त एक ताम्रपट्टलेख से यह तथ्य प्रमाणित भी होता है–'(परिनि) वार्ण चैत्यताम्रपट्ट इति'। मगध के राजनीतिक उत्कर्ष के समय मल्ल जनपद इसी साम्राज्य की विस्तरणशील सत्ता के सामने न टिक सका।

चौथी शती ई. पू. में चंद्रगुप्त मौर्य के महान् साम्राज्य में विलीन हो गया। जैन ग्रंथ 'भगवती सूत्र' में मोलि या मालि नाम से मल्ल-जनपद का उल्लेख है। बौद्ध काल में मल्ल राष्ट्र की स्थिति उत्तर प्रदेश के पूर्वी और बिहार के पश्चिमी भाग के अंतर्गत समझनी चाहिए।

### *काशी*

पौराणिक 16 महाजनपदों में से एक। वाराणसी का दूसरा नाम 'काशी' प्राचीन काल में एक जनपद के रूप में प्रख्यात था और वाराणसी उसकी राजधानी थी।

इसकी पुष्टि पाँचवीं शताब्दी में भारत आने वाले चीनी यात्री **फाह्यान** के यात्रा विवरण से भी होती है।

हरिवंशपुराण में उल्लेख आया है कि 'काशी' को बसाने वाले पुरुरवा के वंशज राजा 'काश' थे। अतः उनके वंशज 'काशि' कहलाए। संभव है इसके आधार पर ही इस जनपद का नाम 'काशी' पड़ा हो।

काशी नामकरण से संबद्ध एक पौराणिक मिथक भी उपलब्ध है। उल्लेख है कि विष्णु ने पार्वती के मुक्तामय कुंडल गिर जाने से इस क्षेत्र को मुक्त क्षेत्र की संज्ञा दी और इसकी अकथनीय परम ज्योति के कारण तीर्थ का नामकरण काशी किया।

## अंग महाजनपद

अंग देश या 'अंग महाजनपद' प्राचीन जनपद था, जो बिहार राज्य के वर्तमान भागलपुर और मुंगेर, जिलों का समवर्ती था। अंग की राजधानी चंपा थी। आज भी भागलपुर के एक मुहल्ले का नाम चंपानगर है। महाभारत की परंपरा के अनुसार अंग के वृहद्रथ और अन्य राजाओं ने मगध को जीता था, पीछे बिंबिसार और मगध की बढ़ती हुई साम्राज्य लिप्सा का वह स्वयं शिकार हुआ। राजा दशरथ के मित्र लोमपाद और महाभारत के अंगराज कर्ण ने वहाँ राज किया था। बौद्ध ग्रंथ 'अंगुत्तरनिकाय' में भारत के बुद्ध पूर्व सोलह जनपदों में अंग की गणना हुई है।

### *इतिहास*

अंग देश का सर्वप्रथम नामोल्लेख अथर्ववेद 5, 22, 14 में है-

'गंधारिभ्यं मूजवद्भयोऽङ्गेभ्यो मगधेभ्य–प्रैष्यन् जनमिव शेवधिं तवमानं परिदद्मसि।'

इस अप्रशंसात्मक कथन से सूचित होता है कि अथर्ववेद के रचनाकाल (अथवा उत्तर वैदिक काल) तक अंग, मगध की भांति ही, आर्य-सभ्यता के प्रसार के बाहर था, जिसकी सीमा तब तक पंजाब से लेकर उत्तर प्रदेश तक ही थी। महाभारतकाल में अंग और मगध एक ही राज्य के दो भाग थे। शांति पर्व 29, 35 (अंगं बृहद्रथं चैव मृतं सृंजय शुश्रुम) में मगधराज जरासंध के पिता बृहद्रथ को ही अंग का शासक बताया गया है। शांति पर्व 5, 6-7 ('प्रीत्या ददौ स कर्णाय मालिनीं नगरमथ, अंगेषु नरशार्दूल स राजासीत् सपत्नजित। पालयामास चंपां च कर्णः परबलार्दन, दुर्योधनस्यानुमते तवापि विदितं तथा') से स्पष्ट है कि

जरासंध ने कर्ण को अंगस्थित मालिनी या चंपापुरी देकर वहां का राजा मान लिया था। तत्पश्चात् दुर्योधन ने कर्ण को अंगराज घोषित कर दिया था।

## *वैदिक काल में*

वैदिक काल की स्थिति के प्रतिकूल, महाभारत के समय, अंग आर्य-सभ्यता के प्रभाव में पूर्णरूप से आ गया था और पंजाब का ही एक भाग- मद्र- इस समय आर्यसंस्कृति से बहिष्कृत समझा जाता था। महाभारत के अनुसार अंगदेश की नींव राजा अंग ने डाली थी। संभवतः ऐतरेय ब्राह्मण 8, 22 में उल्लिखित अंग-वैरोचन ही अंगराज्य का संस्थापक था। जातक-कथाओं तथा बौद्धसाहित्य के अन्य ग्रन्थों से ज्ञात होता है कि गौतमबुद्ध से पूर्व, अंग की गणना उत्तरभारत के षोडश जनपदों में थी। इस काल में अंग की राजधानी चंपानगरी थी। अंगनगर या चंपा का उल्लेख बुद्धचरित 27, 11 में भी है। पूर्वबुद्धकाल में अंग तथा मगध में राज्यसत्ता के लिए सदा शत्रुता रही। जैनसूत्र- उपासकदशा में अंग तथा उसके पड़ोसी देशों की मगध के साथ होने वाली शत्रुता का आभास मिलता है। प्रज्ञापणा-सूत्र में अन्य जनपदों के साथ अंग का भी उल्लेख है तथा अंग और बंग को आर्यजनों का महत्त्वपूर्ण स्थान बताया गया है। अपने ऐश्वर्यकाल में अंग के राजाओं का मगध पर भी अधिकार था जैसा कि विधुरपंडितजातक (काँवेल 6, 133) के उस उल्लेख से प्रकट होता है, जिसमें मगध की राजधानी राजगृह को अंगदेश का ही एक नगर बताया गया है। किंतु इस स्थिति का विपर्यय होने में अधिक समय न लगा और मगध के राजकुमार बिंबिसार ने अंगराज ब्रह्मदत्त को मारकर उसका राज्य मगध में मिला लिया। बिंबिसार अपने पिता की मृत्यु तक अंग का शासक भी रहा था।

## *मौर्य काल में*

जैन-ग्रंथों में बिंबिसार के पुत्र कुणिक अजातशत्रु को अंग और चंपा का राजा बताया गया है। मौर्यकाल में अंग अवश्य ही मगध के महान् साम्राज्य के अंतर्गत था। कालिदास ने रघु. 6, 27 में अंगराज का उल्लेख इंदुमती-स्वयंवर के प्रसंग में मगध-नरेश के ठीक पश्चात् किया है, जिससे प्रतीत होता है कि अंग की प्रतिष्ठा पूर्वगुप्तकाल में मगध से कुछ ही कम रही होगी। रघु. 6, 27 में ही अंगराज्य के प्रशिक्षित हाथियों का मनोहर वर्णन है- 'जगाद चौनामयमंगनाथः सुरांगनाप्रार्थित यौवनश्रीः विनीतनागः किलसूत्रकारैरेन्दं पदं भूमिगतोऽपि भुंक्ते'।

विष्णु पुराण अंश 4, अध्याय 18 में अंगवंशीय राजाओं का उल्लेख है। कथासरित्सागर 44, 9 से सूचित होता है कि ग्यारहवीं शती ई. में अंगदेश का विस्तार समुद्रतट (बंगाल की खाड़ी) तक था क्योंकि अंग का एक नगर विटंकपुर समुद्र के किनारे ही बसा था।

## पौराणिक वर्णन

महाभारत ग्रन्थ में प्रसंग है कि हस्तिनापुर में कौरव राजकुमारों के युद्ध कौसल के प्रदर्शन हेतु आचार्य द्रोण ने एक प्रतियोगिता का आयोजन किया। अर्जुन इस प्रतियोगिता में सर्वोच्च प्रतिभाशाली धनुर्धर के रूप में उभरा। कर्ण ने इस प्रतियोगिता में अर्जुन को द्वन्द्व युद्ध के लिए चुनौती दी। किन्तु कृपाचार्य ने यह कहकर ठुकरा दिया कि कर्ण कोई राजकुमार नहीं है। इसलिए इस प्रतियोगिता में भाग नहीं ले सकता। तब दुर्योधन ने कर्ण को अंग देश का राजा घोषित कर दिया था।

### *मगध महाजनपद*

मगध प्राचीन भारत के सोलह महाजनपद में से एक था। बौद्ध काल तथा परवर्तीकाल में उत्तरी भारत का सबसे अधिक शक्तिशाली जनपद था। इसकी स्थिति स्थूल रूप से दक्षिण बिहार के प्रदेश में थी। आधुनिक पटना तथा गया, जिला इसमें शामिल थे। इसकी राजधानी गिरिव्रज थी। भगवान बुद्ध के पूर्व बृहद्रथ तथा जरासंध यहाँ के प्रतिष्ठित राजा थे। अभी इस नाम से बिहार में एक र्पमडल है – मगध प्रमंडल। मगध का सर्वप्रथम उल्लेख अथर्ववेद में मिलता है। इससे सूचित होता है कि प्रायः उत्तर वैदिक काल तक मगध, आर्य सभ्यता के प्रभाव क्षेत्र के बाहर था। अभियान चिन्तामणि के अनुसार मगध को कीकट कहा गया है। मगध बुद्धकालीन समय में एक शक्तिशाली राजतन्त्रों में एक था। यह दक्षिणी बिहार में स्थित था जो कालान्तर में उत्तर भारत का सर्वाधिक शक्तिशाली महाजनपद बन गया। यह गौरवमयी इतिहास और राजनीतिक एवं धार्मिकता का विश्व केन्द्र बन गया।

मगध महाजनपद की सीमा उत्तर में गंगा से दक्षिण में विन्ध्य पर्वत तक, पूर्व में चम्पा से पश्चिम में सोन नदी तक विस्तृत थीं। मगध का सर्वप्रथम उल्लेख से सूचित होता है कि विश्वस्फटिक नामक राजा ने मगध में प्रथम बार वर्णों की परंपरा प्रचलित करके आर्य सभ्यता का प्रचार किया था। वाजसेनीय

संहिता में मागधों या मगध के चारणों का उल्लेख है। मगध की प्राचीन राजधानी राजगृह थी। यह पाँच पहाड़ियों से घिरा नगर था। कालान्तर में मगध की राजधानी पाटलिपुत्र में स्थापित हुई। मगध राज्य में तत्कालीन शक्तिशाली राज्य कौसल, वत्स व अवन्ति को अपने जनपद में मिला लिया। इस प्रकार मगध का विस्तार अखण्ड भारत के रूप में हो गया और प्राचीन मगध का इतिहास ही भारत का इतिहास बना।

मगध राज्य का विस्तार उत्तर में गंगा, पश्चिम में सोन तथा दक्षिण में जगंलाच्छादित पठारी प्रदेश तक था। पटना और गया, जिला का क्षेत्र प्राचीनकाल में मगध के नाम से जाना जाता था। मगध प्राचीनकाल से ही राजनीतिक उत्थान, पतन एवं सामाजिक-धार्मिक जागृति का केन्द्र बिन्दु रहा है। मगध बुद्ध के समकालीन एक शक्तिकाली व संगठित राजतन्त्र था। गौतम बुद्ध के समय में मगध में बिंबिसार और तत्पश्चात् उसके पुत्र अजातशत्रु का राज था। इस समय मगध की कौसल जनपद से बड़ी अनबन थी यद्यपि कौसल-नरेश प्रसेनजित की कन्या का विवाह बिंबिसार से हुआ था। इस विवाह के फलस्वरूप काशी का जनपद मगधराज को दहेज के रूप में मिला था। यह मगध के उत्कर्ष का समय था और परवर्ती शतियों में इस जनपद की शक्ति बराबर बढ़ती रही।

चौथी शती ई.पू. में मगध के शासक नव नंद थे। इनके बाद चन्द्रगुप्त मौर्य तथा अशोक के राज्यकाल में मगध के प्रभावशाली राज्य की शक्ति अपने उच्चतम गौरव के शिखर पर पहुंची हुई थी और मगध की राजधानी पाटलिपुत्र भारत भर की राजनीतिक सत्ता का केंद्र बिंदु थी। मगध का महत्त्व इसके पश्चात् भी कई सदियों तक बना रहा और गुप्त काल के प्रारंभ में काफी समय तक गुप्त साम्राज्य की राजधानी पाटलिपुत्र ही में रही। जान पड़ता है कि कालिदास के समय (संभवतः 5वीं शती ई.) में भी मगध की प्रतिष्ठा पूर्ववत् थी क्योंकि रघुवंश में इंदुमती के स्वयंवर के प्रसंग में मगधनरेश परंतप का भारत के सब राजाओं में सर्वप्रथम उल्लेख किया गया है। इसी प्रसंग में मगध-नरेश की राजधानी को कालिदास ने पुष्पपुर में बताया है।

गुप्त साम्राज्य की अवनति के साथ-साथ ही मगध की प्रतिष्ठा भी कम हो चली और छठी-सातवीं शतियों के पश्चात् मगध भारत का एक छोटा सा प्रांत मात्र रह गया। मध्यकाल में यह बिहार नामक प्रांत में विलीन हो गया और मगध का पूर्व गौरव इतिहास का विषय बन गया। जैन साहित्य में अनेक स्थलों पर मगध तथा उसकी राजधानी राजगृह (प्राकृत रायगिह) का उल्लेख है। कालान्तर

में मगध का उत्तरोत्तर विकास होता गया और मगध का इतिहास (भारतीय संस्कृति और सभ्यता के विकास के प्रमुख स्तम्भ के रूप में) सम्पूर्ण भारतवर्ष का इतिहास बन गया। बिम्बिसार ने हर्यक वंश की स्थापना 544 ई. पू. में की। इसके साथ ही राजनीतिक शक्ति के रूप में बिहार का सर्वप्रथम उदय हुआ। बिम्बिसार को मगध साम्राज्य का वास्तविक संस्थापक-राजा माना जाता है। बिम्बिसार ने गिरिव्रज (राजगीर) को अपनी राजधानी बनायी। इसके वैवाहिक सम्बन्धों (कौसल, वैशाली एवं पंजाब) की नीति अपनाकर अपने साम्राज्य का विस्तार किया। यह ' मगध' नामक क्षेत्र मध्य बिहार का एक भौगोलिक क्षेत्र हैं। राजनीतिक एवं प्रशासनिक मानचित्र में यह मुख्यत: मगध प्रमंडल के रूप में है। इस मगध प्रमंडल के, जिले हैं- गया, औरंगाबाद, जहानाबाद, नवादा। प्रमंडल का मुख्यालय गया में ही है और यही है मगधांचल का सांस्कृतिक, राजनीतिक तथा व्यावसायिक केन्द्र। बिहार राज्य और नेपाल के तराई क्षेत्र में बोली जाने वाली बिहारी भाषाओं में मागधी को मागधी प्राकृत का आधुनिक प्रतिनिधि माना जाता है।

इस क्षेत्र में विभिन्न प्रकार की कलाएं प्राचीनकाल से ही हैं और यही कालांतर में कलाकारों की रोजी-रोटी तथा व्यवसाय का मुख्य साधन बनीं। हालांकि आधुनिक कलाओं, उत्पादों और व्यवसायों से पारंपरिक व्यवसाय प्रभावित जरूर हुआ है, फिर भी इन व्यवसायों एवं पारंपरिक उत्पादों का अपना महत्त्व एवं बाजार में पूछ भी है। इसलिए यह कहना कि 'आज के पारंपरिक उद्योगों पर संकट ही संकट है' पूर्णत: उचित नहीं है।

प्रमुख पारंपरिक उद्योगों में वस्त्र-उद्योग, मिष्टान्न उद्योग, बांस से उत्पादित वस्तु उद्योग, पाषाण एवं काष्ठ मूर्ति उद्योग, वाद्य यंत्र उद्योग, ऊन एवं कंबल उद्योग, हस्तकला के अन्य उद्योग, शराब एवं ताड़ी उद्योग तथा गिट्टी उद्योग मुख्य हैं। उपरोक्त सभी पारंपरिक गुरु चेले वाले परंपरा चक्र से ही चलते आ रहे हैं और इसी परंपरा के तहत इसमें आवश्यक अनावश्यक रुपांतरण होते रहे हैं।

## *वृज्जि महाजनपद*

उत्तर बिहार का बौद्ध कालीन गणराज्य, जिसे बौद्ध साहित्य में वृज्जि कहा गया है। वास्तव में यह गणराज्य एक राज्य-संघ का अंग था, जिसके आठ अन्य सदस्य (अट्ठकुल) थे, जिनमें विदेह, लिच्छवी तथा ज्ञातृकगण प्रसिद्ध थे।

वृज्जियों का उल्लेख पाणिनि में है। कौटिल्य अर्थशास्त्र में वृजिकों को लिच्छविकों से भिन्न बताया गया है और वृजियों के संघ का भी उल्लेख किया गया है। युवानच्वांग ने भी वृज्जि देश को वैशाली से अलग बताया है, किन्तु फिर भी वृजियों का वैशाली से निकट सम्बन्ध था। बुद्ध के जीवनकाल में मगध सम्राट अजातशत्रु और वृज्जि गणराज्य में बहुत दिनों तक संघर्ष चलता रहा। महावग्ग के अनुसार अजातशत्रु के दो मन्त्रियों सुनिध और वर्षकार (वस्सकार) ने पाटलिग्राम (पाटलिपुत्र) में एक किला वृज्जियों के आक्रमणों को रोकने के लिए बनवाया था।

महापरिनिब्बान सुत्तन्त में भी अजातशत्रु और वृज्जियों के विरोध का वर्णन है। वज्जि शायद वृजि का ही रूपांतर है।

बुल्हर के मत में वज्रि का नामोल्लेख अशोक के शिलालेख सं. 13 में है।

जैन तीर्थंकर महावीर वृज्जि गणराज्य के ही राजकुमार थे।

## *चेदि या चेति महाजनपद*

पौराणिक 16 महाजनपदों में से एक था। यह शुक्तिमती नदी के पास का देश था, जिसमें बुंदेलखंड का दक्षिणी भाग और जबलपुर का उत्तरी भाग सम्मिलित था। बौद्ध ग्रंथों में, जिन सोलह महाजनपदों का उल्लेख है उनमें यह भी था। कलिचुरि वंश ने भी यहाँ राज्य किया। किसी समय शिशुपाल यहाँ का प्रसिद्ध राजा था। उसका विवाह रुक्मिणी से होने वाला था कि श्रीकृष्ण ने रूक्मणी का हरण कर दिया। इसके बाद ही जब युधिष्ठर के राजसूय यज्ञ में श्रीकृष्ण को पहला स्थान दिया तो शिशुपाल ने उनकी घोर निंदा की। इस पर श्रीकृष्ण ने उसका वध कर डाला। मध्य प्रदेश के ग्वालियर क्षेत्र में वर्तमान चंदेरी कस्बा ही प्राचीन काल के चेदि राज्य की राजधानी बताया जाता है।

### *तथ्य*

ऋग्वेद में चेदि नरेश कशुचैद्य का उल्लेख है।

**रैपसन** के अनुसार कशु या कसु महाभारत में वर्णित चेदिराज वसु है और इन्द्र के कहने से उपरिचर राजा वसु ने रमणीय चेदि देश का राज्य स्वीकार किया था।

महाभारत में चेदि देश की अन्य कई देशों के साथ, कुरु के परिवर्ती देशों में गणना की गई है।

कर्णपर्व में चेदि देश के निवासियों की प्रशंसा की गई है।

महाभारत के समय कृष्ण का प्रतिद्वंद्वी शिशुपाल चेदि का शासक था। इसकी राजधानी शुक्तिमती बताई गई है। चेतिय जातक में चेदि की राजधानी सोत्थीवतीनगर कही गई है, जो **नं. ला. डे** के मत में शुक्तिमती ही है। इस जातक में चेदिनरेश उपचर के पांच पुत्रों द्वारा हत्थिपुर, अस्सपुर, सीहपुर, उत्तर पांचाल और दद्दरपुर नामक नगरों के बसाए जाने का उल्लेख है।

महाभारत में शुक्तिमती को शुक्तिसाह्वय भी कहा गया है।

अंगुत्तरनिकाय में सहजाति नामक नगर की स्थिति चेदि प्रदेश में मानी गई है। सहजाति इलाहाबाद से दस मील पर स्थित भीटा है। चेतियजातक में चेदिनरेश की नामावली है, जिनमें से अंतिम उपचर या अपचर, महाभारत आदि. पर्व 63 में वर्णित वसु जान पड़ता है।

वेदव्य जातक में चेति या चेदि से काशी जाने वाली सड़क पर दस्युओं का उल्लेख है।

विष्णु पुराण में चेदिराज शिशुपाल का उल्लेख है।

मिलिंदपन्हो में चेति या चेदि का चेतनरेशों से संबंध सूचित होता है। सम्भवत: कलिंगराज खारवेल इसी वंश का राजा था। मध्ययुग में चेदि प्रदेश की दक्षिणी सीमा अधिक विस्तृत होकर मेकलसुता या नर्मदा तक जा पहुँची थी, जैसा कि कर्पूरमंजरी से सूचित होता है कि नदियों में नर्मदा, राजाओं में रणविग्रह और कवियों में सुरानन्द चेदिमंडल के भूषण हैं।

## मत्स्य महाजनपद

मत्स्य 16 महाजनपदों में से एक है। इसमें राजस्थान के अलवर, भरतपुर तथा जयपुर, जिले के क्षेत्र शामिल थे। महाभारत काल का एक प्रसिद्ध जनपद, जिसकी स्थिति अलवर-जयपुर के परिवर्ती प्रदेश में मानी गई है। इस देश में विराट का राज था तथा वहाँ की राजधानी उपप्लव नामक नगर में थी। विराट नगर मत्स्य देश का दूसरा प्रमुख नगर था।

### *दिग्विजय यात्रा*

1. सहदेव ने अपनी दिग्विजय-यात्रा में मत्स्य देश पर विजय प्राप्त की थी।
2. भीम ने भी मत्स्यों को विजित किया था।

3. अलवर के एक भाग में शाल्व देश था जो मत्स्य का पार्श्ववती जनपद था।
4. पांडवों ने मत्स्य देश में विराट के यहाँ रह कर अपने अज्ञातवास का एक वर्ष बिताया था।

## ऋग्वेद में उल्लेख

मत्स्य निवासियों का सर्वप्रथम उल्लेख ऋग्वेद में है। इस उद्धरण में मत्स्यों का वैदिक काल के प्रसिद्ध राजा सुदास के शत्रुओं के साथ उल्लेख है।

### *ग्रन्थों में उल्लेख*

शतपथ ब्राह्मण में मत्स्य-नरेश ध्वसन द्वैतवन का उल्लेख है, जिसने सरस्वती के तट पर अश्वमेध यज्ञ किया था। इस उल्लेख से मत्स्य देश में सरस्वती तथा द्वैतवन सरोवर की स्थिति सूचित होती है। गोपथ ब्राह्मण में मत्स्यों को शाल्वों और कौशीतकी उपनिषद में कुरु-पांचालों से सम्बद्ध बताया गया है।

### *महाभारत में उल्लेख*

महाभारत में इनका त्रिगर्तों और चेदियों के साथ भी उल्लेख है।

मनुसंहिता में मत्स्यवासियों को पांचाल और शूरसेन के निवासियों के साथ ही ब्रह्मर्षि देश में स्थित माना है-

'कुरुक्षेत्रं च मत्स्याश्च पांचाला शूरसेनकाः एष ब्रह्मर्षि देशो वै ब्रह्मवतदिनंतरः।'

उड़ीसा की भूतपूर्व मयूरभंज रियासत में प्रचलित जनश्रुति के अनुसार मत्स्य देश सतियापारा (जिला मयूरभंज) का प्राचीन नाम था। उपर्युक्त विवेचन से मत्स्य की स्थिति पूर्वोत्तर राजस्थान में सिद्ध होती है, किन्तु इस किंवदंती का आधार शायद तह तथ्य है कि मत्स्यों की एक शाखा मध्य काल के पूर्व विजिगापटम (आन्ध्र प्रदेश) के निकट जा कर बस गई थी। उड़ीसा के राजा जयत्सेन ने अपनी कन्या प्रभावती का विवाह मत्स्यवंशीय सत्यमार्तड से किया था, जिनका वंशज 1269 ई. में अर्जुन नामक व्यक्ति था। सम्भव है प्राचीन मत्स्य देश की पांडवों से संबंधित किंवदंतियाँ उड़ीसा में मत्स्यों की इसी शाखा द्वारा पहुँची हो।

### अश्मक

अश्मक सौदास के क्षेत्रज पुत्र का नाम था। सौदास, जो कल्माषपाद और मित्रसह के नाम से विख्यात थे, उनकी रानी मदयन्ती के गर्भ से वशिष्ठ द्वारा अश्मक का जन्म हुआ था।

सात वर्षों तक अश्मक अपनी माता के गर्भ में रहा, तब वशिष्ठ ने रानी के पेट पर पत्थर का प्रहार किया और यह उत्पन्न हुआ।

अश्मक 'मूलक' का पिता था।

### अवंती महाजनपद

अवंती, पौराणिक 16 महाजनपदों में से एक था। आधुनिक मालवा का प्रदेश, जिसकी राजधानी उज्जयिनी और महिष्मति थी। उज्जयिनी (उज्जैन) मध्य प्रदेश राज्य का एक प्रमुख शहर है। प्राचीन संस्कृत तथा पाली साहित्य में अवंती या उज्जयिनी का सैकड़ों बार उल्लेख हुआ है। महाभारत में सहदेव द्वारा अवंती को विजित करने का वर्णन है। बौद्ध काल में अवंती उत्तरभारत के शोडश महाजनपदों में से थी, जिनकी सूची अंगुत्तरनिकाय में हैं। जैन ग्रंथ भगवती सूत्र में इसी जनपद को मालव कहा गया है। इस जनपद में स्थूल रूप से वर्तमान मालवा, निमाड़ और मध्य प्रदेश का बीच का भाग सम्मिलित था। पुराणों के अनुसार अवंती की स्थापना यदुवंशी क्षत्रियों द्वारा की गई थी। बुद्ध के समय अवंती का राजा चंडप्रद्योत था। इसकी पुत्री वासवदत्ता से वत्सनरेश उदयन ने विवाह किया था, जिसका उल्लेख भास रचित 'स्वप्नवासवदत्ता' नामक नाटक में है। वासवदत्ता को अवन्ती से सम्बंधित मानते हुए एक स्थान पर इस नाटक में कहा गया है-'हम। अतिसदृशी खल्वियमार्याय अवंतिकाया:।' चतुर्थ शती ई. पू. में अवन्ती का जनपद मौर्य-साम्राज्य में सम्मिलित था और उज्जयिनी मगध-साम्राज्य के पश्चिम प्रांत की राजधानी थी। इससे पूर्व मगध और अवन्ती का संघर्ष पर्याप्त समय तक चलता रहा था, जिसकी सूचना हमें परिशिष्टपर्वन से मिलती है। श्कथासरित्सागर' से यह ज्ञात होता है कि अवन्तीराज चंडप्रद्योत के पुत्र पालक ने कौशाम्बी को अपने राज्य में मिला लिया था। विष्णु पुराण से विदित होता है कि संभवत: गुप्त काल से पूर्व अवन्ती पर आभीर इत्यादि शूद्रों या विजातियों का आधिपत्य था-'सौराष्ट्रावन्तिविषयांश्च--आभीर शूद्राद्या भोक्ष्यन्ते'। ऐतिहासिक परम्परा से हमें यह भी विदित होता है कि प्रथम शती ई. पू. में (57 ई. पू. के लगभग) विक्रम संवत के संस्थापक किसी अज्ञात राजा ने शकों को

हराकर उज्जयिनी को अपनी राजधानी बनाया था। गुप्त काल में चंद्रगुप्त विक्रमादित्य ने अवंती को पुनः विजय किया और वहाँ से विदेशी सत्ता को उखाड़ फैंका। कुछ विद्वानों के मत में 57 ई. पू. में विक्रमादित्य नाम का कोई राजा नहीं था और चन्द्रगुप्त द्वितीय ने ही अवंती-विजय के पश्चात् मालव संवत को जो 57 ई. पू. में प्रारम्भ हुआ था, विक्रम संवत का नाम दे दिया।

## ह्वेनसांग का वर्णन

चीनी यात्री ह्ववेनसांग के यात्रवृत से ज्ञात होता है कि अवन्ती या उज्जयिनी का राज्य उस समय (615-630 ई.) मालव राज्य से अलग था और वहाँ एक स्वतन्त्र राजा का शासन था। कहा जाता है शंकराचार्य के समकालीन अवन्ती-नरेश सुधन्वा ने जैन धर्म का उत्कर्ष सूचित करने के लिए प्राचीन अवन्तिका का नाम उज्जयिनी (विजयकारिणी) कर दिया था, किन्तु यह केवल कपोल कल्पना मात्र है क्योंकि गुप्तकालीन कालिदास को भी उज्जयिनी नाम ज्ञात था, 'वक्रः पंथा यदपि भवतः प्रस्थिस्योत्तराशां, सौधोत्संगप्रणयविमुखोमास्म भूरुज्जयिन्याः' इसके साथ ही कवि ने अवन्ती का भी उल्लेख किया है- 'प्राप्यावन्तीमुदयन कथाकोविदग्रामवृद्धान्' इससे संभवतः यह जान पड़ता है कि कालिदास के समय में अवन्ती उस जनपद का नाम था, जिसकी मुख्य नगरी उज्जयिनी थी। 9 वीं व 10 वीं शतियों में उज्जयिनी में परमार राजाओं का शासन रहा। तत्पश्चात् उन्होंने धारा नगरी में अपनी राजधानी बनाई। मध्यकाल में इस नगरी को मुख्यतः उज्जैन ही कहा जाता था और इसका मालवा के सूबे के एक मुख्य स्थान के रूप में वर्णन मिलता है। दिल्ली के सुल्तान इल्तुतमिश ने उज्जैन को बुरी तरह से लूटा और यहाँ के महाकाल के अति प्राचीन मन्दिर को नष्ट कर दिया। अगले प्रायः पाँच सौ वर्षों तक उज्जैन पर मुसलमानों का आधिपत्य रहा। 1750 ई. में सिंधिया नरेशों का शासन यहाँ स्थापित हुआ और 1810 ई. तक उज्जैन में उनकी राजधानी रही। इस वर्ष सिंधिया ने उज्जैन से हटा कर राजधानी ग्वालियर में बनाई। मराठों के राज्यकाल में उज्जैन के कुछ प्राचीन मन्दिरों का जीर्णोद्धार किया गया था। इनमें महाकाल का मन्दिर भी है।

## *विविधतीर्थ कल्प में*

जैन ग्रन्थ विविधतीर्थ कल्प में मालवा प्रदेश का ही नाम अवंति या अवंती है। राजा शंबर के पुत्र अभिनंदन देव का चैत्य अवन्ति के मेद नामक ग्राम में

स्थित था। इस चैत्य को मुसलमान सेना ने नष्ट कर दिया था किन्तु इस ग्रन्थ के अनुसार वैज नामक व्यापारी की तपस्या से खण्डित मूर्ति फिर से जुड़ गई थी।

उज्जयिनी के वर्तमान स्मारकों में मुख्य, महाकाल का मन्दिर क्षिप्रा नदी के तट पर भूमि के नीचे बना है। इसका निर्माण प्राचीन मन्दिर के स्थान पर रणोजी सिंधिया के मन्त्री रामचन्द्र बाबा ने 19 वीं शती के उत्तरार्द्ध में करवाया था। महाकाल की शिव के द्वादश ज्योतिर्लिगों में गणना की जाती है। इसी कारण इस नगरी को शिवपुरी भी कहा गया है।

इसे हरसिद्धि का मन्दिर कहा जाता है, उसी प्राचीन मन्दिर का प्रतिरूप है, जहाँ विक्रमादित्य इस देवी की पूजा किया करते थे।

राजा भतृहरि की गुफा संभवत: 11 वीं शती का अवशेष है।

चौबीस खम्भा दरवाजा शायद प्राचीन महाकाल मन्दिर के प्रांगण का मुख्य द्वार था।

कालीदह-महल 1500 ई. में बना था। यहाँ की प्रसिद्ध वेधशाला जयपुर-नरेश जयसिंह द्वितीय ने 1733 ई. में बनवाई थी। वेधशाला का जीर्णोद्धार 1925 ई. में किया गया था।

## प्राचीन अवंती वर्तमान उज्जैन

प्राचीन अवंती वर्तमान उज्जैन के स्थान पर ही बसी थी, यह तथ्य इस बात से सिद्ध होता है कि क्षिप्रा नदी, जो आजकल भी उज्जैन के निकट बहती है, प्राचीन साहित्य में भी अवंती के निकट ही वर्णित है। उज्जैन से एक मील उत्तर की ओर भैरोगढ़ में दूसरी-तीसरी शती ई. पू. की उज्जयिनी के खंडहर पाए गए हैं। यहाँ वेश्या-टेकरी और कुम्हार-टेकरी नाम के टीले हैं, जिनका सम्बन्ध प्राचीन किंवदंतियों से है।

## गांधार महाजनपद

पौराणिक 16 महाजनपदों में से एक। पाकिस्तान का पश्चिमी तथा अफगानिस्तान का पूर्वी क्षेत्र। इसे आधुनिक कंदहार से जोड़ने की गलती कई बार लोग कर देते हैं, जो कि वास्तव में इस क्षेत्र से कुछ दक्षिण में स्थित था। इस प्रदेश का मुख्य केन्द्र आधुनिक पेशावर और आसपास के इलाके थे। इस महाजनपद के प्रमुख नगर थे - पुरुषपुर (आधुनिक पेशावर) तथा तक्षशिला

इसकी राजधानी थी। इसका अस्तित्त्व 600 ईसा पूर्व से 11वीं सदी तक रहा। कुषाण शासकों के दौरान यहाँ बौद्ध धर्म बहुत फला फूला पर बाद में मुस्लिम आक्रमण के कारण इसका पतन हो गया।

## प्राचीन नाम

### *गांधार महाजनपद*

गांधार, थाइलैंड या स्याम के उत्तरी भाग में स्थित युन्नास का प्राचीन भारतीय नाम है। चीनी इतिहास-ग्रंथों से सूचित होता है कि द्वितीय शती ई. पू. में ही इस प्रदेश में भारतीयों ने उपनिवेश बसा लिए थे और ये लोग बंगाल-असम तथा ब्रह्मदेश के व्यापारिक स्थलमार्ग से यहाँ पहुँचे थे। 13वीं शती तक युन्नान का भारतीय नाम गांधार ही प्रचलित था, जैसा कि तत्कालीन मुसलमान लेखक रशीदुद्दीन के वर्णन से सूचित होता है। इस प्रदेश का चीनी नाम नानचाओं था। 1253 ई. में चीन के सम्राट कुबलाखाँ ने गांधार को जीतकर यहाँ के हिन्दू राज्य की समाप्ति कर दी। इस प्रदेश का उल्लेख महाभारत और अशोक के शिलालेखों में मिलता है। महाभारत के अनुसार धृतराष्ट्र की रानी और दुर्योधन की माता गांधारी गांधार की राजकुमारी थीं। आजकल यह पाकिस्तान के रावलपिंडी और पेशावर, जिलों का क्षेत्र है। तक्षशिला और पुष्कलावती यहीं के प्रसिद्ध नगर थे। अशोक के साम्राज्य का अंग रहने के बाद कुछ समय यह फारस के और कुषाण राज्य के अंतर्गत रहा। यह पूर्व और पश्चिम के सांस्कृतिक संगम का स्थल था और यहाँ कला की 'गांधार शैली' का जन्म हुआ।

सिंधु नदी के पूर्व और उत्तरपश्चिम की ओर स्थित प्रदेश। वर्तमान अफगानिस्तान का पूर्वी भाग भी इसमें सम्मिलित था। ऋग्वेद में गांधार के निवासियों को गांधारी कहा गया है तथा उनकी भेड़ों के ऊन को सराहा गया है और अथर्ववेद में गांधारियों का मूजवतों के साथ उल्लेख है-

**'उपोप में परामृश मा में दभ्राणिमन्यथाः,**
**सर्वाहमस्मि रोमशा गांधारीणामिवाविका'**
**'गंधारिम्यों मूजवद्भ्योड् गेभ्यो मगधेभ्यः**
**प्रैष्यन् जनमिव शेवधिं तक्मानं परिदद्मसि।'**

अथर्ववेद में गांधारियों की गणना अवमानित जातियों में की गई है, किंतु परवर्ती काल में गांधारवासियों के प्रति मध्यदेशीयों का दृष्टिकोण बदल गया और

गांधार में बड़े विद्वान् पंडितों ने अपना निवास-स्थान बनाया। तक्षशिला गांधार की लोकविश्रुत राजधानी थी।

छान्दोग्य उपनिषद में उद्दालक-अरुणि ने गांधार का, सद्गुरु वाले शिष्य के अपने अंतिम लक्ष्य पर पहुंचने के उदाहरण के रूप में उल्लेख किया है। जान पड़ता है कि छांदोग्य के रचयिता का गांधार से विशेष रूप से परिचय था।

शतपथ ब्राह्मण तथा अनुगामी वाक्यों में उद्दालक अरुणि का उदीच्यों या उत्तरी देश (गांधार) के निवासियों से संबंध बताया गया है। पाणिनि ने जो स्वयं गांधार के निवासी थे, तक्षशिला का उल्लेख किया है। ऐतिहासिक अनुश्रुति में कौटिल्य को तक्षशिला महाविद्यालय का ही रत्न बताया गया है। वाल्मीकि ने रामायण में गंधर्वदेश की स्थिति गांधार विषय के अंतर्गत बताई गई है। कैकय देश इस के पूर्व में स्थित था। केकय-नरेश युधाजित के कहने से अयोध्यापति रामचंद्र जी के भाई भरत ने गंधर्व देश को जीतकर यहाँ तक्षशिला और पुष्कलावती नगरियों को बसाया था।

महाभारत काल में गांधार देश का मध्यदेश से निकट संबंध था। धृतराष्ट्र की पत्नी गांधारी, गांधार की ही राजकन्या थी। शकुनि इसका भाई था। जातकों में कश्मीर और तक्षशिला-दोनों की स्थिति गांधार में मानी गई है। जातकों में तक्षशिला का अनेक बार उल्लेख है। जातककाल में यह नगरी महाविद्यालय के रूप में भारत भर में प्रसिद्ध थी। पुराणों में गांधार नरेशों को द्रुहयु का वंशज माना। वायु पुराण में गांधार के श्रेष्ठ घोड़ों का उल्लेख है।

अंगुत्तरनिकाय के अनुसार बुद्ध तथा पूर्व-बुद्धकाल में गांधार उत्तरी भारत के सोलह जनपदों में परिगणित था। सिकन्दर के भारत पर आक्रमण के समय गांधार में कई छोटी-छोटी रियासतें थीं, जैसे अभिसार, तक्षशिला आदि। मौर्य साम्राज्य में संपूर्ण गांधार देश सम्मिलित था। कुषाण साम्राज्य का भी वह एक अंग था। कुषाण काल में ही यहाँ की नई राजधानी पुरुषपुर या पेशावर में बनाई गई। इस काल में तक्षशिला का पूर्व गौरव समाप्त हो गया था। गुप्त काल में गांधार शायद गुप्तों के साम्राज्य के बाहर था क्योंकि उस समय यहाँ यवन, शक आदि बाह्यदेशियों का आधिपत्य था।

7वीं शती ई. में गांधार के अनेक भागों में बौद्ध धर्म काफी उन्नत था। 8वीं-9वीं शतियों में मुसलमानों के उत्कर्ष के समय धीरे-धीरे यह देश उन्हीं के राजनीतिक तथा सांस्कृतिक प्रभाव में आ गया। 870 ई. में अरब सेनापति याकूब एलेस ने अफगानिस्तान को अपने अधिकार में कर लिया, लेकिन इसके बाद काफी

समय तक यहाँ हिन्दू तथा बौद्ध अनेक क्षेत्रों में रहते रहे। अलप्तगीन और सुबुक्तगीन के हमलों का भी उन्होंने सामना किया। 990 ई. में लमगान (प्राचीन लंपाक) का किला उनके हाथों से निकल गया और इसके बाद काफिरिस्तान को छोड़कर सारा अफगानिस्तान मुसलमानों के धर्म में दीक्षित हो गया।

## *कंबोज महाजनपद*

कंबोज महाजनपद प्राचीन समय में भारतवर्ष के प्रमुख जनपदों में गिना जाता था। प्राचीन संस्कृत साहित्य में कंबोज देश या यहाँ के निवासी कांबोजों के विषय में अनेक उल्लेख हैं, जिनसे जान पड़ता है कि कंबोज देश का विस्तार स्थूल रूप से कश्मीर से हिन्दूकुश तक था। वंश ब्राह्मण में कंबोज औपमन्यव नामक आचार्य का उल्लेख है।

वाल्मीकि रामायण में कंबोज, वाल्हीक और वनायु देशों के श्रेष्ठ घोड़ों का अयोध्या में होना वर्णित है-

'कांबोज विषये जातैर्बाल्हीकैश्च हयोत्तमैः वनायुजैर्नदीजैश्च पूर्णाहरिहयोत्तमै':।

महाभारत के अनुसार अर्जुन ने अपनी उत्तर दिशा की दिग्विजय-यात्रा के प्रसंग में दर्दरों या दर्दिस्तान के निवासियों के साथ ही कांबोजों को भी परास्त किया था- 'गृहीत्वा तु बलं सारं फाल्गुनः पांडुनन्दनः दरदान् सह काम्बोजैरजयत् पाकशासनिः'

अंगुत्तरनिकाय और अशोक के पांचवें शिलालेख में कंबोज का गांधार के साथ उल्लेख है।

महाभारत और राजतरंगिणी में कंबोज की स्थिति उत्तरापथ में बताई गई है।

महाभारत में कहा गया है कि कर्ण ने राजपुर पहुंचकर कांबोजों को जीता, जिससे राजपुर कंबोज का एक नगर सिद्ध होता है- 'कर्ण राजपुरं गत्वा काम्बोजानिर्जितास्त्वया'।

ईशानपुर प्राचीन कम्बोडिया का एक नगर था।

कर्निघम के अनुसार राजपुर कश्मीर में स्थित राजौरी है

कालिदास ने रघुवंश में रघु के द्वारा कांबोजों की पराजय का उल्लेख किया है- 'काम्बोजाः समरे सोढुं तस्य वीर्यमनीश्वराः, गजालान् परिक्लिष्टैरक्षोटैः सार्धमानताः' इस उद्धरण में कालिदास ने कंबोज देश में अखरोट वृक्षों का जो वर्णन किया है वह बहुत समीचीन है। इससे भी इस देश की स्थिति कश्मीर में सिद्ध होती हैं।

ह्वेनसांग ने भी राजपुर का उल्लेख किया है।

वैदिक काल में कंबोज आर्य-संस्कृति का केंद्र था जैसा कि वंश-ब्राह्मण के उल्लेख से सूचित होता है, किंतु कालांतर में जब आर्यसभ्यता पूर्व की ओर बढ़ती गई तो कंबोज आर्य-संस्कृति से बाहर समझा जाने लगा।

यास्क और भूरिदत्तजातक में कंबोजों के प्रति अवमान्यता के विचार प्रकट किए गए हैं। ह्वेनसांग ने भी कांबोजों को असंस्कृत तथा हिंसात्मक प्रवृत्तियों वाला बताया है। कंबोज के राजपुर, नंदिनगर और राइसडेवीज के अनुसार द्वारका नामक नगरों का उल्लेख साहित्य में मिलता है।

महाभारत में कंबोज के कई राजाओं का वर्णन है, जिनमें सुदर्शन और चंद्रवर्मन मुख्य हैं। कौटिल्य अर्थशास्त्र में कंबोज के 'वार्ताशस्त्रोपजीवी' संघ का उल्लेख है, जिससे ज्ञात होता है कि मौर्यकाल से पूर्व यहाँ गणराज्य स्थापित था। मौर्यकाल में चंद्रगुप्त के साम्राज्य में यह गणराज्य विलीन हो गया होगा।

कंबोज उत्तरापथ के गांधार के निकट स्थित प्राचीन भारतीय जनपद इसकी ठीक-ठाक स्थिति दक्षिण पश्चिम के पुँछ के इलाके के अंतर्गत मानी जा सकती है। प्राचीन संस्कृत एवं पाली साहित्य में कंबोज और गांधार का नाम प्रायः साथ-साथ आता है, जिस प्रकार गांधार के उत्कृष्ट ऊन का वर्णन ऋग्वेद में मिलता है (1, 126) उसी प्रकार कंबोज के कंबलों का उल्लेख यास्क के निरुक्त में हुआ है (2, 2)। वास्तव में यास्क ने 'कंबोज' शब्द की व्युत्पत्ति ही सुंदर कंबलों का उपभोग करनेवाले या विकल्प में सुंदर भोजन करनेवाले लोग-इस प्रकार की है। गांधार और कंबोज इन दोनों जनपदों के अभिन्न संबंध की परंपरा से ही इनका सान्निध्य सिद्ध हुआ है। गांधार अफगानिस्तान (कंदहार) का संवर्ती प्रदेश था और इसी के पड़ोस में पूर्व की ओर कंबोज की स्थिति थी।

वाल्मीकि रामायण में कंबोज का वातहीक और वनायु जनपदों के साथ वर्णन है और इन देशों में उत्पन्न श्रेष्ठ काले घोड़ों से अयोध्या नगरी को भरी पूरी बताया गया है (बाल. 6, 22)। महाभारत में अर्जुन की दिग्विजय के प्रसंग में परमकांबोज का लोह और ऋषिक जनपदों के साथ उल्लेख है (सभा. 27, 25)। (ऋषिक यूची का रूपांतरण जान पड़ता है। यूची जाति का निवासस्थान दक्षिण-पश्चिम चीन या चीनी तुर्किस्तान के अंतर्गत था। प्रसिद्ध बौद्ध सम्राट् कनिष्क का रक्तसंबंध इसी जाति के कुशान नामक कबीले से था।) द्रोणपर्व में सात्यकि द्वारा कांबोजों, यवनों, शकों, किरातों और बर्बरों आदि की दुर्मद सेना को हराने और उनके मुंडित मस्तकों और लंबी दाढ़ियों का चित्रमय उल्लेख

(199, 45-48)-'हे राजन्, सात्यकि ने आपकी (धृतराष्ट्र की) सेना का संहार करते हुए हजारों कांबोजों, शकों, शबरों, किरातों और बर्बरों के शवों से रणभूमि को पाठकर वहाँ मांस और रुधिर की नदी बहा दी थी। उन दस्युओं के, शिरस्त्राणों से युक्त मुँडित और लंबी दाढ़ियोंवाले सिरों से रणभूमि पंखहीन पक्षियों से भरी हुई सी दिखाई दे रही थी। महाभारत के युद्ध में कांबोजों ने कौरवों का साथ दिया था। यह द्रष्टव्य है कि कांबोजादि को आकृति संबंधी, जिन विशेषताओं का वर्णन महाभारत के इस प्रसंग में हैं वे आज भी इस प्रदेश के निवासियों में विद्यमान हैं। महाभारत में कांबोजों के राजपुर नामक नगर का भी उल्लेख है, जिसे कर्ण ने जीता था (द्रोण. 4, 5)।

**कनिंघम** ने अपने सुप्रसिद्ध ग्रंथ 'एंशेंट, जियोग्रफी ऑव इंडिया' (पृ. 142) में राजपुर का अभिज्ञान दक्षिण-पश्चिम कश्मीर के राजौरी नामक नगर (जिला पुँछ, कश्मीर) के साथ किया है। इस प्रकार कंबोज देश की अवस्थिति का ज्ञान हमें प्रायः निश्चित रूप से हो जाता है। **राइस डेविड्स** ने इस प्रदेश की पूर्वबौद्धकालीन द्वारका नामक नगरी का उल्लेख किया है। **लूडर्स** के अभिलेखों (संख्या 176, 412) में कंबोज जनपद के एक दूसरे स्थान नंदिनगर का भी उल्लेख है, जिसकी स्थिति का ठीक पता नहीं।

प्रसिद्ध वैयाकरण **पाणिनि** ने, जो स्वयं कंबोज के सहवर्ती प्रदेश के निवासी थे 'कंबोजाल्लुक' सूत्र से (अष्टाध्यायी 4, 1, 173) इस जनपद के बारे में अपनी जानकारी प्रकट की है। **पतंजलि** ने भी महाभाष्य में कंबोज का उल्लेख किया है।

सिकंदर के आक्रमण के समय (327 ई.पू.) कंबोज प्रदेश की सीमा के अंतर्गत उरशा (जिला हजारा) और अभिसार (जिला पुँछ) नामक छोटे-छोटे राज्य बसे हुए थे।

पालि ग्रंथ अंगुत्तरनिकाय में भारत के 16 महाजनपदों में कंबोज की भी गणना की गई है (1, 213, 4, 252-256-261)। अशोक के अभिलेखों में कांबोजों का उल्लेख, सीमावर्ती यवनों, नाभकों, नाभपंक्तियों, भोजपितिनकों और गांधारों आदि के साथ किया गया है (शिलालेख 13)। इस धर्मलिपि से ज्ञात होता है कि यद्यपि कंबोज जनपद अशोक का सीमावर्ती प्रांत था तथापि वहाँ भी उसके शासन का पूर्ण रूप से प्रचलन था। विद्वानों का मत है कि शाहबाजगढ़ी (जिला पेशावर) और मानसेहरा (जिला हजारा) में प्राप्त अभिलेखों से, अशोक के समय में (मश्य तृतीय शताब्दी ई.पू.), क्रमशः गांधार और कांबोज जनपदों की स्थिति का ज्ञान होता है।

महाभारत के वर्णन में कंबोज देश के अनार्य रीति रिवाजों का आभास मिलता है। भीष्म. 9, 65 में कांबोजों को म्लेच्छजातीय बताया गया है। मनु ने भी कांबोजों को दस्यु नाम से अभिहित किया है तथा उन्हें म्लेच्छ भाषा बोलनेवाला बताया है (मनुस्मृति 10, 44-45)। मनु की ही भाँति निरुक्तकार यास्क ने भी कांबोजों की बोली को आर्य भाषा से भिन्न कहा है और इस तथ्य के प्रमाण में उन्होंने उदाहरण भी दिया है (11-2)। इसी प्रकार भूरिदत्त जातक में भी कांबोजों के अनार्याचरण तथा अनार्य धर्म का उल्लेख है।

चीनी यात्री ह्वेनसांग ने (मध्य 7वीं सदी ई.) भी राजपुर के संवर्ती प्रदेश के निवासियों को भारत के आर्यजनों की सांस्कृतिक परंपरा के बहिर्गत माना है और उन्हें उत्तर-पश्चिम की सीमावर्ती असभ्य जातियों के अंतर्गत बताया है। ह्वेनसांग ने राजपुर को चीनी भाषा में होलोशिपुलो लिखा है (द्र. ह्वेनसांग, वाटर्स 1, 284)। किंतु इसके साथ यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि कंबोज में बहुत प्राचीन काल से ही आर्यों की बस्तियाँ बिद्यमान थीं। इसका स्पष्ट निर्देश वंशब्राह्मण के उस उल्लेख से होता है, जिसमें कांबोज औपमन्यव नामक आचार्य का प्रसंग है। यह आचार्य उपमन्यु गोत्र में उत्पन्न, मद्रगार के शिष्य और कंबोज देश के निवासी थे। **कीथ** का अनुमान है कि इस प्रसंग में वर्णित औपमन्यव कांबोज और उनके गुरु मद्रगार के नामों से उत्तरमद्र और कंबोज देशों के सन्निकट संबंध का आभास मिलता है। (द्र. वेदिक इंडेक्स-कंबोज)। पालि ग्रंथ मज्झिमनिकाय से भी कंबोज में आर्य संस्कृति की विद्यमानता के बारे में सूचना मिलती है।

महाभारत में कंबोज देश के कमठ और सुदक्षिण नामक राजाओं के नाम मिलते हैं-(सभा. 4, 22-उद्योग. 166, 1)। किंतु कौटिल्य के अर्थशास्त्र से ज्ञात होता है कि चतुर्थ शताब्दी ई.पू. में कांबोज में संघ या गणराज्य की स्थापना भी की गई थी। अर्थशास्त्र (पृ. 318) में कांबोजों को वार्ताशस्त्रोपजीवी संघ अर्थात् कृषि और शस्त्रों से जीविका अर्जन करनेवाले संघ की संज्ञा दी गई है। महा. 7, 89, 38 में भी 'कबोजानां च ये गणाः', ऐसा वर्णन मिलता है।

संस्कृत के काव्य ग्रंथों में भी कंबोज के विषय में अनेक उल्लेख मिलते हैं, उदाहरणार्थ, कालिदास ने रघुवंश में रघु की दिग्विजययात्रा के प्रसंग में कांबोजों पर उनकी विजय का सुंदर वर्णन इस प्रकार किया है-(रघु. 4, 69)-'रघु के प्रभाव को सहने में असमर्थ कंबोज-निवासियों को अपने देश के अखरोट के वृक्षों, जिनसे रघु की सेना के मदमत्त हाथियों की शृंखलाएँ बाँधी

गई थीं, की भाँति ही विनत होना पड़ा।' यह द्रष्टव्य है कि कालिदास के समय में भी आज ही की तरह भारत के इस प्रदेश के अखरोट प्रसिद्ध थे।

इतिहासकार कल्हण के अनुसार कश्मीर नरेश ललितादित्य ने उत्तरापथ के अन्य कई देशों के साथ कंबोज को भी जीता था। उसके वर्णन में भी कंबोज की परंपरा से प्रसिद्ध घोड़ों का उल्लेख (4, 163)। इस वर्णन से यह भी प्रमाणित होता है कि भारतीय इतिहास के प्रायः मध्यकाल (11वीं-12वीं सदी ई.) तक कंबोज देश के नाम का प्रचलन था तथा इसकी सीमाएँ भी प्रायः पूर्ववत् ही थीं, किंतु यह जान पड़ता है कि तत्पश्चात् धीरे-धीरे इस जनपद का विलय कश्मीर राज्य में हो जाने से इसकी पृथक सत्ता का अंत हो गया और इसके साथ ही इसका नाम भी विस्मृति के गर्त में जा पड़ा। फिर भी अभी तक कंबोज के नाम की स्मृति काफिरिस्तान के निकटवर्ती प्रदेश के कुछ कबीलों के नामों, जैसे कंबोजी, कमोज और कामोजे आदि में सुरक्षित है (द्र. एलफिंस्टन–ऐन एकाउंट ऑव द किंगडम ऑव काबुल, जिल्द 2, पृ. 375)।

## महाजनपद का प्रशासन

महाजनपद-कालीन प्रशासन में राजतन्त्रात्मक (नृपतंत्र) और गणतन्त्रात्मक दोनों शासन व्यवस्था का प्रचलन था। मध्यप्रदेश में अवन्ति और चेदि दोनों महाजनपद राजतन्त्रात्मक ही थे। राजतंत्र राज्य में मंत्रिपरिषद् (परिषा) का विवरण मिलता हैं। राजतंत्र राज्य में केवल अमात्य ही परिषद् में कार्य करते थे अर्थात् परिषद् का गठन अमात्यों के द्वारा होता था, जिसका आकार छोटा होता था। राजा की सहायतार्थ मंत्रिमंडल होता था। छठी शताब्दी ई. पूर्व में मंत्री की भूमिका में लगभग पाँच-छः विभागाध्यक्षों का कार्य महत्त्वपूर्ण था। विभागों एवं मंत्रियों की संख्या राज्य के क्षेत्रफल एवं उसकी आवश्यकता के अनुरूप राजा द्वारा निर्धारित की जाती थी। चूँकि प्रारम्भिक काल में राज्यों का भौगोलिक आकार छोटा होता था, अतः विभागों की संख्या भी बहुत अधिक नहीं थी।

- विभागीय मंत्रियों को महामत्त (महामात्र) कहा जाता था।
- पुरोहित, सर्वार्थक महामत्त (प्रशासन मंत्री), सेनापति महामत्त (सेनाप्रमुख), भाण्डागारिक महामत्त (कोषाध्यक्ष), विनश्यामात्य (न्यायाधीश) और रज्जुगाहक महामत्त या रज्जुक (राजस्व प्रमुख) प्रमुख थे।
- अनेक जातक कथाओं में अमात्यों और पुरोहितों का उल्लेख मिलता है। वस्तुतः सबसे महत्त्वपूर्ण महामत्त पुरोहित होता था।

- पुरोहित राजा के धर्म और अर्थ दोनों का अनुशासक होता था।
- पुरोहित पद प्रायः वंशानुगत था। ग्राम शासन में ग्राम भोजक का महत्त्वपूर्ण स्थान था।

## *महाजनपद की न्याय व्यवस्था*

न्याय व्यवस्था कठोर थी। न्याय के मामलों में राजा ही सर्वोच्च होता था। न्यायशाला का न्यायाधीश सर्वगुणसम्पन्न, धर्मशास्त्रज्ञ, नीतिशास्त्रज्ञ, कपटव्यवहारक, सुस्पष्ट वक्ता तथा क्रोध रहित रहता था। न्यायाधीश शासन के नियमानुसार न्याय करता था फिर भी राजाज्ञा सर्वोपरि थी। उसकी सहायता के लिए वैश्य, कायस्थ, दूत, गुप्तचर, आदि अन्य कार्य करते थे। कायस्थ वादी और प्रतिवादी के अभियोग लिखता था। दोनों पक्ष अपने-अपने तर्क से न्यायालय में अपनी बात रखते थे। न्याय के पूर्ण सूक्ष्मता से प्रमाणों की जाँच की जाती थी। परिस्थितिनुसार हत्या, चोरी पर घटित स्थल का निरीक्षण भी किया जाता था। अपराध सिद्ध हो जाने पर उसे अपराध के नियमों से दण्ड दिया जाता था। अभियोगियों का स्थान न्याय मण्डप बाहर होता था। क्रम के अनुसार कार्यवाही होती थी। सभी को अपनी बात रखने का अधिकार था। बड़े अपराधों पर मृत्युदण्ड दिये जाते थे। इस प्रकार न्याय व्यवस्था कठोर थी।

## *महाजनपद की मुद्रा*

महाजनपद युगीन मुद्राओं से भी प्रशासन की जानकारी प्राप्त होती है। इस काल की प्राप्त मुद्राएँ आकार में बड़ी और मोटाई में बहुत पतली हैं, जिन पर वृषभ, हस्ति, मत्स्य, कूर्म तथा चक्र आदि विभिन्न प्रकार के चिन्ह अंकित हैं। क्षेत्र की प्राचीन मुद्राओं की विशेषता "उज्जयिनी" चिन्ह है। यह संभव है कि किसी भी चिन्ह के प्रकार, जिस स्थल पर सर्वाधिक संख्या में उपलब्ध हैं वह स्थान उस चिन्ह का उद्गम या मूल स्थान होता है। उज्जयिनी के अतिरिक्त "उज्जयिनी चिन्ह" विदिशा, त्रिपुरी, एरण से प्राप्त मुद्राओं पर भी अंकित है।

# 2

# महाजनपद की सामाजिक स्थिति

वर्ण–व्यवस्था–'वर्ण' शब्द की उत्पत्ति 'वृण' धातु से हुई है, जिसका अर्थ 'चुनाव करना' है। वर्ण शब्द का प्रयोग संभवत: व्यवसाय के चुनाव में किया जाता रहा। इसलिए वर्ण लोगों का वह समूह हैं, जो किसी विशिष्ट व्यवसाय को चुन लेता है। प्राचीन कालीन समाज का वर्ण विभाजन व्यावसायिक विभाजन हो सकता है, जिन लोगों ने अपने गुणों एवं कर्मों के आधार पर किसी निश्चित व्यवसाय को चुन लिया है, वह वर्ण कहलाने लगे।

वर्ण शब्द का दूसरा अर्थ 'रंग' से माना जाता है। इस संबन्ध में सुप्रसिद्ध विद्वान **पाण्डुरंग वामन काणे** ने लिखा है कि "प्राचीन काल में वर्ण शब्द का प्रयोग गोरे रंग के आर्यों तथा काले रंग के यहाँ के मूल निवासियों के रंग भेद को स्पष्ट करने के लिए किया जाता था।"

इसके बावजूद समाज ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र चार वर्णों में विभक्त हो गया। पूर्व वैदिक काल में वर्ण का आधार कर्म था, न कि जन्म और ये गुणों से निश्चित होते थे न कि रंग से। इसलिए कहा जा सकता है कि वर्ण–व्यवस्था, श्रम–विभाजन की व्यवस्था का ही दूसरा नाम था। परन्तु कालान्तर में जातिभेद–सम्बन्धी मनुष्य की धारणाएँ रूढ़ होती गयीं और पेशे वंशानुगत हो गये। ब्राह्मण–युग आते–आते मनुष्य के सामाजिक जीवन में जातिभेद–सम्बन्धी धारणाओं की जड़ें इतनी गहराई तक प्रविष्ट हो गयीं कि देवगण भी चतुवर्ण में विभाजित माने जाने लगे।

छठी शताब्दी ई.पूर्व में जो सामाजिक व्यवस्था का स्वरूप उत्तर भारत में दिखाई देता है, वही मध्यप्रदेश में भी। इस युग में अवन्ति में भी सभी वर्गों

(ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र) के लोग रहते थे। देश के अन्य भागों से भी लोग आकर बस गये थे। जाति भेद जहाँ अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच गया था और जाति के अनुसार ऊँच-नीच की भावना अति प्रबल हो गयी थी।

वहीं प्रद्योतकाल में गौतम बुद्ध और महावीर के उपदेशों के फलस्वरूप यहाँ जाति भेद और वर्ग भेद कम हो रहा था, फिर भी स्पृश्यापृश्य की भावना का समूल नाश नहीं हुआ था।

समाज में भिक्षु और ब्राह्मणों का स्थान सर्वोपरि था। उनका कर्म मांगलिक पूजा पाठ करना होता था। आचार्य की अनुपस्थिति में आदेशानुसार उनके शिष्य ब्रह्मचारी पूजा करवाते थे जैसा कि उज्जयिनी के चित्त और सम्भूत ने तक्षक्षिला में शिक्षा प्राप्त करते समय पूजा पाठ किया था।

पालि-पिटक के अनुसार इस युग के ब्राह्मणों की दो प्रकार की श्रेणियाँ थी। प्रथम श्रेणी उन ब्राह्मणों की थी जो शास्त्रसम्मत ब्राह्मण-कर्म एवं वेदों का अध्यनाध्यापन करने वाले, पुरोहित एवं तपस्वी थे। दूसरी श्रेणी उन ब्राह्मणों की थी जो शास्त्रनुमोदित ब्राह्मणोचित कर्मों से विमुख हो गये थे और यह स्वाभाविक भी था, क्योंकि समाज की परिवर्तनशील परिस्थितियों तथा आर्थिक आवश्यकताओं ने अनेक ब्राह्मणों को इसके लिए बाध्य किया होगा, कि वे अपने पैतृक कर्मों अध्यापन एवं पौरोहित्य का त्यागकर अन्य पेशे स्वीकार करें।

बौद्ध एवं जैन साहित्य में क्षत्रियों का स्थान सर्वोपरि था। पालिपिटक से ज्ञात होता है कि राजमंत्री, सेनानायक, प्रशासकीय उच्च पदाधिकारी तथा सामन्त प्रायः क्षत्रिय ही हुआ करते थे, केवल मंत्रिपद में अधिकतर ब्राह्मणों को नियुक्त किया जाता था। क्षत्रिय जाति प्रमुखतः युद्धजीवी थी, परन्तु आर्थिक परिस्थितिवश ब्राह्मणों के समान क्षत्रियों को भी अनेक प्रकार के कर्मक्षेत्रों में प्रवेश करने के लिए बाध्य होना पड़ा और उन्होंने वणिक, हस्तशिल्प, कुम्भकार, गायक-वादक आदि का कर्म भी किया। पालिपिटक में वैश्य वर्ण के लिए वेस्स, गहपति, सेट्टि, कुटुम्बिक इत्यादि संज्ञाएँ प्रयुक्त की गई हैं। वस्तुतः सेट्टि बड़े व्यापारी थे, जिनका राज्य एवं समाज में बड़ा सम्मान था।

## महाजनपद काल का समाज

इस समय का समाज एक आदर्श समाज कहा जा सकता था। इस काल के समाज की मुख्य विशेषताएँ इस प्रकार थीं–

1. विधवा विवाह को सम्मति प्राप्त थी और विधवा को अपने पति की संपत्ति में भी अधिकार प्राप्त था,
2. अनुलोम विवाह प्रथा, जिसमें स्त्री निम्न कुल से और पुरुष उच्च कुल से हो को बुरा नहीं माना जाता था,
3. प्रेम विवाह और गंधर्व विवाह को सामाजिक मान्यता थी,
4. पुरुष द्वारा एक से अधिक विवाह को बुरा नहीं माना जाता था,
5. कार्यों के आधार पर जाती प्रथा का आरंभ हो गया था,
6. कृषि कार्यों में कार्य करने के लिए दास प्रथा का भी आरंभ हो गया था।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि महाजनपद कालीन समाज कुछ अर्थों में स्त्री को महत्त्व देने वाला एक आदर्श समाज माना जाता था।

समाज शब्द संस्कृत के दो शब्दों सम् एवं अज से बना है। सम् का अर्थ है इक्ट्ठा व एक साथ अज का अर्थ है साथ रहना। इसका अभिप्राय है कि समाज शब्द का अर्थ हुआ एक साथ रहने वाला समूह। मनुष्य चिन्तनशील प्राणी है। मनुष्य ने अपने लम्बे इतिहास में एक संगठन का निर्माण किया है। वह ज्यों-ज्यों मस्तिष्क जैसी अमूल्य शक्ति का प्रयोग करता गया, उसकी जीवन पद्धति बदलती गयी और जीवन पद्धतियों के बदलने से आवश्यकताओं में परिवर्तन हुआ। इन आवश्यकताओं ने मनुष्य को एक सूत्र में बांधना प्रारभ्म किया और इस बंधन से संगठन बने जो समाज कहलाये और मनुष्य इन्हीं संगठनों का अंग बनता चला गया। बढ़ती हुई आवश्यकताओं ने मानव को विभिन्न समूहों एवं व्यवसायों को अपनाते हुये विभक्त करते गये और मनुष्य की परस्पर निर्भरता बढ़ी और इसने मजबूत सामाजिक बंधनों को जन्म दिया।

वर्तमान सभ्यता में मानव का समाज के साथ वही घनिष्ठ सम्बंध हो गया है शरीर में शरीर के किसी अवयव का होता है। **विलियम गर** का कथन जो है- मानव स्वभाव से ही एक सामाजिक प्राणी है, इसीलिये उसने बहुत वर्णों के अनुभव से यह सीख लिया है कि उसके व्यक्तित्त्व तथा सामूहिक कार्यों का सम्यक् विकास सामाजिक जीवन द्वारा ही सम्भव है। **रेमण्ट** का कथन है कि- एकांकी जीवन कोरी कल्पना है। शिक्षा और समाज के सम्बंध को समझने के लिये इसके अर्थ को समझना आवश्यक है।

## समाज की परिभाषा

ग्रीन ने समाज की अवधारणा की जो व्याख्या की है उसके अनुसार समाज एक बहुत-बड़ा समूह है, जिसका कोई भी व्यक्ति सदस्य हो सकता है। समाज जनसंख्या, संगठन, समय, स्थान और स्वार्थों से बना होता है।

**एडम स्मिथ**- मनुष्य ने पारस्परिक लाभ के निमित्त जो कृत्रिम उपाय किया है वह समाज है।

**डॉ. जेम्स**- मनुष्य के शान्तिपूर्ण सम्बन्धों की अवस्था का नाम समाज है।

**प्रो. गिडिंग्स**- समाज स्वयं एक संघ है, यह एक संगठन है और व्यवहारों का योग है, जिसमें सहयोग देने वाले व्यक्ति एक-दूसरे से सम्बंधित है।

**प्रो. मैकाइवर**- समाज का अर्थ मानव द्वारा स्थापित ऐसे सम्बंधों से है,, जिन्हें स्थापित करने के लिये उसे विवश होना पड़ता है।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है, समाज एक उद्देश्यपूर्ण समूह होता है, जोकिसी एक क्षेत्र में बनता है, उसके सदस्य एकत्व एवं अपनत्व में बंधे होते हैं।

## समाज की विशेषताएँ

समाजशास्त्रियों ने समाज की परिभाषा कई अर्थों में दी है। समाज के साथ जुड़ी हुई कतिपय विशेषताएँ हैं और ये विशेषताएँ ही समाज के अर्थ को स्पष्ट करती है। हाल के समाजशास्त्रियों में जॉनसन ने समाजशास्त्र के लक्षणों को वृहत् अर्थों में रखा है। यहाँ हम समाज की कतिपय विशेषताओं का उल्लेख करेंगे, जिन्हें सामान्यतया सभी समाजशास्त्री स्वीकार करते हैं। ये विशेषताएँ हैं–

## एक से अधिक सदस्य

कोई भी समाज हो, उसके लिये एक से अधिक सदस्यों की आवश्यकता होती है। अकेला व्यक्ति जीवनयापन नहीं कर सकता है और यदि वह किसी तरह जीवन निर्वाह कर भी ले, तब भी वह समाज नहीं कहा जा सकता। समाज के लिये यह अनिवार्य है कि उसमें दो या अधिक व्यक्ति हों। साधु, सन्यासी, योगी आदि जो कन्दराओं और जंगलों में निवास करते हैं, तपस्या या साधना का जीवन बिताते हैं, समाज नहीं कहे जा सकते।

## *वृहद् संस्कृति*

समाज में अगणित समूह होते हैं। इन समूहों को एथनिक समूह कहते हैं। इन एथनिक समूहों की अपनी एक संस्कृति होती है, एक सामान्य भाषा होती है, खान-पान होता है, जीवन पद्धति होती है, और तिथि त्यौहार होते हैं। इस तरह की बहुत उप-संस्कृतियाँ जब तक देश के क्षेत्र मेंमिल जाती है तब वे एक वृहद् संस्कृति का निर्माण करती हैं। दूसरें शब्दों में, समाज की संस्कृति अपने आकार-प्रकार में वृहद् होती है, जिसमें अगणित उप-संस्कृतियाँ होती हैं। उदाहरण के लिये जब हम भारतीय संस्कृति की चर्चा करते हैं तो इससे हमारा तात्पर्य यह है कि यह संस्कृति वृहद् हैं, जिसमें कई संस्कृतियाँ पाई जाती हैं। हमारे देश में अनेकानेक उप-संस्कृतियां हैं। एक ओर इस देश में गुजराती, पंजाबी यानी भांगड़ा और डांडिया संस्कृति है, वहीं बंगलासंस्कृति भी है। उप-संस्कृतियों में विभिन्नता होते हुए भी कुछ ऐसे मूलभूत तत्त्व हैं, जो इन संस्कृतियों को जोड़कर भारतीय संस्कृति बनाते हैं। हमारे संविधान ने भी इन उप-संस्कृतियों के विकास को पूरी स्वतंत्रता दी है। कोई भी एक संस्कृति दूसरी संस्कृति के क्षेत्र में दखल नहीं देती। संविधान जहाँ प्रजातंत्र, समानता, सामाजिक न्याय आदि को राष्ट्रीय मुहावरा बनाकर चलता है, वहीं वह विभिन्न उप-संस्कृतियों के विकास के भी पूरे अवसर देता है। ये सब तत्त्व किसी भी समाज की वृहद् संस्कृति को बनाते हैं। जब हम अमरीकी और यूरोपीय समाजों की बात करते हैं, जो इन समाजों में भी कई उप-संस्कृतियों से बनी हुई वृहद् संस्कृति होती है। अमरीका में कई प्रजातियाँ–काकेशियन, मंगोलियन, नीग्रो, इत्यादि। इस समाज में कई राष्ट्रों के लोग निवास करते हैं–एशिया, यूरोप, आस्ट्रेलिया इत्यादि। यूरोपीय समाज की संस्कृति भी इसी भांति वृहद् है।

## *क्षेत्रीयता*

जॉनसन का आग्रह है कि किसी भी संस्कृति का कोई न कोई उद्गम का क्षेत्र अवश्य होता है। प्रत्येक देश की अन्तर्राष्ट्रीय सीमाएँ होती हैं। इसी को देश की क्षेत्रीयता कहते हैं। इस क्षेत्रीयता की भूमि से ही संस्कृति का जुड़ाव होता है। यदि हम उत्तराखण्ड की संस्कृति की बात करते हैं तो इसका मतलब हुआ कि इस संस्कृति का जुड़ाव हिमालय या देव भूमि के साथ है। मराठी संस्कृति या इस अर्थ में मलयालम संस्कृति भी अपने देश के भू-भाग से जुड़ी होती है।

यह संभव है कि किसी निश्चित क्षेत्र में पायी जाने वाली संस्कृति अपने सदस्यों के माध्यम से दूसरे में पहुंच जाए, ऐसी अवस्था में, जिस क्षेत्र का उद्‌गम हुआ है उसी क्षेत्र के नाम से संस्कृति की पहचान होगी। उदाहरण के लिए इंग्लैण्ड या न्यूयार्क में रहने वाला भारतीय अपने आपको भारतीय संस्कृति या भारतीय समाज का अंग कह सकता है, जबकि तकनीकी दृष्टि से अमेरीका में रहकर वह भारतीय क्षेत्र में नहीं रहता। महत्त्वपूर्ण बात यह है कि, जिस क्षेत्र में संस्कृति का उद्‌गम हुआ है, उसी क्षेत्र के समाज के साथ में उसे पहचाना हुआ मानता है। उत्तरप्रदेश में रहने वाला एक गुजराती अपने आपको गुजराती संस्कृति के साथ जुड़ा हुआ मानता है। उसकी भाषा, खान-पान, तिथि, त्यौहार, उत्तरप्रदेश में रहकर भी गुजराती संस्कृति के होते हैं।

## *सामाजिक संबंधों का दायरा*

समाज के सदस्यों के सम्बन्ध विभिन्न प्रकार के होते हैं। समाज, जितना जटिल होगा, सम्बन्ध भी उतने ही भिन्न और जटिल होंगे। सम्बन्ध कई तरह के होते हैं–पति-पत्नी, मालिक-मजदूर, व्यापारी-उपभोक्ता आदि। इन विभिन्न सम्बन्धों में कुछ सम्बन्ध संघर्षात्मक होते हैं और कुछ सहयोगात्मक। समाज का चेहरा हमेशा प्रेम, सहयोग और ममता से दैदीप्यमान नहीं होता, इसके चेहरे का एक पहलू बदसूरत भी होता है। समाज में संघर्ष, झगड़े-टंटे, मार-पीट और दंगेभी होते हैं, जिस भांति समाज का उजला पक्ष समाज का लक्षण है, वैसे ही बदसूरत पक्ष भी समाज का ही अंग है। अतः समाज जहाँ मतैक्य का प्रतीक है, वही वह संघर्ष का स्वरूप भी है।

## *श्रम विभाजन*

समाज की गतिविधियाँ कभी भी समान नहीं होती। यह इसलिये कि समाज की आवश्यकताएँ भी विविध होती हैं। कुछ लोग खेतों में काम करते हैं और बहुत थोड़े लोग उद्योगों में जुटे होते हैं। सच्चाई यह है कि समाज में शक्ति होती है। इस शक्ति का बंटवारा कभी भी समान रूप से नहीं हो सकता। सभी व्यक्ति तो राष्ट्रपति नहीं बन सकते और सभी व्यक्ति क्रिकेट टीम के कप्तान नहीं बन सकते। शक्ति प्रायः न्यून मात्रा में होती है और इसके पाने के दावेदार बहुतअधिक होते हैं। इसी कारण समाज कहीं का भी, उसमें शक्ति बंटवारे की कोई न कोई व्यवस्था अवश्य होती है। शक्ति के बंटवारे का यह सिद्धांत ही

समाज में गैर-बराबरी पैदा करता है। यह अवश्य है कि किसी समाज में गैर-बराबरी थोड़ी होती है और किसी में अधिक। हमारे देश में गरीबी का जो स्वरूप है वह यूरोप या अमेरिका की गरीबी की तुलना में बहुत अधिक वीभत्स है। जब कभी समाज की व्याख्या की जाती है, जो इसमें श्रम विभाजन की व्यवस्था एक अनिवार्य बिन्दु होता है। कोई भी समाज, जो विकास के किसी भी स्तर पर हो, उसमें श्रमविभाजन का होना अनिवार्य है।

### *काम प्रजनन*

समाज की वृद्धि और विकास के लिये बराबर नये सदस्यों की भर्ती की आवश्यकता रहती है। ऐसा होना समाज की निरन्तरता के लिये आवश्यक है। यदि समाज की सदस्यता में निरन्तरता नहीं रहती तो लगता है कि समाज का अस्तित्त्व खतरे में है। सदस्यों की यह भर्ती कई तरीकों से हो सकती है–साम्राज्य विस्तार, उपनिवेश और आप्रवासन। पर सामान्यतया समाज की सदस्यतया की सततता को बनाये रखने का तरीका काम प्रजनन है। इसका मतलब है, समाज के सदस्यों की सन्तान समाज के भावी उत्तरदायित्व को निभाती है।

## *मानव एवं समाज के सम्बन्ध के सिद्धान्त*

मानव एवं समाज अन्योन्याश्रित हैं पर समाजशास्त्री इस सम्बंध के विषय में पृथक-पृथक विचार रखते हैं, इनके विचारों को नीचे प्रस्तुत किया जा रहा है।

### *सामाजिक संविदा का सिद्धान्त–*

यह अत्यन्त प्राचीन सिद्धान्त है। महाभारत, कौटिल्य के अर्थशास्त्र, शुक्रनीतिसार, जैन और बौद्ध साहित्य आदि सभी इस सिद्धान्त का समर्थन करते हैं। आधुनिक पाश्चात्य् दार्शनिक में **टामस हाब्स, लाक** और **रूसो** इस मत के प्रबल समर्थक हैं। इस सिद्धान्त के अनुसार समाज नैसर्गिक नहीं बल्कि एक कृत्रिम संस्था है। मनुष्यों ने अपने स्वार्थ के लिये समाज का नियंत्रण स्वीकार किया है। इस सिद्धान्त के अनुसार एकांकी जीवन की कठिनाइयों एवं दबंगों के दबाव को झेलते हुये व्यक्ति ने स्वयं को संगठित कर लिया और इन संगठनों को समाज की संज्ञा दी गयी। प्रसिद्ध शिक्षाशास्त्री **अरस्तु** के कथन को **मैकाइवर** व **पेज** ने अपनी रचना सोसाइटी में लिखा कि- मनुष्य एक सामाजिक

प्राणी है। मनुष्य सुरक्षा, आराम, पोषण, शिक्षा, उपकरण, अवसर तथा उन विभिन्न सेवाओं के लिये, जिन्हें समाज उपलब्ध कराता है, समाज पर निर्भर है।

### *समाज का अवयवी सिद्धान्त-*

इस सिद्धान्त का अन्तनिर्हित अर्थ है समाज एक जीवित शरीर है और मनुष्य उसका अंग है। इस सिद्धान्त के समर्थक मानते हैं कि समाज विभिन्न अंगों में विभाजित है और सभी अंग अपने प्रकार्यों के माध्यम से समाज को जीवन व गति प्रदान करते हैं। समाज रूपी शरीर में व्यक्ति कोशिका की तरह है, और इसके अन्य अवयव समितियां तथा संस्थायें हैं। वास्तव में यह सिद्धान्त आज के युग में प्रासांगिक है। इसके अनुसार समाज मानव के ऊपर है, यह बात सच है कि मनुष्य समाज का अंग है, किन्तु समाज को शरीर मानकर और मनुष्य को कोशिका मानकर मानव अस्तित्त्व को स्वीकारना ठीक नहीं है। **सत्यकेतु विद्यालंकार** ने स्पष्ट किया है कि समाज हमारे स्वभाव में है, अतः स्थायित्व उसका स्वभाविक गुण है। शरीर सिद्धान्त के अनुसार समाज में स्वतंत्र रूप से व्यक्तियों की कोई स्थिति नहीं है, जिसे स्वीकारना भी सम्भव नहीं है।

### *मनुष्य एवं समाज में आश्रिता-*

व्यक्ति व समाज एक-दूसरे के पूरक हैं व्यक्ति मिलकर समाज का निर्माण करते हैं और समाज व्यक्ति के अस्तित्त्व एवं आवश्यकता को पूरा करता है, ये दोनों परस्पर आश्रित हैं। व्यक्तियों के योग से समाज उत्पन्न होता है। **हैवी हर्स्ट** तथा **न्यू गार्टन** ने अपनी पुस्तक सोसाइटी एण्ड एजुकेशन में समाजीकरण की व्याख्या करते हुये लिखा है सामाजीकरण वह प्रक्रिया है, जिसके माध्यम से बच्चे अपने समाज के स्वीकृत ढंगों को सीखते हैं, और इन ढंगों को अपने व्यक्तित्त्व का एक अंग बना देते हैं। सामाजिक संस्था का सदस्य होने के कारण व्यक्ति का व्यक्तित्त्व एवं अस्तित्त्व दोनों सुरक्षित रहता हैं, और व्यक्ति का स्व समाज के स्व के अधीन हो जाता है। स्वस्थ समाज वही है, जो लोकतांत्रिक व्यवस्था में विश्वास करता है। समाज में स्वतंत्रता व्यक्ति की उन्नति का आधार बनता है। समाज और व्यक्ति के मध्य अक्सर संघर्ण उत्पन्न हो जाता है। उसका कारण व्यक्ति की इच्छायें एवं समाज की उससे अपेक्षायें होती हैं।

## समाज के प्रमुख तत्त्व

समाज के निर्माण के कई तत्त्व हैं, इसे जानने के पश्चात् ही समाज का अर्थ पूर्णतया स्पष्ट हो जायेगा–

समाज की आत्मा से मनुष्य का अमूर्त सम्बंध है। समाज एक प्रकार से भावना का आधार लेकर बनता है। व्यक्ति समाज के अवयव के रूप में है। व्यक्तियों के बीच की विविधता समाज में समन्वय के रूप में परिलक्षित होती है। **कोहरे राबर्टस** के अनुसार–''तनिक सोचने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि समाज के अभाव में व्यक्ति एक खोखली संज्ञा मात्र है। मानव कभी अकेले नहीं रह सकता। वह समाज का सदस्य बनकर रह जाता है। मानव का अध्ययन मानव समाज का अध्ययन है, व्यक्ति का विकास समाज में ही सम्भव है।'' **रॉस** ने स्पष्ट किया–''समाज से अलग वैयक्तिकता का कोई मूल्य नहीं रह जाता है और व्यक्तित्त्व एक अर्थहीन संज्ञा मात्र है।''

समाज में हम की भावना होती है। इस भावना के अन्तर्गत व्यक्तिगत मैं निहित होता है, और यही सामाजिक बंधन को जन्म देता है। पर समाज के सम्पूर्ण बंधन स्वार्थ पूर्ण होते हैं।

समाज में समूह मन व समूह आत्मा होती है, यह सम्बंध पारस्परिक चेतना से युक्त होती है, समूह मन में यह चेतना होती है और उनके यह व्यवहार में प्रकट होती है।

समाज में अपनी सुरक्षा की भावना पायी जाती है, इसके लिये वह अपने अस्तित्त्व की रक्षा के लिये सदैव प्रयत्नशील रहता है, और समाज अपनी निजता को बनाये रखने के लिये नियम कानून रीति रिवाज संस्कृति व सभ्यता को विकसित व निर्मित करता है।

समाज की आर्थिक स्थिति उसके सदस्यों की आर्थिक स्थिति पर निर्भर करती है तो उनसे आर्थिक स्थिति की विविधता पायी जाती है, परन्तु इन सबके बाद भी उनमें एक समान अधिकार भावना पायी जाती है, कि हम समाज के सदस्य है।

समाज के जीवन एवं संस्कृति सभ्यता के कारण व्यक्तियों के आचार-विचार, व्यवहार, मान्यताओं में एकता पायी जाती है, जिसे हम जीवन के सामान्य तरीके रूप में देख सकते हैं। समाज निश्चित उद्देश्यों को रखकर निर्मित होते हैं, जो पारस्परिक लाभ, मैत्रीपूर्ण व शान्तिपूर्ण जीवन आदर्शों एवं कार्यों की पूर्ति आदि के रूप में देखे जा सकते हैं।

समाज में स्थायित्व की भावना होती है क्योंकि सभी सदस्य कई पीढ़ियों से उसी समाज के आजीवन सदस्य रहते हैं, इससे समाज बना रहता है।

समाज कई समूहों के संगठन होते हैं, जिनमें अन्योन्याश्रितता होती है।

लोगों के एक विशेष समूह का निश्चित उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए एकत्रित रहना ही समाज कहलाता है। समाज के भूमि की सीमा निश्चित नहीं है। समाज अपने व्यक्तियों की सुख-सुविधाओं एवं आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु स्वत: ही निर्मित हो जाता है। समाज मनुष्यों का वह समूह है, जो इस भू-मण्डल पर निवास करता है और पारस्परिक रागद्वेष से आबद्ध होकर भी अपनी वैयक्तिक एवं सामूहिक प्रगति के लिए प्रयास करता रहता है। विविध प्रकार से ज्ञान-विज्ञान से समृद्ध होकर अपनी भौतिक एवं आध्यात्मिक उन्नति में संलग्न रहता है, अधिक से अधिक शक्तियों का संचय करके अपने अस्तित्त्व की रक्षा में तल्लीन रहता है। इसी के साथ विविध साधन सामग्री जुटाकर प्रकृति से संघर्ष करते हुए अपनी सत्ता को सर्वोपरि सिद्ध करने में प्रयासरत रहता है। साधारण बोल चाल में समाज शब्द का प्रयोग मनुष्य के समूह से माना जाता है। अपना अस्तित्त्व बनाए रखने के लिए मनुष्य को सामाजिक सम्बन्धों की आवश्यकता पड़ती है। समाज केवल मनुष्यों में नहीं, अपितु पशुओं में भी दृष्टिगोचर होता है। समाज के आवश्यक लक्षण-समानता, भिन्नता, संगठन, सहयोग और अन्योन्याश्रित आदि पशुओं में भी देखे जा सकते हैं। किन्तु समाज शब्द का अभिप्राय एक आकार प्रकार से है, जिसमें कुछ विशिष्ट लक्षण प्राप्त होते हैं--समाज अमूर्त सम्बन्धों की व्याख्या का नाम हैं, जिसे सीमित नहीं माना जा सकता। उसमें समस्त मानव सम्बन्ध और व्यवहार आ जाते हैं। समाज मनुष्यों का समूह मात्र नहीं है बल्कि उनकी परस्पर क्रियाओं तथा परस्पर सम्बन्धों में है।

मानव एकाकी जन्म लेता है, समाज में रहकर ही अपना विकास कर पाता है इसलिए अरस्तू ने उसे 'सामाजिक प्राणी' कहा है। व्यक्ति और समाज परस्पर पूरक है। एक के बिना दूसरे की सत्ता, स्थिरता एवं प्रगति की कल्पना करना कठिन है। बहुत से व्यक्ति मिलकर एक समाज की रचना करते हैं, जो बदले में उनके अस्तित्त्व को सुखमय एवं उनके जीवनादर्श की उपलब्धि को सम्भव बनाता है। इसीलिए मानव अपने जीवन-लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए विशिष्ट प्रकार की समाज व्यवस्था का निर्माण करता है।

''शाब्दिक दृष्टि से समाज शब्द का पर्यायवाची शब्द अंग्रेजी में 'सोसायटी' है। यह 'Society' लैटिन शब्द से बना है, जिसका अर्थ है संगी,

साथी या मित्र। संस्कृत में सम्. अज्. धां' से समाज शब्द की व्युत्पत्ति बताई गई, जिसका तात्पर्य सभा, मिलन, गोष्ठी, परिषद् या समिति से लिया जाता है। '' व्यक्ति के बिना समाज नहीं, समाज के बिना व्यक्ति नहीं, दोनों में अटूट सम्बन्ध होता है। समाज समानता और भिन्नता दोनों के बिना नहीं रह सकता क्योंकि यह एक गतिशील और विकासमान अवस्था है। जहां, सामाजिक सम्बन्ध, हितों, उद्देश्यों, रूढ़ियों, आवश्यकताओं आदि की समानता पर आधारित होते हैं वही, मानव समाज की क्रियाएं परस्पर आदान-प्रदान, रुचि-अभिरुचि आदि की भिन्नता पर आधारित होती है। समाज एक अमूर्त प्रत्यय है, जिसकी अमूर्तता मूर्त मानव में निहित है। समाज मानव की अभिव्यक्ति और व्यवहारों को आयाम प्रदान करता है। इसके द्वारा सम्बन्ध निर्मित करता है और यह सम्बन्ध पीढ़ी-दर-पीढ़ी व्यवहारों का निर्माण करता है।

समाज के शाब्दिक व पारिभाषिक विवेचन के आधार पर ''समाज मनुष्य के अस्तित्त्व का आधार है क्योंकि उसका जन्म विकास एवं व्यक्तित्त्व का निर्माण समाज में ही होता है। उसकी अनेक शारीरिक व सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति भी समाज के अन्तर्गत ही होती है। समाज मनुष्यों द्वारा निर्मित होता है। इस अर्थ में समाज एक ऐसा जन समूह है, जिसमें एकात्म भाव है। ''

रूस के महान विचारक **लेनिन**, वर्ग की अवधारणा को दूसरे ही ढंग से परिभाषित करते हैं। उनके विचारों को **कविता भट्ट** इस तरह प्रस्तुत करती है ''वर्ग व्यक्तियों के बड़े-बड़े दल होते हैं, ये दल एक दूसरे से भिन्न होते हैं, जिनकी भिन्नता का आधार व्यक्ति की सामाजिक उत्पादन-पद्धति के अनुसार निर्धारित किया जाता है। समाजशास्त्रियों ने इसी दृष्टि से वर्ग का निर्णय किया है और अपने सदस्यों के प्रति समान भावना को भी अभिहित करता है। ''

आधुनिक युग में वर्ग की भावना को सामाजिक-प्रक्रिया का स्वरूप प्रदान करने का श्रेय जर्मनी के महान् विचारक और चिन्तक कार्ल मार्क्स को जाता है। मार्क्स के आधार पर वर्ग का विभाजन विभिन्न प्रकार के उन हिस्सों से प्रारम्भ हुआ जो वस्तुनिष्ठता के आधार पर बाँटे गए। मार्क्स ने संबंधों के इस द्वन्द्व में मुख्यत: दो वर्गों को स्वीकार किया पूँजीपति वर्ग, जिसे मार्क्स ने बुर्जुवा वर्ग कहा। यह औद्योगिक और कृषि में उत्पादन के साधनों के स्वामी और काम नहीं करने वाले धनी सम्पत्तिधारियों को लेकर गठित होता है। ये अपने उत्पादन प्रतिष्ठानों में श्रम कार्य का गठन करते हैं और सर्वहारा के शोषण के परिणामस्वरूप लाभ के रूप में अतिरिक्त उत्पादन करते हैं।

जीवन के परिवर्तित रूपों के साथ-साथ समाज में भी परिवर्तन आना स्वाभाविक है। परिवेश और परिस्थितियों की भिन्नता समाज को मानव जीवन को प्रभावित करती है। साहित्य में यह परिवर्तन परिलक्षित होता है। अत: साहित्य मूल्यांकन के लिए नये मापदण्ड प्रस्तुत होते हैं। जीवन की सार्थकता और उसकी गत्यात्मकता विकासशील वर्गों के निर्माण में एक कारक की भूमिका का निर्वाह करती है, तब वर्ग सामाजिक अवधारणाओं से स्वयं को पुष्ट करता है। कार्ल मार्क्स ने सामाजिक प्रतिष्ठा को आर्थिक स्थिति तथा पारिवारिक स्वामित्व को वर्ग चेतना का उदय माना है।

आर्थिक आधार पर हमारा समाज कई श्रेणियों में विभक्त है। **डॉ. हेमराज निर्मम** के अनुसार ''मार्क्स के विचार में सामन्तवादी युग की समाप्ति पर पूँजीवादी युग का आरम्भ हुआ। पूँजीवादी युग ने कृषि में अधिकांश लोगों को साधारण काश्तकार बना दिया है . . .। इसलिए पूँजीवादी युग के चरम विकास में समाज में केवल दो ही वर्ग रह जाएंगे, बुर्जुआ और प्रोलेटियर (श्रमिक)। बुर्जुआ और श्रमिक के बीच में एक वर्ग है, जिसे पेटी (छोटी) बुर्जुआ कहा गया है। पर मार्क्स और एंग्लिस भविष्य में इस वर्ग का कोई अस्तित्त्व नहीं मानते। अत: उनकी दृष्टि में समाज केवल दो वर्गों में विभाजित है–बुर्जुआ और श्रमिक।''

आर्थिक आधार पर मुख्यत: दो वर्ग दृष्टिगत होते हैं– महाजनों-जमींदार तथा सेठ साहूकारों के रूप में उच्च वर्ग (पूँजीपति वर्ग) तथा छोटे किसानों खेतिहर मजदूरों एवं अन्य पेशेवर मजदूरों के रूप में निम्न वर्ग, जिसे समाज में शोषक और शोषित के नाम से अभिहित किया जाता है। पूँजीपति वर्ग शोषक का प्रतिनिधित्व करता है तथा गरीब (निम्न वर्ग) शोषितों का, पर गाँवों में शहरी व्यवस्था संक्रमित हो रही है। ग्रामीण लोग कृषि के अतिरिक्त नौकरी व अन्य व्यवसायों की ओर भी अग्रसर होने लगे हैं। अत: उच्च व निम्न वर्ग के बीच एक तीसरा वर्ग 'मध्यवर्ग' उठ खड़ा हुआ। **डॉ. सुरेन्द्र नाथ तिवारी** के अनुसार ''आज के जीवन में अर्थ ही सामाजिक विषमता का मूल कारण है और अर्थ पर ही आधारित, आधुनिक सामाजिक व्यवस्था के अन्तर्गत नये वर्गों का प्रादुर्भाव भी हुआ है। फलत: वर्ग चेतना और वर्ग संघर्ष आधुनिक युग में ही विशेष रूप से प्रतिध्वनित हुआ है। '' आर्थिक और सामाजिक स्तर वाले व्यक्ति एक वर्ग का निर्माण करते हैं। भिन्न-भिन्न विद्वानों द्वारा वर्ग-निर्धारण के भिन्न-भिन्न प्रमुख आधार बतलाए गए हैं। किन्तु किसी एक आधार पर वर्ग निर्धारण करना उचित नहीं है।

## *समाज का वर्गीकरण*

**उच्च वर्ग**–समाज का सबसे अधिक सम्पन्न वर्ग उच्च वर्ग की श्रेणी में आता है। उच्चवर्ग के व्यक्ति धनधान्य एवं सुख-सुविधाओं से परिपूर्ण होते हैं। इस कारण यह ऐश्वर्य पूर्ण जीवन व्यतीत करते हैं। गाँवों में उच्च वर्ग के अन्तर्गत जमींदार, महाजन, तहसीलदार, सेठ साहूकार, मुखिया, नेता व सरकारी अफसर आते हैं।

**मध्यवर्ग**–उच्च वर्ग और निम्न वर्ग के बीच का वर्ग मध्य वर्ग कहलाता है। इनकी बौद्धिक विचारधारा उच्च वर्ग के समान होती है। परन्तु आर्थिक अभाव के कारण उच्च वर्ग के समान जीवन यापन करने में प्रायः असमर्थ रहते हैं।

**उच्च मध्य वर्ग**–यह मध्यवर्ग का ऊपरी हिस्सा है और उच्च वर्ग के कुछ निकट होता है। यह केवल अपने हित को ही ध्यान में रखता है। यह निम्न वर्ग से दूरी बनाये रखता है।

**निम्नवर्ग**–समाज का सबसे अधिक पिछड़ा हुआ वर्ग निम्न वर्ग की श्रेणी में आता है। इस वर्ग के अन्तर्गत अनुसूचित जातियाँ अनुसूचित जन जातियाँ, खेतिहर किसान, भूमिहीन मजदूर, आदि आते हैं। इनका जीवन अत्यन्त संघर्षपूर्ण होता है। गाँवों में अधिकांश व्यक्ति कृषि कर्म से जुड़े हैं। उनके पास श्रम के अलावा उत्पादन का कोई साधन नहीं होता। ''यह निम्न वर्ग उन लोगों का वर्ग है, जो अपने जीविकोपार्जन के लिए श्रम पर निर्भर रहते हैं।''

**निम्न मध्य वर्ग**–निम्न मध्य वर्ग मध्यवर्ग का निचला स्तर है। इस वर्ग की आवश्यकता पेट भरने तक सीमित रह जाती है। ग्रामीण निम्न मध्यवर्ग के अन्तर्गत मुख्यतः छोटे महाजन, सौदागर, पंडे-पुरोहित, खाते-पीते किसान आते हैं। शहरी निम्नवर्ग में छोटे व्यापारी, दुकानदार, शिक्षित बुद्धिजीवी, महावारी वेतन भोगी कर्मचारी आदि आते हैं।

# 3

# मगध महाजनपद

प्राचीन भारतीय इतिहास में मगध का विशेष स्थान है। प्राचीन काल में भारत अनेक छोटे-बड़े राज्यों की सत्ता थी। मगध के प्रतापी राजाओं ने इन राज्यों पर विजय प्राप्त कर भारतके एक बड़े भाग पर विशाल एवं शक्तिशाली साम्राज्य की स्थापना की और इस प्रकार मगध के शासकों ने सर्वप्रथम अपनी साम्राज्यवादी प्रवृत्ति को प्रदर्शित किया। मगध में मौर्य वंश की स्थापना से पूर्व भी अनेक शासकों ने अपने बाहुबल व वीरता से मगध साम्राज्य को शक्तिशाली बनाया था।

## मगध साम्राज्य के उदय का कारण

मगध उत्तर भारत के विशाल तटवर्ती मैदानों के ऊपरी एवं निचले भागों के मध्य अति सुरक्षित स्थान पर था। पांच पहाड़ियों के मध्य एक दुर्गम स्थान पर स्थित होने के कारण वहां तक शत्रुओं का पहुंचना प्रायः असम्भव था।

गंगा नदी के कारण भी मगध में व्यापारी सुविधायें बढ़ी और आर्थिक दृष्टि से मगध के महत्त्व में वृद्धि हुई। मगध साम्राज्य की भूमि अत्यधिक उपजाऊ थी, अतः आर्थिक दृष्टि से मगध सम्पन्न राज्य था। हाथियों के बाहुल्य ने भी मगध साम्राज्य के उत्कर्ष में महत्त्वपूर्ण योगदान था।

मगध साम्राज्य में लोहा बहुतायत और सरलता से मिलता था। मगध की शक्ति का यह महत्त्वपूर्ण स्रोत था। इससे जंगल साफ करके खेती के लिये भूमि निकाली जा सकती थी और उपज बढ़ाई जा सकती थी।

## मगध साम्राज्य का उदय

काफी समय तक इस काल का राजनीतिक इतिहास मुख्यत: उपरोक्त राज्यों में सर्वोच्चता के संघर्ष का लेखा-जोखा है। समय के साथ, मगध सर्वाधिक शक्तिशाली राज्य के रूप में उदित हुआ और एक विशाल साम्राज्य के रूप में फैला। मगध, राजा बिम्बसार (544 492-ई.पू.) के शासन काल में शक्तिशाली बना। वह भगवान बुद्ध का समकालीन था और हरयंक राजकुल से संबंधित था। शुरू से ही बिम्बसार ने विस्तार की नीति अपनाई। अपनी स्थिति को शक्तिशाली बनाने के लिए उसके पास कुछ सुविधाएं थी। उसका साम्राज्य चारों ओर नदियों और पहाड़ियों के द्वारा सुरक्षित था। उसकी राजधानी राजगीर पहाड़ियों के साथ थी। उसके साम्राज्य की समृद्ध और उपजाऊ मिट्टी में बहुत अधिक उपज होती थी। हिरण्यवता या सोन नदी ने व्यापार को बढ़ावा दिया। इस तरह व्यापारिक और भूमि कर‌राज्य की आमदनी के प्रमुख स्त्रोत थे।

मगध और आस-पास के क्षेत्रों की लोहे की समृद्ध खानों ने लोहे के हथियार बनाने में मदद की। अंग का अपने राज्य में शामिल करना बिम्बसार की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण उपलब्धियों में से था। अंग की राजधानी चंपा व्यापार का महत्त्वपूर्ण केन्द्र थी। बिम्बसार ने अपने पुत्र अजातशत्रु को इस राज्य का राज्यपाल बनाया। मगध का सबसे मुख्य शत्रु अवंती था। बिम्बसार का इसके शासन प्रद्योत महासेन के साथ लंबा युद्ध चला, जो हालांकि अंतत: मित्रता में तबदील हुआ। बौद्ध ग्रंथों में हमें पता चलता है कि गंभीर रोग से पीड़ित प्रद्योत महासेन के इलाज के लिए बिम्बसार ने अपने चिकित्सक जीवक को भेजा था। बिम्बसार ने कौसल, वैशाली और भद्र के महत्त्वपूर्ण राज्य-परिवारों के साथ वैवाहिक संबंध स्थापित किए। कौसल नरेश प्रसेनजित की बहन से विवाह में बिम्बसार को काफी गांव दहेज में प्राप्त हुआ। इन विवाहों ने उसकी स्थिति को मजबूत किया और सम्मान को बढ़ाया। इस तरह वैवाहिक संबंधों और विजयों से बिम्बसार ने मगध को अत्यधिक शक्तिशाली राज्य बना दिया।

बिम्बसार ने कार्यकुशल प्रशासन व्यवस्थित किया। महावीर और बुद्ध दोनों ने इसके शासनकाल के दौरान अपने सिद्धांतों के उपदेश दिए और ऐसा बताया जाता है कि उसने दोनों से ही करीबी संबंध रखे। संभवत: वह अजातशत्रु के हाथों मारा गया, जिसने राजगद्दी पर कब्जा किया।

अजातशत्रु ने स्वयं को अनेक शत्रुओं से घिरा पाया। राजा प्रसेनजित ने उसके खिलाफ युद्ध घोषित कर दिया और लिच्छवियों तथा विज्जियों के साथ

भी उनके लंबे युद्ध हुए। काशी और अवंती साम्राज्य भी उसके शत्रु हो गए। अजातशत्रु ने इन चुनौतियों का सामना साहस और सफलता के साथ किया तथा उसने मगध को और बड़ा राज्य बना दिया। उसके पुत्र उदयन (460ई.पू.- 444 ई.पू.) ने पाटलिपुत्र शहर का निर्माण किया, जो मगध की नई राजधानी बनी। बिंबसार के राजवंश के बाद शिशुनागों का शासन आया और अंततः मगध की राजगद्दी को महापद्म नंद ने हथिया लिया।

पुराणों के अनुसार नंद-नीची जाति के थे और क्षत्रिय नहीं थे। लेकिन उन्होंने स्वयं को सर्वाधिक शक्तिशाली शासक साबित किया और संभवतः उन्होंने कलिंग को अपने साम्राज्य में मिला लिया। सिकंदर के आक्रमण के समय (326 ई.पू.) नंद मगध पर शासन कर रहे थे। कुछ ऐतिहासिक अभिलेखों के अनुसार नंदों की शक्ति ने सिंकदर को भारत में और आगे बढ़ने से हतोत्साहित किया और उसे घर लौटने को विवश किया। यूनानी विवरणों के अनुसार धननंद केपास 20,000 घोड़ों, 2,00,000 पदाति, 2,000 रथों और कम से कम 3,000 हाथियों की विशाल सेना थी। नंद विभिन्न कारणों से अलोकप्रिय हो गए। विशाल सेना के रख-रखाव के लिए उन्होंने लोगों पर भारी कर लगाए और वे दमनकारी और साथ ही बहुत अहंकारी भी हो गए। परंपरा के अनुसार, नंदों के निरंकुश शासन को चन्द्रगुप्त मौर्य ने लगभग 323 ई.पू. में उखाड़ फेका। ऐसा भी विश्वास है कि इस उपलब्धि में चाणक्य नामक ब्राह्मण ने चन्द्रगुप्त की बहुत मदद की। महाजनपदों में से कुछ तो साम्राज्यवादी थे और कुछ लोकतंत्रात्मक। बिम्बसार और अजातशत्रु के शासन काल में मगध अत्यधिक शक्तिशाली राज्य के रूप में उभरा। नंद राजाओं के शासनकाल के दौरान सिंकदर ने पंजाब में तो प्रवेश कर लिया, लेकिन नंद की सेना के डर से और आगे नहीं बढ़ा। चन्द्रगुप्त मौर्य ने राजा नंद को हरा कर मगध का शासन प्राप्त किया। अपने पिता की मृत्यु के बाद 20 वर्ष की आयु में वह मकदूनिया (यूनान का एक राज्य) के सिंहासन पर आसीन हुआ। दो वर्ष पश्चात् वह एक विशाल सेना लेकर विश्व विजय के लिये चल पड़ा। 331 ई.पू. में उसने विशाल इखमनी साम्राज्य को नष्ट कर डाला और 327 ई.पू. में बल्खया बैक्ट्रियां पर अधिकार करके उसने भारतीय द्वार पर दस्तक दी।

सिकन्दर के भीतरी अभियान के दो चरण थे-

## *व्यास नदी तक सिकन्दर का अभियान*

चौथी शताब्दी ई.पू. के दौरान यूनान और फारस पश्चिमी एशिया पर अधिकार के लिए लड़े। अन्ततः मकदूनिया के सिकन्दर के नेतृत्व में यूनानियों

ने इखमनी साम्राज्य को नष्ट कर दिया। उसने एशिया माइनर, इराक और ईरान को जीता और फिर वह भारत की ओर बढ़ा। यूनानी इतिहासकार **हिरोदोतम्** के अनुसार सिकन्दर भारत की धन-सम्पदा से बहुत आकर्षित हुआ था। सिकन्दर के आक्रमण के समय उत्तर पश्चिम भारत छोटे-छोटे राजतंत्रों में बंटा हुआ था। एकता के अभाव में यूनानियों को उन्हें एक के बाद एक जीतने में मदद की। उनमें सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण राजा थे- आंभी और पोरस। यदि वे अपने मतभेद भुलाकर संयुक्त मोर्चा लेते, तो शायद यूनानियों को हराया जा सकता था। इसके विपरीत, तक्षशिला नरेश आंभी ने पोरस के खिलाफ सिकन्दर की मदद की। आंभी ने बिना कोई विरोध किए सिकन्दर के सम्मुख समर्पण कर दिया। लेकिन बहादुर पोरस, जिसका राज्य झेलम के किनारे था, ने कड़ा विरोध प्रदर्शित किया। हालांकि वह हार गया, लेकिन सिकन्दर उसकी बहादुरी से प्रभावित हुआ और उसके साथ सम्मान जनक व्यवहार किया व उसका राज्य भी लौटा दिया।

इसके बाद सिकन्दर व्यास नदी की ओर बढ़ा और उसने पंजाब के काफी राज्यों को हरा दिया। वह पूर्व दिशा में आगे बढ़ना चाहता था, लेकिन उसके सैनिकों ने मगध के नंद की विशाल सेना और शक्ति के बारे में सुना और हतोत्साहित होकर, उन्होंने आगे बढ़ने से इंकार कर दिया। यूनानी इतिहासकारों के अनुसार दस वर्षो के लंबे अभियान के बाद उन्हें घर की याद भी सताने लगी थी। सिकन्दर के बार-बार अनुरोध करने के बावजूद सैनिकों ने पूर्व दिशा की ओर बढ़ने से इंकार कर दिया और सिकन्दर को लौटना पड़ा। इस तरह पूर्व में साम्राज्य स्थापित करने का उसका सपना पूरी तरह साकार नहीं हुआ।

वापसी यात्रा में सिकन्दर ने अनेक छोटे-मोटे गणतंत्रों जैसे सिबि और शुद्रक को हराया। सिकन्दर भारत में 19 महीनों (326 ई.पू.-325 ई.पू.) तक रहा। इन महीनों में उसने युद्ध ही युद्ध किए। 323 ई.पू. में 32 वर्ष की अल्पायु में उसकी बेबीलोन (बगदाद के निकट) में मृत्यु हो गई। सिकन्दर को अपनी विजयों को व्यवस्थित करने का समय नहीं मिला। ज्यादा राज्यों को उसके शासकों को, जिन्होंने उसकी सत्ता स्वीकार कर ली, लौटा दिया गया। उसने अपने अधिकृत क्षेत्र, जिनमें पूर्वी यूरोप के कुछ भाग और पश्चिमी एशिया का कुछ बड़ा भाग शामिल था, को तीन भागों में बांटा। उसके लिए सिकन्दर ने तीन राज्यपाल नियुक्त किए। उसके साम्राज्य का पूर्वी हिस्सा सेल्यूक्स निकेटर को मिला, जिसने अपने स्वामी सिकन्दर की मृत्यु के बाद, स्वयं को राजा घोषित कर दिया।

सिकन्दर के आक्रमण ने भारत में राजनीतिक एकता का मार्ग प्रशस्त किया। सिकन्दर ने सभी छोटे और झगडालू राज्यों को जीत लिया था, और इस क्षेत्र में मौर्यो का विस्तार आसान हों गया।

## मगध की सर्वोच्चता–मुख्य कारक

मजबूत केंद्रिक सरकार के अन्तर्गत मगध एक बड़े राज्य के रूप में विकसित हुआ, यह बिम्बसार, अजातशत्रु और महापद्म नंद जैसे अनेक महत्त्वाकांक्षी राजाओं की जीतोड़ मेहनत का नतीजा था, जिन्होंने साम्राज्यवादी नीति के तहत अपनी शक्ति को बढ़या। धार्मिक दृष्टि से भी मगध बहुत महत्त्वपूर्ण बन गया। जैन धर्म और बौद्ध धर्म दोनों इसी क्षेत्र में विकसित हुए, जिन्होंने लोगों के सामाजिक जीवन को बहुत प्रभावित किया। कृषि और व्यापार के विकास से वैश्य समुदाय समृद्ध हो गया, लेकिन ब्राह्मणवादी समाज से उसे कोई मान्यता नहीं मिली। इसलिए उन्होंने जैन धर्म और बौद्ध धर्म को स्वीकार करना अधिक अच्छा समझा, जो रूढ़ जाति पद्धति को मान्यता नहीं देते थे और साथ ही पशु बलि पर भी प्रतिबंध लगाते थे, जो कृषि अर्थ व्यवस्था में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण थे। जैसा कि पहले बताया जा चुका है, मगधवासियों ने इस क्षेत्र में उपलब्ध समृद्ध लोहे की खानों का इस्तेमाल मजबूत हथियार और कृषि औजार बनाने के लिए किया। इसने उन्हें राजनीतिक और आर्थिक दृष्टि से लाभ की स्थिति प्राप्त करने में मदद की। मगध को कुछ और सुविधाएं भी थी। मगध की दोनों राजधानियां पहले राजगीर और बाद में पाटलीपुत्र, सामाजिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण स्थिति में थी। राजगीर का दुर्ग पांच पहाड़ियों से घिरा हुआ था। इसलिए इसे गिरिवज्र भी कहा जाता था। आक्रमणकारियों के लिए राजधानी से घुसना अत्यन्त कठिन था।

पांचवी शताब्दी ई.पू. मगध की राजधानी पाटलिपुत्र में स्थानांतरित हो गई, जिसे अजातशत्रु के पुत्र उदयन ने बनाया था। पाटलिपुत्र तीन नदियों, गंगा, गंडक और सोन के संगम पर स्थित था। चौथी नदी सरयू भी पाटलीपुत्र के निकट गंगा में मिलती थी। चारों ओर से इसे नदियों ने घेरा हुआ था, जिसने इसे वस्तुतः ''जलदुर्ग'' बना दिया था जहां शत्रुओं की पहुंच प्रायः असंभव थी। इन नदियों को राज मार्ग, की तरह इस्तेमाल करके मगध के राजा अपने सैनिकों को किसी भी दिशा में भेज सकते थे।

गंगा और उसकी सहायक नदियों द्वारा लाई गई उपजाऊ कछारी मिट्टी ने मगध क्षेत्र को बहुत अधिक समृद्ध बना दिया। लोहे के औजारों और उपकरणों से जंगलों को साफ करके अधिकाधिक भूमि पर खेती की जाने लगी। ऊष्ण वातावरण और भारी वर्षा से किसान बिना किसी खास कठिनाई के भारी फसल उगा पाते थे। बौद्ध ग्रंथों में आया है कि मगध के किसान चावलों की अनेक किस्में उगाते थे। अतिरिक्त उपज का इस्तेमाल राजा अपने सैनिकों और अधिकारियों को वेतन देने के लिए कर सकते थे। अतिरिक्त अन्न के कारण व्यापार भी फला फूला। मगध के जल मार्गों ने पूर्व भारत के व्यापार और वाणिज्य को नियंत्रित किया। इन नदियों के किनारे अनेक महत्त्वपूर्ण नगर, महत्त्वपूर्ण व्यापार केन्द्रों के रूप में विकसित हुए, जिस ने मगध के राजाओं को वस्तुओं की बिक्री पर मार्ग कर लगाने की अभिप्रेरणा दी। इससे उन्हें अपार संपदा एकत्रित करने और विशाल सेना रखने में मदद हुई।

युद्ध हाथी मगध की सेना का विशेष अंग थे। मगध पहला राज्य था, जिसने युद्ध में हाथियों का इस्तेमान बड़े पैमाने पर किया। बाकी अन्य राज्य प्रायः रथों और, घोड़ों पर निर्भर थे। दुर्गो को गिराने और दल में चलने में हाथी उपयोगी थे। यूनानी स्रोतों से हमें पता चलता है कि मगध की सेना में 6, 000 हाथी थे, जिन्होंने सिकन्दर के नेतृत्व में पंजाब पर कब्जा कर चुके सैनिकों के मन में दहशत पैदा कर दी थी। संभवतः यह उन कारणों में से एक था, जिनकी वजह से मगध साम्राज्य पर आक्रमण करने के स्थान पर वह यूनान वापस लौट गए। मगध के समाज के गैर रूढ़िवादी चरित्र ने भी अप्रत्यक्ष रूप से इसके विकास में मदद की। कुछ प्रमुख इतिहासकारों का मत है कि शक्तिशाली राज्य के रूप में मगध के उदय का प्रमुख कारण इस क्षेत्र के लोगों का जातीय मिश्रण था। अनेक समुदायों का मिला-जुला रूप मगध में था, जिससे एक मिश्रित संस्कृति का विकास हुआ, जो प्रकृति में रूढ़िवादी वैदिक समाज से बहुत भिन्न थी।

मगध के उत्कर्ष करने में निम्न वंश का महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है-

### *ब्रहद्रथ वंश*

यह सबसे प्राचीनतम राजवंश था। महाभारत तथा पुराणों के अनुसार जरासंध के पिता तथा चेदिराज वसु के पुत्र ब्रहद्रथ ने ब्रहद्रथ वंश की स्थापना की। इस वंश में दस राजा हुए, जिसमें ब्रहद्रथ पुत्र जरासंध एवं प्रतापी सम्राट था। जरासंध ने काशी, कौसल, चेदि, मालवा, विदेह, अंग, वंग, कलिंग, कश्मीर

और गांधार राजाओं को पराजित किया। मथुरा शासक कंस ने जरासंध की दो पुत्रियों अस्ति और प्रप्ति से शादी की थी तथा ब्रहद्रथ वंश की राजधानी वशुमति या गिरिब्रज या राजगृह बनाई। भगवान श्रीकृष्ण की सहायता से पाण्डव पुत्र भीम ने जरासंध को द्वन्द्व युद्ध में मार दिया। उसके बाद उसके पुत्र सहदेव को शासक बनाया गया। इस वंश का अन्तिम राजा रिपुन्जय था। रिपुन्जय को उसके दरबारी मंत्री पूलिक ने मारकर अपने पुत्र को राजा बना दिया। इसके बाद एक अन्य दरबारी 'महीय' ने पूलिक और उसके पुत्र की हत्या कर अपने पुत्र बिम्बिसार को गद्दी पर बैठाया। ईसा पूर्व 600 में ब्रहद्रथ वंश को समाप्त कर एक नये राजवंश की स्थापना हुई। पुराणों के अनुसार मनु के पुत्र सुद्युम्न के पुत्र का ही नाम 'गया' था।

## *वैशाली के लिच्छवी*

बिहार में स्थित प्राचीन गणराज्यों में बुद्धकालीन समय में सबसे बड़ा तथा शक्तिशाली राज्य था। इस गणराज्य की स्थापना सूर्यवंशीय राजा इश्वाकु के पुत्र विशाल ने की थी, जो कालान्तर में 'वैशाली' के नाम से विख्यात हुआ।

महावग्ग जातक के अनुसार लिच्छवि वज्जिसंघ का एक धनी समृद्धशाली नगर था। यहाँ अनेक सुन्दर भवन, चैत्य तथा विहार थे।

लिच्छवियों ने महात्मा बुद्ध के निवारण हेतु महावन में प्रसिद्ध कतागारशाला का निर्माण करवाया था।

राजा चेतक की पुत्री चेलना का विवाह मगध नरेश बिम्बिसार से हुआ था।

ईसा पूर्व 7वीं शती में वैशाली के लिच्छवि राजतन्त्र से गणतन्त्र में परिवर्तित हो गया।

विशाल ने वैशाली शहर की स्थापना की। वैशालिका राजवंश का प्रथम शासक नमनेदिष्ट था, जबकि अन्तिम राजा सुति या प्रमाति था। इस राजवंश में 24 राजा हुए हैं।

## *अलकप्प के बुलि*

यह प्राचीन गणराज्य बिहार के शाहाबाद, आरा और मुजफ्फरपुर, जिलों के बीच स्थित था। बुलियों का बैठ द्वीप (बेतिया) के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध था। बेतिया बुलियों की राजधानी थी। बुलि लोग बौद्ध धर्म के अनुयायी थे। बुद्ध की मृत्यु के पश्चात् उनके अवशेष को प्राप्त कर एक स्तूप का निर्माण करवाया था।

## *हर्यक वंश*

बिम्बिसार ने हर्यक वंश की स्थापना 544 ई. पू. में की। इसके साथ ही राजनीतिक शक्ति के रूप में बिहार का सर्वप्रथम उदय हुआ। बिम्बिसार को मगध साम्राज्य का वास्तविक संस्थापक-राजा माना जाता है। बिम्बिसार ने गिरिव्रज (राजगीर) को अपनी राजधानी बनाया। इसके वैवाहिक सम्बन्धों (कौसल, वैशाली एवं पंजाब) की नीति अपनाकर अपने साम्राज्य का विस्तार किया।

**आम्रपाली**- यह वैशाली की नर्तकी एवं परम रूपवती काम कला प्रवीण वेश्या थी। आम्रपाली के सौन्दर्य पर मोहित होकर बिम्बिसार ने लिच्छवि से जीतकर राजगृह में ले आया। उसके संयोग से जीवक नामक पुत्ररत्न हुआ। बिम्बिसार ने जीवक को तक्षशिला में शिक्षा हेतु भेजा। यही जीवक एक प्रख्यात चिकित्सक एवं राजवैद्य बना।

**अजातशत्रु ( 492-460 ई. पू. )**- बिम्बिसार के बाद अजातशत्रु मगध के सिंहासन पर बैठा। इसके बचपन का नाम कुणिक था। वह अपने पिता की हत्या कर गद्दी पर बैठा। अजातशत्रु ने अपने पिता के साम्राज्य विस्तार की नीति को चरमोत्कर्ष तक पहुँचाया।

अजातशत्रु के सिंहासन मिलने के बाद वह अनेक राज्य संघर्ष एवं कठिनाइयों से घिर गया लेकिन अपने बाहुबल और बुद्धिमानी से सभी पर विजय प्राप्त की। महत्त्वाकांक्षी अजातशत्रु ने अपने पिता को कारागार में डालकर कठोर यातनाएँ दीं, जिससे पिता की मृत्यु हो गई। इससे दुखित होकर कौसल रानी की मृत्यु हो गई।

**कौसल संघर्ष**- बिम्बिसार की पत्नी (कौसल) की मृत्यु से प्रसेनजीत बहुत क्रोधित हुआ और अजातशत्रु के खिलाफ संघर्ष छेड़ दिया। पराजित प्रसेनजीत श्रावस्ती भाग गया लेकिन दूसरे युद्ध-संघर्ष में अजातशत्रु पराजित हो गया लेकिन प्रसेनजीत ने अपनी पुत्री वाजिरा का विवाह कर काशी को दहेज में दे दिया।

**वज्जि संघ संघर्ष**- लिच्छवि राजकुमारी चेलना बिम्बिसार की पत्नी थी, जिससे उत्पन्न दो पुत्री हल्ल और बेहल्ल को उसने अपना हाथी और रत्नों का एक हार दिया था, जिसे अजातशत्रु ने मनमुटाव के कारण वापस माँगा। इसे चेलना ने अस्वीकार कर दिया, फलतः अजातशत्रु ने लिच्छवियों के खिलाफ युद्ध घोषित कर दिया।

वस्सकार से लिच्छवियों के बीच फूट डालकर उसे पराजित कर दिया और लिच्छवि अपने राज्य में मिला लिया।

मल्ल संघर्ष- अजातशत्रु ने मल्ल संघ पर आक्रमण कर अपने अधिकार में कर लिया। इस प्रकार पूर्वी उत्तर प्रदेश के एक बड़े भू-भाग मगध साम्राज्य का अंग बन गया।

अजातशत्रु ने अपने प्रबल प्रतिद्वन्द्वी अवन्ति राज्य पर आक्रमण करके विजय प्राप्त की।

अजातशत्रु धार्मिक उदार सम्राट था। विभिन्न ग्रन्थों के अनुसार वे बौद्ध और जैन दोनों मत के अनुयायी माने जाते हैं, लेकिन भरहुत स्तूप की एक वेदिका के ऊपर अजातशत्रु बुद्ध की वंदना करता हुआ दिखाया गया है।

उसने शासनकाल के आठवें वर्ष में बुद्ध के महापरिनिर्वाण के बाद उनके अवशेषों पर राजगृह में स्तूप का निर्माण करवाया और 483 ई. पू. राजगृह की सप्तपर्णि गुफा में प्रथम बौद्ध संगीति का आयोजन किया। इस संगीति में बौद्ध भिक्षुओं के सम्बन्धित पिटकों को सुतपिटक और विनयपिटक में विभाजित किया।

सिंहली अनुश्रुतियों के अनुसार उसने लगभग 32 वर्षों तक शासन किया और 460 ई. पू. में अपने पुत्र उदयन द्वारा मारा गया था।

अजातशत्रु के शासनकाल में ही महात्मा बुद्ध 487 ई. पू. महापरिनिर्वाण तथा महावीर का भी निधन 468 ई. पू. हुआ था।

**उदयन**- अजातशत्रु के बाद 460 ई. पू. मगध का राजा बना। बौद्ध ग्रन्थानुसार इसे पितृहन्ता लेकिन जैन ग्रन्थानुसार पितृभक्त कहा गया है। इसकी माता का नाम पद्मावती था।

उदयन शासक बनने से पहले चम्पा का उपराजा था। वह पिता की तरह ही वीर और विस्तारवादी नीति का पालक था।

इसने पाटलि पुत्र (गंगा और सोन के संगम) को बसाया तथा अपनी राजधानी राजगृह से पाटलिपुत्र स्थापित की।

मगध के प्रतिद्वन्द्वी राज्य अवन्ति के गुप्तचर द्वारा उदयन की हत्या कर दी गई।

बौद्ध ग्रन्थों के अनुसार उदयन के तीन पुत्र अनिरुद्ध, मंडक और नागदासक थे। उदयन के तीनों पुत्रों ने राज्य किया। अन्तिम राजा नागदासक था। जो अत्यन्त विलासी और निर्बल था। शासनतन्त्र में शिथिलता के कारण व्यापक

असन्तोष जनता में फैला। राज्य विद्रोह कर उनका सेनापति शिशुनाग राजा बना। इस प्रकार हर्यक वंश का अन्त और शिशुनाग वंश की स्थापना 412ई.पू. हुई।

## *शिशुनाग वंश*

शिशुनाग 412ई. पू.गद्दी पर बैठा। महावंश के अनुसार वह लिच्छवि राजा की वेश्या पत्नी से उत्पन्न पुत्र था। पुराणों के अनुसार वह क्षत्रिय था। इसने सर्वप्रथम मगध के प्रबल प्रतिद्वन्द्वी राज्य अवन्ति को मिलाया। मगध की सीमा पश्चिम मालवा तक फैल गई और वत्स को मगध में मिला दिया। वत्स और अवन्ति के मगध में विलय से, पाटलिपुत्र को पश्चिमी देशों से, व्यापारिक मार्ग के लिए रास्ता खुल गया।

शिशुनाग ने मगध से बंगाल की सीमा से मालवा तक विशाल भू-भाग पर अधिकार कर लिया।

शिशुनाग एक शक्तिशाली शासक था, जिसने गिरिव्रज के अलावा वैशाली नगर को भी अपनी राजधानी बनाया। 394 ई. पू. में इसकी मृत्यु हो गई।

**कालाशोक**- यह शिशुनाग का पुत्र था जो शिशुनाग के 394 ई. पू. मृत्यु के बाद मगध का शासक बना। महावंश में इसे कालाशोक तथा पुराणों में काकवर्ण कहा गया है। कालाशोक ने अपनी राजधानी को पाटलिपुत्र स्थानान्तरित कर दिया था। इसने 28 वर्षों तक शासन किया। कालाशोक के शासनकाल में ही बौद्ध धर्म की द्वितीय संगीति का आयोजन हुआ।

बाणभट्ट रचित हर्षचरित के अनुसार काकवर्ण को राजधानी पाटलिपुत्र में घूमते समय महापद्मनन्द नामक व्यक्ति ने चाकू मारकर हत्या कर दी थी। 366 ई. पू. कालाशोक की मृत्यु हो गई।

महाबोधिवंश के अनुसार कालाशोक के दस पुत्र थे, जिन्होंने मगध पर 22 वर्षों तक शासन किया।

शिशुनाग वंश का अंतिम राजा नन्दिवर्धन था।

344 ई. पू. में शिशुनाग वंश का अन्त हो गया और नन्द वंश का उदय हुआ।

## *नन्द वंश*

344 ई. पू. में चक्रवर्ती सम्राट महापद्मनन्द ने नन्द वंश की स्थापना की। पुराणों में इसे महापद्म तथा महाबोधिवंश में उग्रसेन कहा गया है। यह सैन(नाई) जाति का था। यह एक क्षत्रिय जाति है।

उसे महापद्म एकारट, सर्व क्षत्रन्तक आदि उपाधियों से विभूषित किया गया है। महापद्म नन्द के प्रमुख राज्य उत्तराधिकारी हुए हैं- उग्रसेन, पंडूक, पाण्डुगति, भूतपाल, राष्ट्रपाल, योविषाणक, दशसिद्धक, कैवर्त, धनानन्द, चंद्रनंद। इसके शासन काल में भारत पर आक्रमण सिकन्दर द्वारा किया गया। सिकन्दर के भारत से जाने के बाद मगध साम्राज्य में अशान्ति और अव्यवस्था फैली। धनानन्द एक लालची और धन संग्रही शासक था। असीम शक्ति और सम्पत्ति के बावजूद वह जनता के विश्वास को नहीं जीत सका। उसने एक महान विद्वान ब्राह्मण चाणक्य को अपमानित किया था।

चाणक्य ने अपनी कूटनीति से धनानन्द को पराजित कर चन्द्रगुप्त मौर्य को मगध का शासक बनाया।

महापद्मनन्द पहला शासक था जिसने गंगा घाटी की सीमाओं का अतिक्रमण कर विन्ध्य पर्वत के दक्षिण तक विजय पताका लहराई।

नन्द वंश के समय मगध राजनैतिक दृष्टि से अत्यन्त समृद्धशाली साम्राज्य बन गया।

व्याकरण के आचार्य पाणिनी महापद्मनन्द के मित्र थे।

वर्ष, उपवर्ष, वर, रुचि, कात्यायन जैसे विद्वान नन्द शासन में हुए।

शाकटाय तथा स्थूल भद्र धनानन्द के जैन मतावलम्बी अमात्य थे।

## *मौर्य राजवंश*

322 ई. पू. में चन्द्रगुप्त मौर्य ने अपने गुरू चाणक्य की सहायता से धनानन्द की हत्या कर मौर्य वंश की नींव डाली थी।

चन्द्रगुप्त मौर्य ने नन्दों के अत्याचार व घृणित शासन से मुक्ति दिलाई और देश को एकता के सूत्र में बाँधा और मौर्य साम्राज्य की स्थापना की। यह साम्राज्य गणतन्त्र व्यवस्था पर राजतन्त्र व्यवस्था की जीत थी। इस कार्य में अर्थशास्त्र नामक पुस्तक द्वारा चाणक्य ने सहयोग किया। विष्णुगुप्त व कौटिल्य उनके अन्य नाम हैं। आर्यों के आगमन के बाद यह प्रथम स्थापित साम्राज्य था।

**चन्द्रगुप्त मौर्य ( 322 ई. पू. से 298 ई. पू. )**- चन्द्रगुप्त मौर्य के जन्म वंश के सम्बन्ध में विवाद है। ब्राह्मण, बौद्ध तथा जैन ग्रन्थों में परस्पर विरोधी विवरण मिलता है।

विविध प्रमाणों और आलोचनात्मक समीक्षा के बाद यह तर्क निर्धारित होता है कि चन्द्रगुप्त मोरिय वंश का क्षत्रिय था। चन्द्रगुप्त के पिता मोरिय नगर

प्रमुख थे। जब वह गर्भ में ही था तब उसके पिता की मृत्यु युद्धभूमि में हो गयी थी। उसका पाटलिपुत्र में जन्म हुआ था तथा एक गोपालक द्वारा पोषित किया गया था। चरावाह तथा शिकारी रूप में ही राजा-गुण होने का पता चाणक्य ने कर लिया था तथा उसे एक हजार में कषार्पण में खरीद लिया। तत्पश्चात् तक्षशिला लाकर सभी विद्या में निपुण बनाया। अध्ययन के दौरान ही सम्भवतः चन्द्रगुप्त सिकन्दर से मिला था। 323 ई. पू. में सिकन्दर की मृत्यु हो गयी तथा उत्तरी सिन्धु घाटी में प्रमुख यूनानी क्षत्रप फिलिप द्वितीय की हत्या हो गई।

जिस समय चन्द्रगुप्त राजा बना था भारत की राजनीतिक स्थिति बहुत खराब थी। उसने सबसे पहले एक सेना तैयार की और सिकन्दर के विरुद्ध युद्ध प्रारम्भ किया। 317 ई. पू. तक उसने सम्पूर्ण सिन्ध और पंजाब प्रदेशों पर अधिकार कर लिया। अब चन्द्रगुप्त मौर्य सिन्ध तथा पंजाब का एकक्षत्र शासक हो गया। पंजाब और सिन्ध विजय के बाद चन्द्रगुप्त तथा चाणक्य ने धनानन्द का नाश करने हेतु मगध पर आक्रमण कर दिया। युद्ध में धनानन्द मारा गया। अब चन्द्रगुप्त भारत के एक विशाल साम्राज्य मगध का शासक बन गया। सिकन्दर की मृत्यु के बाद सेल्यूकस उसका उत्तराधिकारी बना। वह सिकन्दर द्वारा जीता हुआ भू-भाग प्राप्त करने के लिए उत्सुक था। इस उद्देश्य से 305 ई. पू. उसने भारत पर पुनः चढ़ाई की। चन्द्रगुप्त ने पश्चिमोत्तर भारत के यूनानी शासक सेल्यूकस निकेटर को पराजित कर एरिया (हेरात), अराकोसिया (कंधार), जेड्रोसिया पेरोपेनिसडाई (काबुल) के भू-भाग को अधिकृत कर विशाल भारतीय साम्राज्य की स्थापना की। सेल्यूकस ने अपनी पुत्री हेलन का विवाह चन्द्रगुप्त से कर दिया। उसने मेगस्थनीज को राजदूत के रूप में चन्द्रगुप्त मौर्य के दरबार में नियुक्त किया।

चन्द्रगुप्त मौर्य ने पश्चिम भारत में सौराष्ट्र तक प्रदेश जीतकर अपने प्रत्यक्ष शासन के अन्तर्गत शामिल किया। गिरनार अभिलेख (150 ई. पू.) के अनुसार इस प्रदेश में पुण्यगुप्त वैश्य चन्द्रगुप्त मौर्य का राज्यपाल था। इसने सुदर्शन झील का निर्माण किया। दक्षिण में चन्द्रगुप्त मौर्य ने उत्तरी कर्नाटक तक विजय प्राप्त की।

चन्द्रगुप्त मौर्य के विशाल साम्राज्य में काबुल, हेरात, कन्धार, बलूचिस्तान, पंजाब, गंगा-यमुना का मैदान, बिहार, बंगाल, गुजरात था तथा विन्ध्य और कश्मीर के भू-भाग सम्मिलित थे, लेकिन चन्द्रगुप्त मौर्य ने अपना साम्राज्य उत्तर-पश्चिम में ईरान से लेकर पूर्व में बंगाल तथा उत्तर में कश्मीर से लेकर

दक्षिण में उत्तरी कर्नाटक तक विस्तृत किया था। अन्तिम समय में चन्द्रगुप्त मौर्य जैन मुनि भद्रबाहु के साथ श्रवणबेलगोला चला गया था। 298 ई. पू. में उपवास द्वारा चन्द्रगुप्त मौर्य ने अपना शरीर त्याग दिया।

**बिन्दुसार ( 298 ई. पू. से 273 ई. पू. )**– यह चन्द्रगुप्त मौर्य का पुत्र व उत्तराधिकारी था, जिसे वायु पुराण में मद्रसार और जैन साहित्य में सिंहसेन कहा गया है। यूनानी लेखक ने इन्हें अभिलोचेट्स कहा है। यह 298 ई. पू. मगध साम्राज्य के सिंहासन पर बैठा। जैन ग्रन्थों के अनुसार बिन्दुसार की माता दुर्धरा थी। थेरवाद परम्परा के अनुसार वह ब्राह्मण धर्म का अनुयायी था।

बिन्दुसार के समय में भारत का पश्चिम एशिया से व्यापारिक सम्बन्ध अच्छा था। बिन्दुसार के दरबार में सीरिया के राजा एंतियोकस ने डायमाइकस नामक राजदूत भेजा था। मिस्र के राजा टॉलेमी के काल में डाइनोसियस नामक राजदूत मौर्य दरबार में बिन्दुसार की राज्यसभा में आया था।

दिव्यादान के अनुसार बिन्दुसार के शासनकाल में तक्षशिला में दो विद्रोह हुए थे, जिनका दमन करने के लिए पहली बार अशोक को, दूसरी बार सुसीम को भेजा।

प्रशासन के क्षेत्र में बिन्दुसार ने अपने पिता का ही अनुसरण किया। प्रति में उपराजा के रूप में कुमार नियुक्त किए। दिव्यादान के अनुसार अशोक अवन्ति का उपराजा था। बिन्दुसार की सभा में 500 सदस्यों वाली मन्त्रिपरिषद् थी, जिसका प्रधान खल्लाटक था। बिन्दुसार ने 25 वर्षों तक राज्य किया। अन्ततः 273 ई. पू. उसकी मृत्यु हो गयी।

**अशोक ( 273 ई. पू. से 236 ई. पू. )**– राजगद्दी प्राप्त होने के बाद अशोक को अपनी आन्तरिक स्थिति सुदृढ़ करने में चार वर्ष लगे। इस कारण राज्यारोहण चार साल बाद 269 ई. पू. में हुआ था।

वह 273 ई. पू. में सिंहासन पर बैठा। अभिलेखों में उसे देवानां प्रिय एवं राजा आदि उपाधियों से सम्बोधित किया गया है। मास्की तथा गर्जरा के लेखों में उसका नाम अशोक तथा पुराणों में उसे अशोक वर्धन कहा गया है। सिंहली अनुश्रुतियों के अनुसार अशोक ने 99 भाइयों की हत्या करके राजसिंहासन प्राप्त किया था, लेकिन इस उत्तराधिकार के लिए कोई स्वतंत्र प्रमाण प्राप्त नहीं हुआ है।

दिव्यादान में अशोक की माता का नाम सुभद्रांगी है, जो चम्पा के एक ब्राह्मण की पुत्री थी।

सिंहली अनुश्रुतियों के अनुसार उज्जयिनी जाते समय अशोक विदिशा में रुका जहाँ उसने श्रेष्ठी की पुत्री देवी से विवाह किया, जिससे महेन्द्र और संघमित्र का जन्म हुआ। दिव्यादान में उसकी एक पत्नी का नाम तिष्यरक्षिता मिलता है। उसके लेख में केवल उसकी पत्नी का नाम करूणावकि है, जो तीवर की माता थी। बौद्ध परम्परा एवं कथाओं के अनुसार बिन्दुसार अशोक को राजा नहीं बनाकर सुसीम को सिंहासन पर बैठाना चाहता था, लेकिन अशोक एवं बड़े भाई सुसीम के बीच युद्ध की चर्चा है।

## अशोक का कलिंग युद्ध

अशोक ने अपने राज्याभिषेक के 8वें वर्ष 261 ई. पू. में कलिंग पर आक्रमण किया था। आन्तरिक अशान्ति से निपटने के बाद 269 ई. पू. में उसका विधिवत् अभिषेक हुआ। तेरहवें शिलालेख के अनुसार कलिंग युद्ध में एक लाख 50 हजार व्यक्ति बन्दी बनाकर निर्वासित कर दिए गये, एक लाख लोगों की हत्या कर दी गयी। सम्राट अशोक ने भारी नरसंहार को अपनी आँखों से देखा। इससे द्रवित होकर अशोक ने शान्ति, सामाजिक प्रगति तथा धार्मिक प्रचार किया।

कलिंग युद्ध ने अशोक के हृदय में महान परिवर्तन कर दिया। उसका हृदय मानवता के प्रति दया और करुणा से उद्वेलित हो गया। उसने युद्ध क्रियाओं को सदा के लिए बन्द कर देने की प्रतिज्ञा की। यहाँ से आध्यात्मिक और धम्म विजय का युग शुरू हुआ। उसने बौद्ध धर्म को अपना धर्म स्वीकार किया।

सिंहली अनुश्रुतियों दीपवंश एवं महावंश के अनुसार अशोक को अपने शासन के चौदहवें वर्ष में निगोथ नामक भिक्षु द्वारा बौद्ध धर्म की दीक्षा दी गई थी। तत्पश्चात् मोगाली पुत्र निस्स के प्रभाव से वह पूर्णतः बौद्ध हो गया था। दिव्यादान के अनुसार अशोक को बौद्ध धर्म में दीक्षित करने का श्रेय उपगुप्त नामक बौद्ध भिक्षुक को जाता है। अपने शासनकाल के दसवें वर्ष में सर्वप्रथम बोधगया की यात्रा की थी। तदुपरान्त अपने राज्याभिषेक के बीसवें वर्ष में लुम्बिनी की यात्रा की थी तथा लुम्बिनी ग्राम को करमुक्त घोषित कर दिया था।

## अशोक एवं बौद्ध धर्म

कलिंग के युद्ध के बाद अशोक ने व्यक्तिगत रूप से बौद्ध धर्म अपना लिया।

अशोक के शासनकाल में ही पाटलिपुत्र में तृतीय बौद्ध संगीति का आयोजन किया गया, जिसकी अध्यक्षता मोगाली पुत्र तिष्या ने की। इसी में अभिधम्मपिटक की रचना हुई और बौद्ध भिक्षु विभिन्न देशों में भेजे गये, जिनमें अशोक के पुत्र महेन्द्र एवं पुत्री संघमित्र को श्रीलंका भेजा गया।

दिव्यादान में उसकी एक पत्नी का नाम तिष्यरक्षिता मिलता है। उसके लेख में केवल उसकी पत्नी करूणावकि है। दिव्यादान में अशोक के दो भाइयों सुसीम तथा विगताशोक का नाम का उल्लेख है।

विद्वानों ने अशोक की तुलना विश्व इतिहास की विभूतियाँ कांस्टेटाइन, ऐटोनियस, अकबर, सेन्टपॉल, नेपोलियन सीजर के साथ की है।

अशोक ने अहिंसा, शान्ति तथा लोक कल्याणकारी नीतियों के विश्वविख्यात तथा अतुलनीय सम्राट हैं। एच. जी. वेल्स के अनुसार अशोक का चरित्र "इतिहास के स्तम्भों को भरने वाले राजाओं, सम्राटों, धर्माधिकारियों, सन्त-महात्माओं आदि के बीच प्रकाशमान है और आकाश में प्रायः एकाकी तारा की तरह चमकता है।'

अशोक ने बौद्ध धर्म को अपना लिया और साम्राज्य के सभी साधनों को जनता के कल्याण हेतु लगा दिया।

अशोक ने बौद्ध धर्म के प्रचार के लिए निम्नलिखित साधन अपनाये-

(अ) धर्मयात्राओं का प्रारम्भ, (ब) राजकीय पदाधिकारियों की नियुक्ति, (स) धर्म महापात्रों की नियुक्ति, (द) दिव्य रूपों का प्रदर्शन, (य) धर्म श्रावण एवं धर्मोपदेश की व्यवस्था, (र) लोकाचारिता के कार्य, (ल) धर्मलिपियों का खुदवाना, (ह) विदेशों में धर्म प्रचार को प्रचारक भेजना आदि।

अशोक ने बौद्ध धर्म का प्रचार का प्रारम्भ धर्मयात्राओं से किया। वह अभिषेक के 10वें वर्ष बोधगया की यात्रा पर गया। कलिंग युद्ध के बाद आमोद-प्रमोद की यात्राओं पर पाबन्दी लगा दी। अपने अभिषेक 20वें वर्ष में लुम्बिनी ग्राम की यात्रा की। नेपाल तराई में स्थित निगलीवा में उसने कनकमुनि के स्तूप की मरम्मत करवाई। बौद्ध धर्म के प्रचार के लिए अपने साम्राज्य के उच्च पदाधिकारियों को नियुक्त किया। स्तम्भ लेख तीन और सात के अनुसार उसने व्युष्ट, रज्जुक, प्रादेशिक तथा युक्त नामक पदाधिकारियों को जनता के बीच जाकर धर्म प्रचार करने और उपदेश देने का आदेश दिया।

अभिषेक के 13वें वर्ष के बाद उसने बौद्ध धर्म प्रचार हेतु पदाधिकारियों का एक नया वर्ग बनाया, जिसे धर्म महापात्र कहा गया था। इसका कर्य विभिन्न धार्मिक सम्प्रदायों के बीच द्वेषभाव को मिटाकर धर्म की एकता स्थापित करना था।

## *अशोक के शिलालेख*

अशोक के 14 शिलालेख विभिन्न लेखों का समूह हैं, जो आठ भिन्न-भिन्न स्थानों से प्राप्त किए गये हैं-

(1) धौली- यह उड़ीसा के पुरी, जिला में है,
(2) शाहबाज गढ़ी- यह पाकिस्तान (पेशावर) में है,
(3) मान सेहरा- यह हजारा, जिले में स्थित है,
(4) कालपी- यह वर्तमान उत्तरांचल (देहरादून) में है,
(5) जौगढ़- यह उड़ीसा के जौगढ़ में स्थित है,
(6) सोपरा- यह महराष्ट्र के थाणे, जिले में है,
(7) एरागुडि- यह आन्ध्र प्रदेश के कुर्नूल, जिले में स्थित है,
(8) गिरनार- यह काठियाबाड़ में जूनागढ़ के पास है।

## *अशोक के लघु शिलालेख*

अशोक के लघु शिलालेख चौदह शिलालेखों के मुख्य वर्ग में सम्मिलित नहीं है, जिन्हें लघु शिलालेख कहा जाता है। ये निम्नांकित स्थानों से प्राप्त हुए हैं-

(1) रूपनाथ- यह मध्य प्रदेश के जबलपुर, जिले में है।
(2) गुजरी- यह मध्य प्रदेश के दतिया, जिले में है।
(3) भबू- यह राजस्थान के जयपुर, जिले में है।
(4) मास्की- यह रायचूर, जिले में स्थित है।
(5) सहसराम- यह बिहार के शाहाबाद, जिले में है।

धम्म को लोकप्रिय बनाने के लिए अशोक ने मानव व पशु जाति के कल्याण हेतु पशु-पक्षियों की हत्या पर प्रतिबन्ध लगा दिया था। राज्य तथा विदेशी राज्यों में भी मानव तथा पशु के लिए अलग चिकित्सा की व्यवस्था की। अशोक के महान पुण्य का कार्य एवं स्वर्ग प्राप्ति का उपदेश बौद्ध ग्रन्थ संयुक्त निकाय में दिया गया है।

अशोक ने दूर-दूर तक बौद्ध धर्म के प्रचार हेतु दूतों, प्रचारकों को विदेशों में भेजा अपने दूसरे तथा 13वें शिलालेख में उसने उन देशों का नाम लिखवाया जहाँ दूत भेजे गये थे।

दक्षिण सीमा पर स्थित राज्य चोल, पाण्ड्य, सतिययुक्त केरल पुत्र एवं ताम्रपार्णि बताये गये हैं।

## अशोक के अभिलेख

अशोक के अभिलेखों में शाहनाज गढ़ी एवं मान सेहरा (पाकिस्तान) के अभिलेख खरोष्ठी लिपि में उत्कीर्ण हैं। तक्षशिला एवं लघमान (काबुल) के समीप अफगानिस्तान अभिलेख आरमाइक एवं ग्रीक में उत्कीर्ण हैं। इसके अतिरिक्त अशोक के समस्त शिलालेख लघुशिला स्तम्भ लेख एवं लघु लेख ब्राह्मी लिपि में उत्कीर्ण हैं। अशोक का इतिहास भी हमें इन अभिलेखों से प्राप्त होता है।

अभी तक अशोक के 40 अभिलेख प्राप्त हो चुके हैं। सर्वप्रथम 1837 ई. में **जेम्स पिंसेप** नामक विद्वान ने अशोक के अभिलेख को पढ़ने में सफलता हासिल की थी।

रायपुरबा- यह भी बिहार राज्य के चम्पारण, जिले में स्थित है।

प्रयाग- यह पहले कौशाम्बी में स्थित था जो बाद में मुगल सम्राट अकबर द्वारा इलाहाबाद के किले में रखवाया गया था।

### *अशोक के लघु स्तम्भ लेख*

सम्राट अशोक की राजकीय घोषणाएँ, जिन स्तम्भों पर उत्कीर्ण हैं उन्हें लघु स्तम्भ लेख कहा जाता है, जो निम्न स्थानों पर स्थित हैं-

1. सांची- मध्य प्रदेश के रायसेन, जिले में है,
2. सारनाथ- उत्तर प्रदेश के वाराणसी, जिले में है,
3. रूम्मिनदेई- नेपाल के तराई में है,
4. कौशाम्बी- इलाहाबाद के निकट है,
5. निग्लीवा- नेपाल के तराई में है,
6. ब्रह्मगिरि- यह मैसूर के चिबल दुर्ग में स्थित है,
7. सिद्धपुर- यह ब्रह्मगिरि से एक मील उ. पू. में स्थित है,
8. जतिंग रामेश्वर- जो ब्रह्मगिरि से तीन मील उ. पू. में स्थित है,
9. एरागुडि- यह आन्ध्र प्रदेश के कूर्नुल, जिले में स्थित है,
10. गोविमठ- यह मैसूर के कोपवाय नामक स्थान के निकट है,
11. पालकिगुण्क- यह गोविमठ की चार मील की दूरी पर है,
12. राजूल मंडागिरि- यह आन्ध्र प्रदेश के कूर्नुल, जिले में स्थित है,
13. अहरौरा- यह उत्तर प्रदेश के मिर्जापुर, जिले में स्थित है,
14. सारो-मारो- यह मध्य प्रदेश के शहडोल, जिले में स्थित है,
15. नेतुर- यह मैसूर, जिले में स्थित है।

## *अशोक के गुहा लेख*

दक्षिण बिहार के गया, जिले में स्थित बराबर नामक तीन गुफाओं की दीवारों पर अशोक के लेख उत्कीर्ण प्राप्त हुए हैं। इन सभी की भाषा प्राकृत तथा ब्राह्मी लिपि में है। केवल दो अभिलेखों शाहवाजगढ़ी तथा मान सेहरा की लिपि ब्राह्मी न होकर खरोष्ठी है। यह लिपि दायीं से बायीं और लिखी जाती है।

तक्षशिला से आरमाइक लिपि में लिखा गया एक भग्न अभिलेख कन्धार के पास शारे-कुना नामक स्थान से यूनानी तथा आरमाइक द्विभाषीय अभिलेख प्राप्त हुआ है।

## *अशोक के स्तम्भ लेख*

अशोक के स्तम्भ लेखों की संख्या सात है, जो छः भिन्न स्थानों में पाषाण स्तम्भों पर उत्कीर्ण पाये गये हैं। इन स्थानों के नाम हैं-

(1) दिल्ली तोपरा- यह स्तम्भ लेख प्रारंभ में उत्तर प्रदेश के सहारनपुर, जिले में पाया गया था। यह मध्य युगीन सुल्तान फिरोजशाह तुगलक द्वारा दिल्ली लाया गया। इस पर अशोक के सातों अभिलेख उत्कीर्ण हैं।

(2) दिल्ली मेरठ- यह स्तम्भ लेख भी पहले मेरठ में था जो बाद में फिरोजशाह द्वारा दिल्ली लाया गया।

(3) लौरिया तमतंर तथा लौरिया नन्दगढ़- यह स्तम्भ लेख बिहार राज्य के चम्पारण, जिले में है।

**सैन्य व्यवस्था**- सैन्य व्यवस्था छः समितियों में विभक्त सैन्य विभाग द्वारा निर्दिष्ट थी। प्रत्येक समिति में पाँच सैन्य विशेषज्ञ होते थे।

पैदल सेना, अश्व सेना, गज सेना, रथ सेना तथा नौ सेना की व्यवस्था थी।

सैनिक प्रबन्ध का सर्वोच्च अधिकारी अन्तपाल कहलाता था। यह सीमान्त क्षेत्रों का भी व्यवस्थापक होता था। मेगस्थनीज के अनुसार चन्द्रगुप्त मौर्य की सेना छः लाख पैदल, पचास हजार अश्वारोही, नौ हजार हाथी तथा आठ सौ रथों से सुसज्जित अजेय सैनिक थे।

## *प्रान्तीय प्रशासन*

चन्द्रगुप्त मौर्य ने शासन संचालन को सुचारु रूप से चलाने के लिए चार प्रान्तों में विभाजित कर दिया था, जिन्हें चक्र कहा जाता था। इन प्रान्तों का शासन

सम्राट के प्रतिनिधि द्वारा संचालित होता था। सम्राट अशोक के काल में प्रान्तों की संख्या पाँच हो गई थी। ये प्रान्त थे-

| प्रान्त | राजधानी |
|---|---|
| प्राची (मध्य देश)- | पाटलिपुत्र |
| उत्तरापथ - | तक्षशिला |
| दक्षिणापथ - | सुवर्णगिरि |
| अवन्ति राष्ट्र - | उज्जयिनी |
| कलिंग - | तोलायी |

प्रान्तों (चक्रों) का प्रशासन राजवंशीय कुमार (आर्य पुत्र) नामक पदाधिकारियों द्वारा होता था।

कुमाराभाष्य की सहायता के लिए प्रत्येक प्रान्त में महापात्र नामक अधिकारी होते थे। शीर्ष पर साम्राज्य का केन्द्रीय प्रभाग तत्पश्चात् प्रान्त आहार (विषय) में विभक्त था। ग्राम प्रशासन की निम्न इकाई था, 100 ग्राम के समूह को संग्रहण कहा जाता था।

आहार विषयपति के अधीन होता था, जिले के प्रशासनिक अधिकारी स्थानिक था। गोप दस गाँव की व्यवस्था करता था।

**नगर प्रशासन**

मेगस्थनीज के अनुसार मौर्य शासन का नगरीय प्रशासन छः समिति में विभक्त था।

प्रथम समिति- उद्योग शिल्पों का निरीक्षण करता था,

द्वितीय समिति- विदेशियों की देखरेख करता है,

तृतीय समिति- जनगणना,

चतुर्थ समिति- व्यापार वाणिज्य की व्यवस्था,

पंचम समिति- विक्रय की व्यवस्था, निरीक्षण,

षष्ठ समिति- बिक्री कर व्यवस्था।

नगर में अनुशासन बनाये रखने के लिए तथा अपराधों पर नियन्त्रण रखने हेतु पुलिस व्यवस्था थी, जिसे रक्षित कहा जाता था।

यूनानी स्त्रोतों से ज्ञात होता है कि नगर प्रशासन में तीन प्रकार के अधिकारी होते थे-एग्रोनोयोई (जिलाधिकारी), एण्टीनोमोई (नगर आयुक्त), सैन्य अधिकारी।

**अशोक के परवर्ती मौर्य सम्राट**- मगध साम्राज्य के महान मौर्य सम्राट अशोक की मृत्यु 237-236 ई. पू. में (लगभग) हुई थी। अशोक के उपरान्त अगले पाँच दशक तक उनके निर्बल उत्तराधिकारी शासन संचालित करते रहे।

**अशोक के उत्तराधिकारी**- जैन, बौद्ध तथा ब्राह्मण ग्रन्थों में अशोक के उत्तराधिकारियों के शासन के बारे में परस्पर विरोधी विचार पाये जाते हैं। पुराणों में अशोक के बाद 9 या 10 शासकों की चर्चा है, जबकि दिव्यादान के अनुसार 6 शासकों ने अशोक के बाद शासन किया। अशोक की मृत्यु के बाद मौर्य साम्राज्य पश्चिमी और पूर्वी भाग में बँट गया। पश्चिमी भाग पर कुणाल शासन करता था, जबकि पूर्वी भाग पर सम्प्रति का शासन था लेकिन 180 ई. पू. तक पश्चिमी भाग पर बैक्ट्रिया यूनानी का पूर्ण अधिकार हो गया था। पूर्वी भाग पर दशरथ का राज्य था। वह मौर्य वंश का अन्तिम शासक है।

## मौर्य साम्राज्य का पतन

मौर्य सम्राट की मृत्यु (237-236ई. पू.) के उपरान्त करीबन दो सदियों (322-184ई.पू.) से चले आ रहे शक्तिशाली मौर्य साम्राज्य का विघटन होने लगा।

अन्तिम मौर्य सम्राट वृहद्रथ की हत्या उसके सेनापति पुष्यमित्र ने कर दी। इससे मौर्य साम्राज्य समाप्त हो गया।

इसके पतन के कारण निम्न हैं-

1.अयोग्य एवं निर्बल उत्तराधिकारी, 2.प्रशासन का अत्यधिक केन्द्रीयकरण, 3.राष्ट्रीय चेतना का अभाव, 4.आर्थिक एवं सांस्कृतिक असमानताएँ 5.प्रान्तीय शासकों के अत्याचार, 6.करों की अधिकता।

विभिन्न इतिहासकारों ने मौर्य वंश का पतन के लिए भिन्न-भिन्न कारणों का उल्लेख किया है-

हर प्रसाद शास्त्री - धार्मिक नीति (ब्राह्मण विरोधी नीति के कारण),

हेमचन्द्र राय चौधरी - सम्राट अशोक की अहिंसक एवं शान्तिप्रिय नीति,

डी. डी.कौशाम्बी- आर्थिक संकटग्रस्त व्यवस्था का होना,

डी.एन.झा-निर्बल उत्तराधिकारी,

रोमिला थापर - मौर्य साम्राज्य के पतन के लिए केन्द्रीय शासन अधिकारी तन्त्र का अव्यवस्था एवं अप्रशिक्षित होना।

**मौर्य शासन** - भारत में सर्वप्रथम मौर्य वंश के शासनकाल में ही राष्ट्रीय राजनीतिक एकता स्थापित हुइ थी। मौर्य प्रशासन में सत्ता का सुदृढ़ केन्द्रीयकरण था परन्तु राजा निरंकुश नहीं होता था। मौर्य काल में गणतन्त्र का ह्रास हुआ और राजतन्त्रात्मक व्यवस्था सुदृढ़ हुई। कौटिल्य ने राज्य सप्तांक सिद्धान्त निर्दिष्ट

किया था, जिनके आधार पर मौर्य प्रशासन और उसकी गृह तथा विदेश नीति संचालित होती थी –राजा, अमात्य, जनपद, दुर्ग, कोष, सेना और, मित्र।

## शुंग राजवंश

पुष्यमित्र शुंग– मौर्य साम्राज्य के अन्तिम शासक वृहद्रथ की हत्या करके 184ई.पू. में पुष्यमित्र ने मौर्य साम्राज्य के राज्य पर अधिकार कर लिया, जिस नये राजवंश की स्थापना की उसे पूरे देश में शुंग राजवंश के नाम से जाना जाता है। शुंग ब्राह्मण थे। बौद्ध धर्म के प्रचार–प्रसार के फलस्वरूप अशोक द्वारा यज्ञों पर रोक लगा दिये जाने के बाद उन्होंने पुरोहित का कर्म त्यागकर सैनिक वृत्ति को अपना लिया था। पुष्यमित्र अन्तिम मौर्य शासक वृहद्रथ का प्रधान सेनापति था। पुष्यमित्र शुंग के पश्चात् इस वंश में नौ शासक और हुए, जिनके नाम थे –अग्निमित्र, वसुज्येष्ठ, वसुमित्र, भद्रक, तीन अज्ञात शासक, भागवत और देवभूति। एक दिन सेना का निरीक्षण करते समय वृहद्र्थ की धोखे से हत्या कर दी। उसने 'सेनानी' की उपाधि धारण की थी। दीर्घकाल तक मौर्यों की सेना का सेनापति होने के कारण पुष्यमित्र इसी रूप में विख्यात था तथा राजा बन जाने के बाद भी उसने अपनी यह उपाधि बनाये रखी। शुंग काल में संस्कृत भाषा का पुनरुत्थान हुआ था मनुस्मृति के वर्तमान स्वरूप की रचना इसी युग में हुई थी। अत: उसने निस्संदेह राजत्व को प्राप्त किया था। परवर्ती मौर्यों के निर्बल शासन में मगध का सरकारी प्रशासन तन्त्र शिथिल पड़ गया था एवं देश को आन्तरिक एवं बाह्य संकटों का खतरा था। ऐसी विकट स्थिति में पुष्य मित्र शुंग ने मगध साम्राज्य पर अपना अधिकार जमाकर जहाँ एक ओर यवनों के आक्रमण से देश की रक्षा की और देश में शान्ति और व्यवस्था की स्थापना कर वैदिक धर्म एवं आदेशों की रक्षा की, जो अशोक के शासनकाल में उपेक्षित हो गये थे। इसी कारण इसका काल वैदिक प्रतिक्रिया अथवा वैदिक पुनर्जागरण का काल कहलाता है। शुंग वंश के अन्तिम सम्राट देवभूति की हत्या करके उसके सचिव वसुदेव ने 75 ई. पू. कण्व वंश की नींव डाली।

## शुंगकालीन संस्कृति के प्रमुख तथ्य

शुंग राजाओं का काल वैदिक अथवा ब्राह्मण धर्म का पुनर्जागरण काल माना जाता है।

पुष्यमित्र शुंग ने ब्राह्मण धर्म का पुनरुत्थान किया। शुंग के सर्वोत्तम स्मारक स्तूप हैं। बोधगया के विशाल मन्दिर के चारों और एक छोटी पाषाण वेदिका मिली है। इसका निर्माण भी शुंगकाल में हुआ था। इसमें कमल, राजा, रानी, पुरुष, पशु, बोधिवृक्ष, छत्र, त्रिरत्न, कल्पवृक्ष, आदि प्रमुख हैं।

स्वर्ण मुद्रा निष्क, दिनार, सुवर्ण, मात्रिक कहा जाता था। ताँबे के सिक्के काषार्पण कहलाते थे। चाँदी के सिक्के के लिए 'पुराण'अथवा 'धारण' शब्द आया है।

शुंग काल में समाज में बाल विवाह का प्रचलन हो गया था तथा कन्याओं का विवाह आठ से 12 वर्ष की आयु में किया जाने लगा था।

शुंग राजाओं का काल वैदिक काल की अपेक्षा एक बड़े वर्ग के लोगों के मस्तिष्क परम्परा, संस्कृति एवं विचारधारा को प्रतिबिम्बित कर सकने में अधिक समर्थ है।

शुंग काल के उत्कृष्ट नमूने बिहार के बोधगया से प्राप्त होते हैं। भरहुत, सांची, बेसनगर की कला भी उत्कृष्ट है।

महाभाष्य के अलावा मनुस्मृति का मौजूदा स्वरूप सम्भवत: इसी युग में रचा गया था। विद्वानों के अनुसार शुंग काल में ही महाभारत के शान्तिपूर्व तथा अश्वमेध का भी परिवर्तन हुआ। माना जाता है कि पुष्यमित्र ने बौद्ध धर्मावलम्बियों पर बहुत अत्याचार किया, लेकिन सम्भवत: इसका कारण बौद्धों द्वारा विदेशी आक्रमण अर्थात् यवनों की मदद करना था। पुष्यमित्र ने अशोक द्वारा निर्माण करवाये गये 84 हजार स्तूपों को नष्ट करवाया। बौद्ध ग्रन्थ दिव्यावदान के अनुसार यह भी सच है कि उसने कुछ बौद्धों को अपना मन्त्री नियुक्त कर रखा था। पुराणों के अनुसार पुष्यमित्र ने 36 वर्षों तक शासन किया। इस प्रकार उसका काल ई.पू से 148ई.पू.तक माना जाता है।

## पुष्यमित्र के उत्तराधिकारी

**अग्निमित्र**- पुष्यमित्र की मृत्यु (148इ.पू.) के पश्चात् उसका पुत्र अग्निमित्र शुंग वंश का राजा हुआ। वह विदिशा का उपराजा था। उसने कुल 8 वर्षों तक शासन किया।

वसुज्येष्ठ या सुज्येष्ठ - अग्निमित्र के बाद वसुज्येष्ठ राजा हुआ।

**वसुमित्र** - शुंग वंश का चौथा राजा वसुमित्र हुआ। उसने यवनों को पराजित किया था। एक दिन नृत्य का आनन्द लेते समय मूजदेव नामक व्यक्ति

ने उसकी हत्या कर दी। उसने 10 वर्षों तक शासन किया। वसुमित्र के बाद भद्रक, पुलिंदक, घोष तथा फिर वज्रमित्र क्रमशः राजा हुए। इसके शाशन के 14वें वर्ष में तक्षशिला के यवन नरेश एंटीयालकीड्स का राजदूत हेलियोंडोरस उसके विदिशा स्थित दरबार में उपस्थित हुआ था। वह अत्यन्त विलासी शासक था। उसके अमात्य वसुदेव ने उसकी हत्या कर दी। इस प्रकार शुंग वंश का अन्त हो गया।

**महत्त्व**- इस वंश के राजाओं ने मगध साम्रज्य के केन्द्रीय भाग की विदेशियों से रक्षा की तथा मध्य भारत में शान्ति और सुव्यव्स्था की स्थापना कर विकेन्द्रीकरण की प्रवृत्ति को कुछ समय तक रोके रखा। मौर्य साम्राज्य के ध्वंसावशेषों पर उन्होंने वैदिक संस्कृति के आदर्शों की प्रतिष्ठा की। यही कारण है कि उसका शासनकाल वैदिक पुनर्जागरण का काल माना जाता है।

विदर्भ युद्ध- मालविकामित्रम के अनुसार पुष्यमित्र के काल में लगभग 184इ.पू. में विदर्भ युद्ध में पुष्यमित्र की विजय हुई और राज्य दो भागों में बांट दिया गया। वर्षा नदी दोनों राज्यों कीं सीमा मान ली गई। दोनों भागों के नरेश ने पुष्यमित्र को अपना सम्राट मान लिया तथा इस राज्य का एक भाग माधवसेन को प्राप्त हुआ। पुष्यमित्र का प्रभाव क्षेत्र नर्मदा नदी के दक्षिण तक विस्तृत हो गया।

**यवनों का आक्रमण** - यवनों को मध्य देश से निकालकर सिन्धु के किनारे तक खदेड़ दिया और पुष्यमित्र के हाथों सेनापति एवं राजा के रूप में उन्हें पराजित होना पड़ा। यह पुष्यमित्र के काल की सबसे महत्त्वपूर्ण घटना थी।

**पुष्यमित्र का शासन प्रबन्ध**- साम्राज्य की राजधानी पाटलिपुत्र थी। पुष्यमित्र प्राचीन मौर्य साम्राज्य के मध्यवर्ती भाग को सुरक्षित रख सकने में सफल रहा। पुष्यमित्र का साम्राज्य उत्तर में हिमालय से लेकर दक्षिण में बरार तक तथा पश्चिम में पंजाब से लेकर पूर्व में मगध तक फैला हुआ था। दिव्यावदान और तारानाथ के अनुसार जालन्धर और स्यालकोट पर भी उसका अधिकार था। साम्राज्य के विभिन्न भागों में राजकुमार या राजकुल के लोगों को राज्यपाल नियुक्त करने की परम्परा चलती रही। पुष्यमित्र ने अपने पुत्रों को साम्राज्य के विभिन्न क्षेत्रों में सह -शासक नियुक्त कर रखा था। उसका पुत्र अग्निमित्र विदिशा का उपराजा था। धनदेव कौसल का राज्यपाल था। राजकुमार जी सेना के संचालक भी थे। इस समय भी ग्राम शासन की सबसे छोटी इकाई होती थी। इस काल तक आते-आते मौर्यकालीन केन्द्रीय नियन्त्रण में शिथिलता आ गयी थी तथा सामंतीकरण की प्रवृत्ति सक्रिय होने लगी थीं।

## *कण्व राजवंश*

शुंग वंश के अन्तिम शासक देवभूति के मन्त्रि वसुदेव ने उसकी हत्या कर सत्ता प्राप्त कर कण्व वंश की स्थापना की। कण्व वंश ने 75इ.पू. से 30इ.पू. तक शासन किया। वसुदेव पाटलिपुत्र के कण्व वंश का प्रवर्तक था। वैदिक धर्म एवं संस्कृति संरक्षण की जो परम्परा शुंगों ने प्रारम्भ की थी। उसे कण्व वंश ने जारी रखा। इस वंश का अन्तिम सम्राट सुशमी कण्य अत्यन्त अयोग्य और दुर्बल था। और मगध क्षेत्र संकुचित होने लगा। कण्व वंश का साम्राज्य बिहार, पूर्वी उत्तर प्रदेश तक सीमित हो गया और अनेक प्रान्तों ने अपने को स्वतन्त्र घोषित कर दिया। तत्पश्चात् उसका पुत्र नारायण और अन्त में सुशमी ने राजकाज संभाला, जिसे सातवाहन वंश के प्रवर्तक सिमुक ने पदच्युत कर दिया था। इस वंश के चार राजाओं ने 75इ.पू. से 30इ.पू. तक शासन किया।

## *आन्ध्र व कुषाण वंश*

मगध में आन्ध्रों का शासन था या नहीं इसकी जानकारी नहीं मिलती है। कुषाणकालीन अवशेष भी बिहार से अनेक स्थानों से प्राप्त हुए हैं। कुछ समय के पश्चात् प्रथम सदी इ. में इस क्षेत्र में कुषाणों का अभियान हुआ। कुषाण शासक कनिष्क द्वारा पाटलिपुत्र पर आक्रमण किये जाने और यहां के प्रसिद्ध बौद्ध विद्वान अश्वघोष को अपने दरबार में प्रश्रय देने की चर्चा मिलती है। कुषाण साम्राज्य के पतन के बाद मगध पर लिच्छवियों का शासन रहा। अन्य विद्वान मगध पर शक मुण्डों का शासन मानते हैं।

## *गुप्त साम्राज्य (गुप्तकालीन बिहार)*

मौर्य वंश के पतन के बाद दीर्घकाल तक भारत में राजनीतिक एकता स्थापित नहीं रही। कुषाण एवं सातवाहनों ने राजनीतिक एकता लाने का प्रयास किया।

मौर्योत्तर काल के उपरान्त तीसरी शताब्दी इ. में तीन राजवंशों का उदय हुआ, जिसमें मध्य भारत में नाग शक्ति, दक्षिण में बाकाटक तथा पूर्वी भारत में गुप्त वंश प्रमुख हैं।

मौर्य वंश के पतन के पश्चात् नष्ट हुई राजनीतिक एकता को पुनर्स्थापित करने का श्रेय गुप्त वंश को है।

गुप्त साम्राज्य की नींव तीसरी शताब्दी के चौथे दशक में तथा उत्थान चौथी शताब्दी की शुरुआत में हुआ। गुप्त वंश का प्रारम्भिक राज्य आधुनिक उत्तर प्रदेश और बिहार में था।

## गुप्त वंश की स्थापना

गुप्त राजवंश की स्थापना महाराजा गुप्त ने लगभग 275ई.में की थी। उनका वास्तविक नाम श्रीगुप्त था। गुप्त अभिलेखों से ज्ञात होता है कि चन्द्रगुप्त प्रथम का पुत्र घटोत्कच था।

चद्रगुप्त के सिंहासनारोहण के अवसर पर 302ई. को गुप्त सम्वत भी कहा गया है। चीनी यात्री **इत्सिंग** के अनुसार मगध के मृग शिखावन में एक मन्दिर का निर्माण करवाया था तथा मन्दिर के व्यय में 24 गाँव दान दिये थे।

श्रीगुप्त के समय में महाराजा की उपाधि सामन्तों को प्रदान की जाती थी, अतः श्रीगुप्त किसी के अधीन शासक था। प्रसिद्ध इतिहासकार **के. पी. जायसवाल** के अनुसार श्रीगुप्त भारशिवों के अधीन छोटे से राज्य प्रयाग का शासक था।

**घटोत्कच**- घटोत्कच श्रीगुप्त का पुत्र था। 280 ई. पू. से 320 ई. तक गुप्त साम्राज्य का शासक बना रहा। इसने भी महाराजा की उपाधि धारण की थी।

**चन्द्रगुप्त प्रथम**- यह घटोत्कच का उत्तराधिकारी था, जो 320 ई. में शासक बना।

चन्द्रगुप्त गुप्त वंशावली में सबसे पहला शासक था जो प्रथम स्वतन्त्र शासक है। यह विदेशी को विद्रोह द्वारा हटाकर शासक बना।

इसने नवीन सम्वत (गुप्त सम्वत) की स्थापना की। इसने लिच्छवि वंश की राजकुमारी कुमार देवी से विवाह सम्बन्ध स्थापित किया।

चन्द्रगुप्त प्रथम के शासनकाल को भारतीय इतिहास का स्वर्ण युग कहा जाता है। इसने महाराजाधिराज की उपाधि धारण की थी। बाद में लिच्छवि को अपने साम्राज्य में सम्मिलित कर लिया। इसका शासन काल (320 ई. से 350 ई. तक) था।

पुराणों तथा प्रयाग प्रशस्ति से चन्द्रगुप्त प्रथम के राज्य के विस्तार के विषय में जानकारी मिलती है।

## *चन्द्रगुप्त प्रथम तथा लिच्छवि सम्बन्ध*

चन्द्रगुप्त प्रथम ने लिच्छवि के साथ वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित किया। वह एक दूरदर्शी सम्राट था। चन्द्रगुप्त ने लिच्छवियों के सहयोग और समर्थन पाने के लिए उनकी राजकुमारी कुमार देवी के साथ विवाह किया। स्मिथ के अनुसार इस वैवाहिक सम्बन्ध के परिणामस्वरूप चन्द्रगुप्त ने लिच्छवियों का राज्य प्राप्त कर लिया तथा मगध उसके सीमावर्ती क्षेत्र में आ गया। कुमार देवी के साथ विवाह-सम्बन्ध करके चन्द्रगुप्त प्रथम ने वैशाली राज्य प्राप्त किया। लिच्छवियों के दूसरे राज्य नेपाल के राज्य को उसके पुत्र समुद्रगुप्त ने मिलाया।

हेमचन्द्र राय चौधरी के अनुसार अपने महान पूर्ववर्ती शासक बिम्बिसार की भाँति चन्द्रगुप्त प्रथम ने लिच्छवि राजकुमारी कुमार देवी के साथ विवाह कर द्वितीय मगध साम्राज्य की स्थापना की।

उसने विवाह की स्मृति में राजा-रानी प्रकार के सिक्कों का चलन करवाया। इस प्रकार स्पष्ट है कि लिच्छवियों के साथ सम्बन्ध स्थापित कर चन्द्रगुप्त प्रथम ने अपने राज्य को राजनैतिक दृष्टि से सुदृढ़ तथा आर्थिक दृष्टि से समृद्ध बना दिया। राय चौधरी के अनुसार चन्द्रगुप्त प्रथम ने कौशाम्बी तथा कौसल के महाराजाओं को जीतकर अपने राज्य में मिलाया तथा साम्राज्य की राजधानी पाटलिपुत्र में स्थापित की।

**समुद्रगुप्त**- चन्द्रगुप्त प्रथम के बाद 350 ई. में उसका पुत्र समुद्रगुप्त राजसिंहासन पर बैठा। समुद्रगुप्त का जन्म लिच्छवि राजकुमारी कुमार देवी के गर्भ से हुआ था। सम्पूर्ण प्राचीन भारतीय इतिहास में महानतम शासकों के रूप में वह नामित किया जाता है। इन्हें परक्रमांक कहा गया है। समुद्रगुप्त का शासनकाल राजनैतिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से गुप्त साम्राज्य के उत्कर्ष का काल माना जाता है। इस साम्राज्य की राजधानी पाटलिपुत्र थी।

हरिषेण समुद्रगुप्त का मन्त्री एवं दरबारी कवि था। हरिषेण द्वारा रचित प्रयाग प्रशस्ति से समुद्रगुप्त के राज्यारोहण, विजय, साम्राज्य विस्तार के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त होती है।

समुद्रगुप्त ने महाराजाधिराज की उपाधि धारण की।

**विन्सेट स्मिथ** ने इन्हें नेपोलियन की उपधि दी।

समुद्रगुप्त एक असाधारण सैनिक योग्यता वाला महान विजित सम्राट था। यह उच्चकोटि का विद्वान तथा विद्या का उदार संरक्षक था। उसे कविराज भी

कहा गया है। वह महान संगीतज्ञ था, जिसे वीणा वादन का शौक था। इसने प्रसिद्ध बौद्ध विद्वान वसुबन्धु को अपना मन्त्री नियुक्त किया था।

काव्यालंकार सूत्र में समुद्रगुप्त का नाम चन्द्रप्रकाश मिलता है। उसने उदार, दानशील, असहायी तथा अनाथों को अपना आश्रय दिया। समुद्रगुप्त धर्मनिष्ठ भी था लेकिन वह हिन्दू धर्म मत का पालन करता था। वैदिक धर्म के अनुसार इन्हें धर्म व प्राचीर बन्ध यानी धर्म की प्राचीर कहा गया है।

**समुद्रगुप्त का साम्राज्य**- समुद्रगुप्त ने एक विशाल साम्राज्य का निर्माण किया जो उत्तर में हिमालय से लेकर दक्षिण में विन्ध्य पर्वत तक तथा पूर्व में बंगाल की खाड़ी से पश्चिम में पूर्वी मालवा तक विस्तृत था। कश्मीर, पश्चिमी पंजाब, पश्चिमी राजपूताना, सिन्ध तथा गुजरात को छोड़कर समस्त उत्तर भारत इसमें सम्मिलित थे।

दक्षिणापथ के शासक तथा पश्चिमोत्तर भारत की विदेशी शक्तियाँ उसकी अधीनता स्वीकार करती थीं।

समुद्रगुप्त के काल में सदियों के राजनीतिक विकेन्द्रीकरण तथा विदेशी शक्तियों के आधिपत्य के बाद आर्यावर्त पुनः नैतिक, बौद्धिक तथा भौतिक उन्नति की चोटी पर जा पहुँचा था।

**रामगुप्त**- समुद्रगुप्त के बाद रामगुप्त सम्राट बना, लेकिन इसके राजा बनने में विभिन्न विद्वानों में मतभेद है।

विभिन्न साक्ष्यों के आधार पर पता चलता है कि समुद्रगुप्त के दो पुत्र थे- रामगुप्त तथा चन्द्रगुप्त। रामगुप्त बड़ा होने के कारण पिता की मृत्यु के बाद गद्दी पर बैठा, लेकिन वह निर्बल एवं कायर था। वह शकों द्वारा पराजित हुआ और अत्यन्त अपमानजनक सन्धि कर अपनी पत्नी ध्रुवस्वामिनी को शकराज को भेंट में दे दिया था, लेकिन उसका छोटा भाई चन्द्रगुप्त द्वितीय बड़ा ही वीर एवं स्वाभिमानी व्यक्ति था। वह छद्म भेष में ध्रुवस्वामिनी के वेश में शकराज के पास गया। फलतः रामगुप्त निन्दनीय होता गया। तत्पश्चात् चन्द्रगुप्त द्वितीय ने अपने बड़े भाई रामगुप्त की हत्या कर दी। उसकी पत्नी से विवाह कर लिया और गुप्त वंश का शासक बन बैठा।

**चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य**- चन्द्रगुप्त द्वितीय 375 ई. में सिंहासन पर आसीन हुआ। वह समुद्रगुप्त की प्रधान महिषी दत्तदेवी से हुआ था। वह विक्रमादित्य के नाम से इतिहास में प्रसिद्ध हुआ। उसने 375 से 415 ई. तक (40 वर्ष) शासन किया।

हालांकि चन्द्रगुप्त द्वितीय का अन्य नाम देव, देवगुप्त, देवराज, देवश्री आदि हैं। उसने विक्रयांक, विक्रमादित्य, परम भागवत आदि उपाधियाँ धारण की। उसने नागवंश, वाकाटक और कदम्ब राजवंश के साथ वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित किये। चन्द्रगुप्त द्वितीय ने नाग राजकुमारी कुबेर नागा के साथ विवाह किया, जिससे एक कन्या प्रभावती गुप्त पैदा हुई। वाकाटकों का सहयोग पाने के लिए चन्द्रगुप्त ने अपनी पुत्री प्रभावती गुप्त का विवाह वाकाटक नरेश रूद्रसेन द्वितीय के साथ कर दिया। उसने प्रभावती गुप्त के सहयोग से गुजरात और काठियावाड़ की विजय प्राप्त की।

वाकाटकों और गुप्तों की सम्मिलित शक्ति से शकों का उन्मूलन किया। कदम्ब राजवंश का शासन कुंतल (कर्नाटक) में था।

चन्द्रगुप्त के पुत्र कुमारगुप्त प्रथम का विवाह कदम्ब वंश में हुआ।

चन्द्रगुप्त द्वितीय के शासनकाल को स्वर्ण युग भी कहा गया है। चन्द्रगुप्त द्वितीय के समय में ही **फाह्यान** नामक चीनी यात्री (399 ई.) भारत आया था।

## चन्द्रगुप्त द्वितीय की विजय यात्रा

चन्द्रगुप्त एक महान प्रतापी सम्राट था। उसने अपने साम्राज्य का और विस्तार किया।

**(1) शक विजय**- पश्चिम में शक क्षत्रप शक्तिशाली साम्राज्य था। ये गुप्त राजाओं को हमेशा परेशान करते थे। शक गुजरात के काठियावाड़ तथा पश्चिमी मालवा पर राज्य करते थे। 389 ई. 412 ई. के मध्य चन्द्रगुप्त द्वितीय द्वारा शकों पर आक्रमण कर विजित किया।

**(2) वाहीक विजय**- महाशैली स्तम्भ लेख के अनुसार चन्द्र गुप्त द्वितीय ने सिन्धु के पाँच मुखों को पार कर वाहिकों पर विजय प्राप्त की थी। वाहिकों का समीकरण कुषाणों से किया गया है, पंजाब का वह भाग जो व्यास का निकटवर्ती भाग है।

**(3) बंगाल विजय**- महाशैली स्तम्भ लेख के अनुसार यह ज्ञात होता है कि चन्द्र गुप्त द्वितीय ने बंगाल के शासकों के संघ को परास्त किया था।

**(4) गणराज्यों पर विजय**- पश्चिमोत्तर भारत के अनेक गणराज्यों द्वारा समुद्रगुप्त की मृत्यु के पश्चात् अपनी स्वतन्त्रता घोषित कर दी गई थी।

परिणामतः चन्द्रगुप्त द्वितीय द्वारा इन गणराज्यों को पुनः विजित कर गुप्त साम्राज्य में विलीन किया गया। अपनी विजयों के परिणामस्वरूप चन्द्रगुप्त द्वितीय

ने एक विशाल साम्राज्य की स्थापना की। उसका साम्राज्य पश्चिम में गुजरात से लेकर पूर्व में बंगाल तक तथा उत्तर में हिमालय की तापघाटी से दक्षिण में नर्मदा नदी तक विस्तृत था। चन्द्रगुप्त द्वितीय के शासन काल में उसकी प्रथम राजधानी पाटलिपुत्र और द्वितीय राजधानी उज्जयिनी थी।

चन्द्रगुप्त द्वितीय का काल कला-साहित्य का स्वर्ण युग कहा जाता है। उसके दरबार में विद्वानों एवं कलाकारों को आश्रय प्राप्त था। उसके दरबार में नौ रत्न थे- कालिदास, धन्वन्तरि, क्षपणक, अमरसिंह, शंकु, बेताल भट्ट, घटकर्पर, वाराहमिहिर, वररुचि उल्लेखनीय थे।

निस्संदेह चन्द्रगुप्त द्वितीय का काल ब्राह्मण धर्म का चरमोत्कर्ष का काल रहा था।

**कुमारगुप्त प्रथम ( 415 ई. से 455 ई. )**- चन्द्रगुप्त द्वितीय के पश्चात् 415 ई. में उसका पुत्र कुमारगुप्त प्रथम सिंहासन पर बैठा। वह चन्द्रगुप्त द्वितीय की पत्नी ध्रुवदेवी से उत्पन्न सबसे बड़ा पुत्र था, जबकि गोविन्दगुप्त उसका छोटा भाई था। यह कुमारगुप्त के बसाठ (वैशाली) का राज्यपाल था।

कुमारगुप्त प्रथम का शासन शान्ति और सुव्यवस्था का काल था। साम्राज्य की उन्नति के पराकाष्ठा पर था। इसने अपने साम्राज्य का अधिक संगठित और सुशोभित बनाये रखा। गुप्त सेना ने पुष्यमित्रों को बुरी तरह परास्त किया था।

कुमारगुप्त ने अपने विशाल साम्राज्य की पूरी तरह रक्षा की जो उत्तर में हिमालय से दक्षिण में नर्मदा तक तथा पूर्व में बंगाल की खाड़ी से लेकर पश्चिम में अरब सागर तक विस्तृत था।

कुमारगुप्त प्रथम के अभिलेखों या मुद्राओं से ज्ञात होता है कि उसने अनेक उपाधियाँ धारण कीं। उसने महेन्द्र कुमार, श्री महेन्द्र, श्री महेन्द्र सिंह, महेन्द्रा दिव्य आदि उपाधि धारण की थी।

मिलरक्द अभिलेख से ज्ञात होता है कि कुमारगुप्त के साम्राज्य में चतुर्दिक सुख एवं शान्ति का वातावरण विद्यमान था।

कुमारगुप्त प्रथम स्वयं वैष्णव धर्मानुयायी था, किन्तु उसने धर्म सहिष्णुता की नीति का पालन किया।

गुप्त शासकों में सर्वाधिक अभिलेख कुमारगुप्त के ही प्राप्त हुए हैं। उसने अधिकाधिक संख्या में मयूर आकृति की रजत मुद्राएं प्रचलित की थीं। उसी के शासनकाल में नालन्दा विश्वविद्यालय की स्थापना की गई थी।

कुमारगुप्त प्रथम के शासनकाल की प्रमुख घटनाओं का निम्न् विवरण है-

**1. पुष्यमित्र से युद्ध**- भीतरी अभिलेख से ज्ञात होता है कि कुमारगुप्त के शासनकाल के अन्तिम क्षण में शान्ति नहीं थी। इस काल में पुष्यमित्र ने गुप्त साम्राज्य पर आक्रमण किया। इस युद्ध का संचालन कुमारगुप्त के पुत्र स्कन्दगुप्त ने किया था। उसने पुष्यमित्र को युद्ध में परास्त किया।

**2. दक्षिणी विजय अभियान**- कुछ इतिहास के विद्वानों के मतानुसार कुमारगुप्त ने भी समुद्रगुप्त के समान दक्षिण भारत का विजय अभियान चलाया था, लेकिन सतारा, जिले से प्राप्त अभिलेखों से यह स्पष्ट नहीं हो पाता है।

अश्वमेध यज्ञ- सतारा, जिले से प्राप्त 1, 395 मुद्राओं व लेकर पुर से 13 मुद्राओं के सहारे से अश्वमेध यज्ञ करने की पुष्टि होती है।

**स्कन्दगुप्त ( 455 ई. से 467 ई. )**- पुष्यमित्र के आक्रमण के समय ही गुप्त शासक कुमारगुप्त प्रथम की 455 ई. में मृत्यु हो गयी थी।

उसकी मृत्यु के बाद उसका पुत्र स्कन्दगुप्त सिंहासन पर बैठा। उसने सर्वप्रथम पुष्यमित्र को पराजित किया और उस पर विजय प्राप्त की। उसने 12 वर्ष तक शासन किया। स्कन्दगुप्त ने विक्रमादित्य, क्रमादित्य आदि उपाधियाँ धारण कीं। कहीय अभिलेख में स्कन्दगुप्त को शक्रोपन कहा गया है।

**उदारता एवं परोपकरिता का कार्य**- स्कन्दगुप्त का शासन बड़ा उदार था, जिसमें प्रजा पूर्णरूपेण सुखी और समृद्ध थी। स्कन्दगुप्त एक अत्यन्त लोकोपकारी शासक था, जिसे अपनी प्रजा के सुख-दु:ख की निरन्तर चिन्ता बनी रहती थी।

जूनागढ़ अभिलेख से पता चलता है कि स्कन्दगुप्त के शासन काल में भारी वर्षा के कारण सुदर्शन झील का बाँध टूट गया था, उसने दो माह के भीतर अतुल धन का व्यय करके पत्थरों की जड़ाई द्वारा उस झील के बाँध का पुनर्निर्माण करवा दिया।

**हूणों का आक्रमण**- हूणों का प्रथम आक्रमण स्कन्दगुप्त के काल में हुआ था। हूण मध्य एशिया की एक बर्बर जाति थी। हूण अपनी जनसंख्या और प्रसार के लिए दो शाखाओं में विभाजित होकर विश्व के विभिन्न क्षेत्रों में फैल गये। पूर्वी शाखा के हूणों ने भारत पर अनेकों बार आक्रमण किया। स्कन्दगुप्त ने हूणों के आक्रमण से रक्षा कर अपनी संस्कृति को नष्ट होने से बचाया।

**पुरुगुप्त**- पुरुगुप्त बुढ़ापा अवस्था में राजसिंहासन पर बैठा था फलत: वह सुचारु रूप से शासन को नहीं चला पाया और साम्राज्य का पतन प्रारम्भ हो गया।

**कुमारगुप्त द्वितीय**- पुरुगुप्त का उत्तराधिकारी कुमारगुप्त द्वितीय हुआ। सारनाथ लेख में इसका समय 445 ई. अंकित है।

**बुधगुप्त**- कुमारगुप्त द्वितीय के बाद बुधगुप्त शासक बना जो नालन्दा से प्राप्त मुहर के अनुसार पुरुगुप्त का पुत्र था। उसकी माँ चन्द्रदेवी था। उसने 475 ई. से 495 ई. तक शासन किया।

ह्वेनसांग के अनुसार वह बौद्ध मत अनुयायी था। उसने नालन्दा बौद्ध महाविहार को काफी धन दिया था।

**नरसिंहगुप्त बालादित्य**- बुधगुप्त की मृत्यु के बाद उसका छोटा भाई नरसिंहगुप्त शासक बना।

इस समय गुप्त साम्राज्य तीन भागों क्रमशः मगध, मालवा तथा बंगाल में बँट गया। मगध में नरसिंहगुप्त, मालवा में भानुगुप्त, बिहार में तथा बंगाल क्षेत्र में वैन्यगुप्त ने अपना स्वतन्त्र शसन स्थापित किया। नरसिंहगुप्त तीनों में सबसे अधिक शक्तिशाली राजा था। हूणों का कुरु एवं अत्याचारी आक्रमण मिहिरकुल को पराजित कर दिया था। नालन्दा मुद्रा लेख में नरसिंहगुप्त को परम भागवत कहा गया है।

**कुमारगुप्त तृतीय**- नरसिंहगुप्त के बाद उसका पुत्र कुमारगुप्त तृतीय मगध के सिंहासन पर बैठा। वह 24 वाँ शासक बना। कुमारगुप्त तृतीय गुप्त वंश का अन्तिम शासक था।

गोविन्दगुप्त का विद्रोह- यह स्कन्दगुप्त का छोटा चाचा था, जो मालवा के गवर्नर पद पर नियुक्त था। इसने स्कन्दगुप्त के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। स्कन्दगुप्त ने इस विद्रोह का दमन किया।

**वाकाटकों से युद्ध**- मन्दसौर शिलालेख से जगजात होता है कि स्कन्दगुप्त की प्रारम्भिक कठिनाइयों का फायदा उठाते हुए वाकाटक शासक नरेन्द्र सेन ने मालवा पर अधिकार कर लिया परन्तु स्कन्दगुप्त ने वाकाटक शासक नरेन्द्र सेन को पराजित कर दिया।

**गुप्त साम्राज्य की अवनति**- स्कन्दगुप्त राजवंश का आखिरी शक्तिशाली सम्राट था। 467 ई. उसका निधन हो गया। स्कन्दगुप्त के बाद इस साम्राज्य में निम्नलिखित प्रमुख राजा हुए-

**पुरुगुप्त**- यह कुमारगुप्त का पुत्र था और स्कन्दगुप्त का सौतेला भाई था। स्कन्दगुप्त का कोई अपना पुत्र नहीं था।

**दामोदरगुप्त**– कुमरागुप्त के निधन के बाद उसका पुत्र दामोदरगुप्त राजा बना। ईशान वर्मा का पुत्र सर्ववर्मा उसका प्रमुख प्रतिद्वन्द्वी मौखरि शासक था। सर्ववर्मा ने अपने पिता की पराजय का बदला लेने हेतु युद्ध किया। इस युद्ध में दामोदरगुप्त की हार हुई। यह युद्ध 582 ई. के आस-पास हुआ था।

**महासेनगुप्त**– दामोदरगुप्त के बाद उसका पुत्र महासेनगुप्त शासक बना था। उसने मौखरि नरेश अवन्ति वर्मा की अधीनता स्वीकार कर ली। महासेनगुप्त ने असम नरेश सुस्थित वर्मन को ब्राह्मण नदी के तट पर पराजित किया।

अफसढ़ लेख के अनुसार महासेनगुप्त बहुत पराक्रमी था।

**देवगुप्त**– महासेनगुप्त के बाद उसका पुत्र देवगुप्त मलवा का शासक बना। उसके दो सौतेले भाई कुमारगुप्त और माधवगुप्त थे।

देवगुप्त ने गौड़ शासक शशांक के सहयोग से कन्नौज के मौखरि राज्य पर आक्रमण किया और गृह वर्मा की हत्या कर दी।

प्रभाकर वर्धन के बड़े पुत्र राज्यवर्धन ने शीघ्र ही देवगुप्त पर आक्रमण करके उसे मार डाला।

**माधवगुप्त**– हर्षवर्धन के समय में माधवगुप्त मगध के सामन्त के रूप में शासन करता था। वह हर्ष का घनिष्ठ मित्र और विश्वासपात्र था। हर्ष जब शशांक को दण्डित करने हेतु गया तो माधवगुप्त साथ गया था। उसने 650 ई. तक शासन किया।

हर्ष की मृत्यु के उपरान्त उत्तर भारत में अराजकता फैली तो माधवगुप्त ने भी अपने को स्वतन्त्र शासक घोषित किया।

## गुप्तोत्तर बिहार

गुप्त साम्राज्य का 550 ई. में पतन हो गया। गुप्त वंश के पतन के बाद भारतीय राजनीति में विकेन्द्रीकरण एवं अनिश्चितता का माहौल उत्पन्न हो गया। अनेक स्थानीय सामन्तों एवं शासकों ने साम्राज्य के विस्तृत क्षेत्रों में अलग-अलग छोटे-छोटे राजवंशों की स्थापना कर ली। इसमें एक था- उत्तर गुप्त राजवंश। इस राजवंश ने करीब दो शताब्दियों तक शासन किया। इस वंश के लेखों में चक्रवर्ती गुप्त राजाओं का उल्लेख नहीं है।

परवर्ती गुप्त वंश के संस्थापक कृष्णगुप्त ने (510 ई. 521 ई.) स्थापना की।

अफसढ़ लेख के अनुसार मगध उसका मूल स्थान था, जबकि विद्वानों ने उनका मूल स्थान मालवा कहा है। उसका उत्तराधिकारी हर्षगुप्त हुआ है। उत्तर गुप्त वंश के तीन शासकों ने शासन किया। तीनों शासकों का मौखरि वंश से मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध कायम रहा।

**कुमारगुप्त**– यह उत्तर गुप्त वंश का चौथा राजा था जो जीवित गुप्त का पुत्र था। यह शासक अत्यन्त शक्तिशाली एवं महत्त्वाकांक्षी था। इसने महाराजाधिराज की उपाधि धारण की। उसका प्रतिद्वन्द्वी मौखरि नरेश ईशान वर्मा समान रूप से महत्त्वाकांक्षी शासक था। इस समय प्रयाग में पूष्यार्जन हेतु प्राणान्त करने की प्रथा प्रचलित थी।

हांग गांगेय देव जैसे शसकों का अनुसरण करते हुए कुमार गुप्त ने प्रयाग जाकर स्वर्ग प्राप्ति की लालसा से अपने जीवन का त्याग किया।

## पाल वंश

यह पूर्व मध्यकालीन राजवंश था। जब हर्षवर्धन काल के बाद समस्त उत्तरी भारत में राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक संकट गहरा उत्पन्न हो गया, तब बिहार, बंगाल और उड़ीसा के सम्पूर्ण क्षेत्र में पूरी तरह अराजकता फैली थी।

इसी समय गोपाल ने बंगाल में एक स्वतन्त्र राज्य घोषित किया। जनता द्वारा गोपाल को सिंहासन पर आसीन किया गया था। वह योग्य और कुशल शासक था, जिसने 750 ई. से 770 ई. तक शासन किया। इस दौरान उसने औदंतपुरी (बिहार शरीफ) में एक मठ तथा विश्वविद्यालय का निर्माण करवाया। पाल शासक बौद्ध धर्म को मानते थे। आठवीं सदी के मध्य में पूर्वी भारत में पाल वंश का उदय हुआ। गोपाल को पाल वंश का संस्थापक माना जाता है।

**धर्मपाल ( 770-810 ई. )**– गोपाल के बाद उसका पुत्र धर्मपाल 770 ई. में सिंहासन पर बैठा। धर्मपाल ने 40 वर्षों तक शासन किया। धर्मपाल कन्नौज के लिए त्रिदलीय संघर्ष में उलझा रहा। उसने कन्नौज की गद्दी से इंद्रायुध को हराकर चक्रायुध को आसीन किया। चक्रायुध को गद्दी पर बैठाने के बाद उसने एक भव्य दरबार का आयोजन किया तथा उत्तरापथ स्वामिन की उपाधि धारण की। धर्मपाल बौद्ध धर्मावलम्बी था। उसने काफी मठ व बौद्ध विहार बनवाये।

उसने भागलपुर, जिले में स्थित विक्रमशिला विश्वविद्यालय का निर्माण करवाया था। उसकी देखभाल के लिए सौ गाँव दान में दिये थे। उल्लेखनीय है

कि प्रतिहार राजा नागभट्ट द्वितीय एवं राष्ट्रकूट राजा ध्रुव ने धर्मपाल को पराजित किया था।

**देवपाल ( 810-850 ई. )**- धर्मपाल के बाद उसका पुत्र देवपाल गद्दी पर बैठा। इसने अपने पिता के अनुसार विस्तारवादी नीति का अनुसरण किया। इसी के शासनकाल में अरब यात्री **सुलेमान** आया था। उसने मुंगेर अपनी राजधानी बनाई। उसने पूर्वोत्तर में प्राग्ज्योतिषपुर, उत्तर में नेपाल, पूर्वी तट पर उड़ीसा तक विस्तार किया। कन्नौज के संघर्ष में देवपाल ने भाग लिया था। उसके शासनकाल में दक्षिण-पूर्व एशिया के साथ भी मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध रहे। उसने जावा के शासक बालपुत्रदेव के आग्रह पर नालन्दा में एक विहार की देखरेख के लिए 5 गाँव अनुदान में दिए।

देवपाल ने 850 ई. तक शासन किया था। देवपाल के बाद पाल वंश की अवनति प्रारम्भ हो गयी। मिहिरभोज और महेन्द्रपाल के शासनकाल में प्रतिहारों ने पूर्वी उत्तर प्रदेश और बिहार के अधिकांश भागों पर अधिकार कर लिया।

11वीं सदी में महीपाल प्रथम ने 988 ई.-1008 ई. तक शासन किया। महीपाल को पाल वंश का द्वितीय संस्थापक कहा जाता है। उसने समस्त बंगाल और मगध पर शासन किया।

महीपाल के बाद पाल वंशीय शासक निर्बल थे, जिससे आन्तरिक द्वेष और सामन्तों ने विद्रोह उत्पन्न कर दिया था। बंगाल में केवर्त, उत्तरी बिहार में सेन आदि शक्तिशाली हो गये थे।

रामपाल के निधन के बाद गहड़वालों ने बिहार में शाहाबाद और गया तक विस्तार किया था।

सेन शासकों वल्लासेन और विजयसेन ने भी अपनी सत्ता का विस्तार किया।

इस अराजकता के परिवेश में तुर्कों का आक्रमण प्रारम्भ हो गया।

# 4

# महाजनपद का धार्मिक विकास

बौद्ध और जैन धर्म के प्रारंम्भिक ग्रंथों में महाजनपद नाम के सोलह राज्यों का विवरण मिलता है। महाजनपदों के नामों की सूची इन ग्रंथों में समान नहीं है, परन्तु वज्जि, मगध, कौसल, कुरु, पांचाल, गांधार और अवन्ति जैसे नाम अक्सर मिलते हैं। इससे यह ज्ञात होता है कि ये महाजनपद महत्त्वपूर्ण महाजनपदों के रूप में जाने जाते होंगे। अधिकांशत: महाजनपदों पर राजा का ही शासन रहता था परन्तु गण और संघ नाम से प्रसिद्ध राज्यों में लोगों का समूह शासन करता था, इस समूह का हर व्यक्ति राजा कहलाता था। हर एक महाजनपद की एक राजधानी थी, जिसे किले से घेरा दिया जाता था। भारत के सोलह महाजनपदों का उल्लेख ईसा पूर्व छठी शताब्दी से भी पहले का है।

## बुद्ध और बौद्ध धर्म

### *बौद्ध धर्म की खोज*

पिछली शताब्दी के सांस्कृतिक जागरण का एक परिणाम था बौद्धधर्म के विषय में आधुनिक जानकारी का विकास। भारतीयों के लिए यह एक विलुप्त गौरव और महिमा का प्रत्यभिज्ञान था, पाश्चात्य देशों के लिए अपूर्व उपलब्धि। दक्षिण, मध्य और पूर्व एशिया के बौद्ध देशों के लिए भी विद्या और साहित्य के इस उद्धार ने नवीन परिष्कार और प्रगति की ओर संकेत किया। **टर्नर** और **फाउसबाल, चाइल्डर्स और ओल्देनबर्ग, राइज डैविड्स** और **श्रीमती राइज डेविड्स, धर्मानंद कोसंबी** और **बरुआ**, एवं अन्यान्य विद्वानों के यत्न से पालि

भाषा का परिशीलन अपने आधुनिक रूप में प्रकांत और विकसित हुआ। **बर्नूफ, कर्न, मैक्समूलर** और **सिलवाँ लेवी, हरप्रसद शास्त्री** और **राजेंद्रलाल मित्र** आदि के प्रयत्नों से लुप्त प्राय बौद्ध संस्कृत साहित्य का पुनरुद्धार संपन्न हुआ। **क्सोमा द कोरोस, शरच्चंद्र दास और विद्याभूषण, पूसें** और **श्चेरवात्स्की** आदि ने तिब्बती भाषा, बौद्ध न्याय, सर्वास्तिवादी अभिधर्म आदि के आधुनिक ज्ञान का विस्तार किया। **जेम्स प्रिंसेप, कनिंघम** और **मार्शल, स्टाइन, फ्यूशेर** और **कुमारस्वामी** आदि विद्वानों ने बौद्ध पुरातत्त्व और कलावशेषों की खोज और समय का दिक्प्रदर्शन किया। नाना भाषाओं और पुरातत्त्व के गहन परिशीलन के द्वारा शताधिक वर्षों के इस आधुनिक प्रयास ने बौद्ध धर्म की जानकारी को एक विशाल और जटिल कलेवर प्रदान किया है एवं इस तथ्य को प्रदर्शित किया है कि बौद्ध धर्म का सार और सार्थकता अपने में कितनी व्यापकता और सूक्ष्मता रखते हैं।

## बुद्ध का जन्म और युग

प्रचलित सिंहली परंपरा के अनुसार भगवान बुद्ध का परिनिर्वाण ई.पू. 544 में मानना चाहिए। इसी मान्यता के अनुसार मई 1956 में निर्वाण से 2500 वर्षों की पूर्ति स्वीकार की गई। दूसरी ओर, बुद्ध बिंबिसार और अजातशत्रु के समकालीन थे एवं उनके परिनिर्वाण से 218 वर्ष पश्चात् अशोक का राज्याभिषेक हुआ। ये तथ्य परिनिर्वाण को ई.पू. पाँचवीं शताब्दी के प्रथम पाद में रखते हैं और इस संभावना का 'केंटनीज डॉटेड रिकार्ड' से समर्थन होता है। इतिहासकार प्रायः इसी मत को स्वीकार करते हैं।

छठी शताब्दी ई.पू. को विश्वइतिहास का जागरणकाल कहना अनुपयुक्त न होगा। भारतीय इतिहास के परिवेश में इस समय तक आर्यों के प्रारंभिक संचार और संनिवेश का युग समाप्त हो चुका था एवं विभिन्न 'जनों' के स्थान पर 'जनपद' व्यवस्थित थे। छठी शताब्दी के पूर्वार्द्ध को 'षोडश महाजनपदों' का युग कहा गया है। राजाधीन और गणाधीन इन जनपदों को पारस्परिक संघर्ष भविष्य की एकता की ओर ले जा रहा था। आर्यों से पूर्ववर्ती विशाल सिंधु सभ्यता लुप्त हो चुकी थी किंतु उसकी अवशिष्ट परंपराओं के आर्य समाज में क्रमशः आत्मसात्करण की प्रक्रिया अभी जारी थी। वैदिक युग में आर्य एवं आर्येतर सांस्कृतिक परंपराओं का परस्पर समन्वय भारतीय इतिहास की निर्णायक घटनाओं में है। जहाँ इस प्रक्रिया से एक ओर चातुर्वर्ण्य का विकास और आर्यभाषा से

परिवर्तन हुआ, वहीं दूसरी ओर आध्यात्मिक क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण नई प्रवृत्तियों का जन्म हुआ।

बुद्ध का युग गहन विचारमंथन का युग था जब कि नाना ब्राह्मण और श्रमण अपने विभिन्न मतों का प्रतिपादन करते थे और बुद्ध की खोज एवं उपदेश का संबंध इन प्रचलित विचारधाराओं से स्थापित करने का यत्न इतिहासकार के लिए स्वाभाविक है। एक मत के अनुसार जो विचारधारा उपनिषदों में उपलब्ध होती है उसी का एक विकास बौद्धधर्म में देखना चाहिए। किंतु यह स्मरणीय है कि उस युग में 'ब्राह्मण' और 'श्रमण' का पार्थक्य निंविवाद था, यहाँ तक कि पतंजलि ने 'येषां च विरोध: शाश्वतिक: इस पाणिनीय सूत्र की व्याख्या के प्रसंग में 'अहिनकुलम्' के समान 'ब्राह्मण श्रमणम्' का उदाहरण दिया है। अत: पूर्वोक्त मत के अनुसार बौद्ध धर्म के मूल को ब्राह्मण विचारधारा के अतंर्गत किंतु श्रमणबाह्य मानना पड़ेगा, जो प्रमाणविरुद्ध है, अथवा श्रमण विचारधारा को ही वैदिक ब्राह्मण विचारधारा के साथ मूल संलग्न मानना पड़ेगा, जो कि कम से कम जैन धर्म की अवैदिकता के अब निर्विवाद होने के कारण अस्वीकार्य है। एक स्वतंत्र क्षत्रिय परंपरा की उद्भावना असिद्ध है। यह सत्य है कि उपनिषदों में, गीता में और बौद्ध एवं जैन आगमों में अनेक क्षत्रिय शासक दार्शनिक चर्चा में भाग ग्रहण करते हैं, किंतु उनके मत नाना हैं एवं उन्हें वैदिक धर्म के अंतर्भूत अथवा श्रमण धर्म के अंतर्भूत किया जा सकता है। अत: ऐसा प्रतीत होता है कि यद्यपि महाश्रमण भगवान बुद्ध को मूलत: श्रमण समुदाय एवं परंपरा के अंतर्गत मानना चाहिए तथापि यह स्वीकार करने में कोई दोष नहीं है कि कुछ दिशाओं में उनके प्रतिपादन और उपनिषदों में प्रवृत्तिसाम्य से उन पर वैदिक प्रभाव सूचित होता है।

वैदिक धर्म मूलत: प्रवृत्तिमार्गी था, श्रमण संप्रदाय निवृत्तिमार्गी। निवृत्ति का प्राधान्य संसारवाद के अभ्युपगम पर आश्रित था। पक्षांतर में प्राचीन वैदक धर्म में संसारवाद अविदित था। उपनिषदों में ज्ञानचर्चा के साथ कुछ स्थलों पर संसारवाद आभासित है। इस कारण यह प्राय: प्रतिपादित किया गया है कि उपनिषदों के इन स्थलों से ही निवृत्तिपरक धाराओं का उद्गम मानना चाहिए। अर्थात् सांख्य और योग, जैन और बौद्ध धर्म सभी का मूल उत्स उपनिषदों में ही कहीं न कहीं खोजना चाहिए। इस धारणा के पीछे यह विश्वास है कि बुद्ध से पूर्वतर युग का अथवा प्रतिनिधि चिंतन उपनिषदों में संगृहीत है। वस्तुत: इस प्रकार की ऐतिहासिक परिस्थितियों में अनुपलब्धि से अभाव सिद्ध नहीं होता

अत: ऐसे 'आर्ग्युमेण्टम् एक्स सिलेन्शियो' को हेत्वाभास ही मानना चाहिए। दूसरी ओर, जैन और बौद्ध सभी अपना वैदिक श्रृण मानने के स्थान पर अपना-अपना आगम स्वातंत्र्य ही घोषित करते हैं। पुरातात्विकों ने यह सिद्ध कर दिया है कि आर्य वैदिक परंपरा के पूर्व और अतिरिक्त एक सभ्यता की परंपरा ई.पू. तृतीय और द्वितीय सहस्राब्दियों में भारत में विदित थी। अतएव विभिन्न श्रमण परंपराओं का अवैदिक अथवा आर्येतरीय मूल अब असंभव नहीं लगता। इस संभाव्यता के कारण इन परंपराओं के मूल की अवैदिकता आपातत: तत्तद आगमसिद्ध है और इसके प्रमाणत: निराकरण का भार प्रतिवादी पर स्थिर होता है। जहाँ तक उपनिषदों में उपलब्ध 'संसारवाद' अथवा 'सांख्य' आदि के मूल का प्रश्न है, यह संभव है कि स्वयं उपनिषदों पर धारांतर का प्रभाव कल्पनीय है। फलत: जहाँ पहले बौद्ध धर्म का वैदिक मूल प्राय: सर्वसम्मत था वहाँ अब पुरातात्विक और ऐतिहासिक खोज के परिप्रेक्ष्य में इस मत को संदिग्ध कहना होगा। किंतु इसका यह अर्थ नहीं है कि बौद्ध धर्म पर वैदिक प्रभाव संदिग्ध है। वस्तुत: यद्यपि भगवान बुद्ध की पर्येषणा श्रमण पृष्ठभूमि में प्रारब्ध और संबोधि में पर्यवसित हुई, तथापि उनका तत्त्वप्रतिपादन अथवा देशना तत्कालीन श्रमण अभ्युपागमों को बुद्धिस्थ करने पर ही समझी जा सकती है।

वैदिक चिंतन में जगत् के मूल तत्त्व की खोज तीन मुख्य दिशाओं में की गई। एक ओर पुरुष को जगत् का कर्ता माना गया। दूसरी और जल, वायु आदि तत्त्वों में से किसी एक को जगत् का मूल उपादान कहा गया। इस दिशा में पारमार्थिक तत्त्व की कल्पना सत् अथवा असत् के रूप में भी की गई। तीसरी दिशा में जागतिक परिवर्तनों की नियमवत्ता देखकर कृत और धर्म की उद्भावना की गई। पुरुष के स्वरूप पर विचार करते हुए क्रमश: शरीर, इंद्रियाँ, वाक्, प्राण, मन एवं ज्ञान को उसके मौलिक स्वरूप का परिचायक माना गया। अंतत: यह निश्चित किया गया कि पुरुष अथवा आत्मा ज्ञानस्वरूप है, एक सत् ही जगत् का उपादान और ब्रह्म पदवाच्य है और आत्मा एवं ब्रह्म ज्ञान एवं सत् परस्पर अभिन्न हैं। यही औपनिषदिक आत्माद्वैत अथवा ब्रह्माद्वैत का सिद्धांत है। कुछ स्थलों पर आत्मा या ब्रह्म को अनिर्वचनीय एवं सत् और असत् के परे भी कहा गया है।

उपनिषदों में अभासित धर्म का सिद्धांत प्रचलित कर्मवाद के साथ अनायास संश्लिष्ट हो गया क्योंकि कर्म-फल-नियम ही मानव जीवन एवं सृष्टि का गंभीरतम नियामक कहा जा सकता था। इस सिद्धांत का विशद और विस्तृत

प्रतिपादन उन नाना श्रमण संप्रदायों में देखा जा सकता था, जिनके मतों का उल्लेख प्राचीन बौद्ध और जैन आगमों में प्राप्त होता है। दीधनिकाय के मुविदित सामंजफल सुत्तंत के अनुसार पूर्ण काश्यप, प्रकुध कात्यायन, अजित केशकंबली, संजय बेलद्विपुत्र, गोशाल एवं निर्गंथ ज्ञातृपुत्र बुद्ध के समकालीन प्रसिद्ध श्रमण परिव्राजक गणाचार्य थे। अन्यत्र कालवाद, स्वभाववाद नियतिवाद, अज्ञानवाद, अक्रियावाद, क्रियावाद, शाश्वतवाद उच्छेदवाद आदि दृष्टियों का उल्लेख प्राप्त होता है। अधिकांश विचारक जीव के जन्म से जन्मांतर संसरण को दु:खात्मक और कर्म-फल-नियम के द्वारा व्यवस्थित मानते थे किंतु जीव, कर्म और मोक्ष के साधन के विषय में प्रचुर और जटिल मतभेद था। ब्राह्मण और श्रमण विचारकों द्वारा प्रतिपादित परमार्थ और व्यवहार संबंधी इन धारणाओं और प्रवृत्तियों के परिवेश में ही भगवान बुद्ध ने धर्मचक्र का प्रवर्तन किया।

## बुद्ध की जीवनी

बुद्ध के जीवन के विषय में प्रामाणिक सामग्री विरल है। इस प्रसंग में उपलब्ध अधिकांश वृत्तांत एवं कथानक परिवर्ती एवं भक्तिप्रधान रचनाएँ हैं। प्राचीनतम सामग्री में पालि त्रिपिटक के कुछ स्थलों पर उपलब्ध बुद्ध की पर्येषणा, संबोधि, धर्मचक्रप्रवर्तन एवं महापरिनिर्वाण के अल्प विवरण उल्लेख्य हैं। यह स्मरणीय है कि दीधनिकाय के महापदानसुत्तंत से सिद्ध होता है कि इसी अवस्था में बौद्धगण का आग्रह भगवान बुद्ध के जीवनचरित के विस्तृत ऐतिहासिक संग्रह में न होकर उसमें एक 'धर्मता' अथवा सब बुद्धों के लिए एक अनिवार्य और नियत क्रम को प्रदर्शित कर सकने में था। इस कारण गौतम बुद्ध के जीवनी साहित्य में ऐतिहासिक स्मृति बुद्धत्व के आदर्श से प्रेरित कल्पनाप्रतानों से वैसे ही आच्छन्न हो गई जैसे चातुर्मास्य में अरण्यपथ। बुद्ध की जीवनी के आधुनिक विवरण प्राय: पालि की निदानकथा अथवा संस्कृत के महावस्तु, ललितविस्तर एवं अश्वघोष कृत बुद्धचरित पर आधारित होते हैं। किंतु इन विवरणों की ऐतिहासिकता वहीं तक स्वीकार की जा सकती है, जहाँ तक उनके लिए प्राचीनतर समर्थन उपलब्ध हों। यह उल्लेख्य है कि एक नवीन मत के अनुसार मूल विनय में बुद्ध की जीवनी और विनय के नियम, दोनों एक ही संश्लिष्ट विवरण के अंग थे। ये मत सर्वथा प्रमाणित न होने पर भी संभाव्य है।

ई.पू. 563 के लगभग शाक्यों की राजधानी कपिलवस्तु के निकट लुंबिनी वन में भगवान बुद्ध का जन्म प्रसिद्ध है। वर्तमान नेपाल राज्य के अंतर्गत यह स्थान

भारत की सीमा से आजकल पाँच मील दूर है। यहाँ पर प्राप्त अशोक के रुम्मिनदेई स्तंभलेख से ज्ञात होता है 'हिद बुधे जाते ति। ' सुत्तनिपात में शाक्यों को हिमालय के निकट कौसल में रहनेवाले गौतम गोत्र के क्षत्रिय कहा गया है। कौसलराज के अधीन होते हुए भी शाक्य जनपद स्वयं एक गणराज्य था। कदाचित् इस गण के पारिषद् अथवा प्रमुख राजशब्दोपजीवी होते थे। इस प्रकार 'राजा' शुद्धोदन बुद्ध के पिता एवं मायादेवी उनकी माता प्रसिद्ध हैं। जन्म के पाँचवे दिन बुद्ध को 'सिद्धार्थ' नाम दिया गया और जन्मसप्ताह में ही माता के देहांत के कारण उनका पालन पोषण उनकी मौसी एवं विमाता महाप्रजापती गौतमी द्वारा हुआ। बुद्ध के शैशव के विषय में प्राचीन सूचना अत्यंत अल्प है। सिद्धार्थ के बत्तीस महापुरुषलक्षणों को देखकर असित ऋषि ने उनके बुद्धत्व की भविष्यवाणी की, इसके अनेक वर्णन मिलते हैं। ऐसे ही कहा जाता है कि एक दिन जामुन की छाँह में उन्हें सहज रूप में प्रथम ध्यान की उपलब्धि हुई थी। दूसरी ओर ललित-विस्तार आदि ग्रंथों में उनके शैशव का चमत्कारपूर्ण वर्णन प्राप्त होता है। ललितविस्तार के अनुसार जब सिद्धार्थ को देवायतन ले जाया गया, देवप्रतिमाओं ने स्वयं उठकर उन्हें प्रणाम किया, उनके शरीर पर सब स्वर्णाभरण मलिन प्रतीत होते थे, लिपिशिक्षक आचार्य विश्वामित्र को उन्होंने 64 लिपियों का नाम लेकर और गणक महामात्र अर्जुन को परमाणु-रजः प्रवेशानुगत गणना के विवरण से विस्मय में डाल दिया और नाना शिल्प, अस्त्रविद्या, एवं कलाओं में सहज-निष्णात सिद्धार्थ का दंडपाणि की पुत्री गोपा के साथ परिणय संपन्न हुआ। पालि आकरों के अनुसार सिद्धार्थ की पत्नी सुप्रबुद्ध की कन्या थी और उसका नाम 'भद्दकच्चाना' भद्रकात्यायनी, यशोधरा, बिंबा, अथवा बिंबासुंदरी था। विनय में उसे केवल राहुलमाता कहा गया है। बुद्धचरित में यशोधरा नाम दिया गया है। सिद्धार्थ के प्रव्रजित होने की भविष्यवाणी से भयभीत होकर युद्धोदन ने उनके लिए तीन विशिष्ट प्रासाद बनवाए - ग्रैष्मिक, वार्षिक, एवं हैमंतिक। इन्हें रम्य, सुरम्य और शुभ की संज्ञा भी दी गई है। इन प्रासादों में सिद्धार्थ को व्याधि और जरा मरण से दूर एक कृत्रिम, नित्य मनोरम लोक में रखा गया जहाँ संगीत, यौवन और सौंदर्य का अक्षत साम्राज्य था। किंतु देवताओं की प्रेरणा से सिद्धार्थ को उद्यानयात्रा में व्याधि, जरा मरण और परिव्राजक के दर्शन हुए और उनके चित्त में प्रव्रज्या का संकल्प विरूढ़ हुआ। इस प्रकार के विवरण की अत्युक्ति और चमत्कारिता उसके आक्षरिक सत्य पर संदेह उत्पन्न करती है। यह निश्चित है कि सिद्धार्थ के मन में संवेग संसार के अनिवार्य दुःख पर विचार करने से उत्पन्न

हुआ। उनकी ध्यानप्रवणता ने, जिसका ऊपर उल्लेख किया गया है, इस दु:ख की अनुभूति को एक गंभीर सत्य के रूप में प्रकट किया होगा। निदानकथा के अनुसार इसी समय उन्होंने पुत्रजन्म का संवाद सुना और नवजात को राहुल नाम मिला। उसी अवसर पर प्रासाद की ओर जाते हुए सिद्धार्थ की शोभा से मुग्ध होकर कृशा गौतमी ने उनकी प्रशंसा में एक प्रसिद्ध गाथा कही, जिसमें निर्वृत्त (प्रशांत) शब्द आता है। सिद्धार्थ को इस गाथा में गुरुवाक्य के समान गंभीर आध्यात्मिक संकेत उपलब्ध हुआ–

निब्बुता नून सा माता निब्बुतो नून सो पिता।
निब्बुता नून सा नारी यस्सायमीदिसो पती ति।।

निशीथ के अंधकार में सोती हुई पत्नी और पुत्र को छोड़कर सिद्धार्थ कंथक पर आरूढ़ हो नगर से और कुटुंबजीवन से निष्क्रांत हुए। उस समय सिद्धार्थ 29 वर्ष के थे।

निदानकथा के अनुसार रात भर में शाक्य, कोलिय और मल्ल (राम ग्राम) इन तीन राज्यों को पार कर सिद्धार्थ 30 योजन की दूरी पर अनोमा नाम की नदी के तट पर पहुँचे। वहीं उन्होंने प्रव्रज्या के उपयुक्त वेश धारण किया और छंदक को विदा कर स्वयं अपनी अनुत्तर शांति की पर्येषणा की ओर अग्रसर हुए। आर्य पर्येषणा के प्रसंग में सिद्धार्थ अनेक तपस्वियों से विशेषत: आलार (आराड़) कालाम एवं उद्रक (रुद्रक) से मिले। ललितविस्तार में अराड कालाम का स्थान वैशाली कहा गया है जबकि अश्वघोष के बुद्धिचरित में उसे विंन्ध्य कोष्ठवासी बताया गया है। पालि निकायों से विदित होता है कि कालाम ने बोधिसत्व को 'आर्किचन्यायतन' नाम की 'अल्प समापत्ति' सिखाई। अश्वघोष ने कालाम के सिद्धांतों का सांख्य से सादृश्य प्रदर्शित किया है। ललित विस्तार में रुद्रक का आश्रम राजगृह के निकट कहा गया है। रुद्रक के 'नैवसंज्ञानासंज्ञायतन' के उपदेश से भी बोधिसत्व असंतुष्ट रहे। राजगृह में उनका मगधराज बिंबिसार से साक्षात्मार सुत्तनिपात के पब्बज्जसुत्त, ललितविस्तर और बुद्धचरित में वर्णित है। गया में बोधिसत्व ने यह विचार किया कि जैसे गीली अरणियों से अग्नि उत्पन्न नहीं हो सकती, ऐसे ही भोगों में स्पृहा रहते हुए ज्ञान की प्राप्ति नहीं हो सकती। अतएव उरुविल्व के निकट सेनापति ग्राम में नैरंजना के तटवर्ती रमणीय प्रदेश में उन्होंने कठोर तपश्चर्या (प्रधान) का निश्चय किया। किंतु अंततोगत्वा उन्होंने तप को व्यर्थ समझकर छोड़ दिया। इसपर उनके साथ कौंडिन्य आदि पंचवर्गीय परिव्राजकों ने उन्हें तपोभ्रष्ट निश्चित कर त्याग दिया। बोधिसत्व ने अब शैशव

में अनुभूत ध्यानाभ्यास का स्मरण कर ध्यान के द्वारा ज्ञानप्राप्ति का यत्न किया। इस ध्यानकाल में उन्हें मार सेना का सामना करना पड़ा, यह प्राचीन ग्रंथों में उल्लिखित है। स्पष्ट ही मार घर्षण को काम और मृत्यु पर विजय का प्रतीकात्मक विवरण समझना चाहिए। आर्य पर्येषणा के छठे वर्ष के पूरे होने पर वैशाखी पूर्णिमा को बोधिसत्व ने संबोधि प्राप्त की। रात्रि के प्रथम याम में उन्होंने पूर्वजन्मों की स्मृति रूपी प्रथम विद्या, द्वितीय याम में दिव्य चक्षु और तृतीय याम में प्रतीत्यसमुत्पाद का ज्ञान प्राप्त किया। एक मत से इसके समानांतर ही सर्वधर्माभिसमय रूप सर्वाकारक प्रज्ञा अथवा संबोधि का उदय हुआ।

संबोधि के अनंतर बुद्ध के प्रथम वचनों के विषय में विभिन्न परंपराएँ हैं, जिनमें बुद्धघोष के द्वारा समर्थित 'अनेक जाति संसार संघाविस्सं पुनप्पुनं' आदि गाथाएँ विशेषत: उल्लेखनीय हैं। संबोधि की गंभीरता के कारण बुद्ध के मन में उसके उपदेश के प्रति उदासीनता स्वाभाविक थी। संसारी जीव उस गंभीर सत्य को कैसे समझ पाएँगे जो अत्यंत सूक्ष्म और अतर्क्य है? बुद्ध की इस अनभिरुचि पर ब्रह्मा ने उनसे धर्मचक्र-प्रवर्तन का अनुरोध किया, जिसपर दु:खमग्न संसारियों को देखते हुए बुद्ध ने उन्हें विकास की विभिन्न अवस्थाओं में पाया।

बुद्ध के लिए किसी वास्तविक संशय अथवा अभिरुचि के उदय का प्रश्न नहीं था। किंतु यह धर्मता के अनुरूप ही था कि देशना के पूर्व संसारियों के प्रतिनिधि के रूप में महाब्रह्मा बुद्ध से देशना के लिए याचना करें। इस प्रकार ब्रह्मयाचना के प्रसंग से प्रज्ञानुवर्तिता एवं उपदेश की विनेयापेक्षता सूचित होती है।

सारनाथ के ऋषिपत्तन मृगदाव में भगवान बुद्ध ने पंचवर्गीय भिक्षुओं को उपदेश देकर धर्मचक्रप्रवर्तन किया। इस प्रथम उपदेश में दो अंतों का परिवर्जन और मध्यमा प्रतिपदा की आश्रयणीयता बताई गई है। इन पंचवर्गीयों के अनंतर श्रेष्ठिपुत्र यश और उसके संबंधी एवं मित्र सद्धर्म में दीक्षित हुए। इस प्रकार बुद्ध के अतिरिक्त 60 और अर्हत् उस समय थे, जिन्हें बुद्ध ने नाना दिशाओं में प्रचारार्थ भेजा और वे स्वयं उरुवेला के सेनानिगम की ओर प्रस्थित हुए। मार्ग में 30 भद्रवर्गीय कुमारों को उपदेश देते हुए उरुवेला में उन्होंने तीन जटिल काश्यपों को उनके एक सहस्त्र अनुयायियों के साथ चमत्कार और उपदेश के द्वारा धर्म में दीक्षित किया। इसके पश्चात् राजगृह जाकर उन्होंने मगधराज बिंबिसार को धर्म का उपदेश दिया। बिंबिसार ने वेणुवन नामक उद्यान भिक्षुसंघ को उपहार में दिया। राजगृह में ही संजय नाम के परिव्राजक के दो शिष्य कोलित और उपतिष्य सद्धर्म में दीक्षित होकर मौद्गल्यायन और सारिपुत्र के नाम से प्रसिद्ध हुए। विनय के

महावग्ग में दिया हुआ संबोधि के बाद की घटनाओं का क्रमबद्ध विवरण यहाँ पूरा हो जाता है।

उपदेश देते हुए भगवान बुद्ध ने प्रति वर्ष जहाँ वर्षावास व्यतीत किया उन स्थानों की सूची बौद्ध परंपरा में रक्षित है और इस प्रकार है – पहला वर्षावास वाराणसी में, दूसरा–चौथा राजगृह में, पाँचवाँ वैशाली में, छठा मंकुल गिरि में, सातवाँ तावतिंरा (त्रयस्त्रिंश) लोक में, आठवाँ सुंसुमार गिरि के निकट भर्ग प्रदेश में, नवाँ कौशांबी में, दसवां पारिलेय्यक वन में, ग्यारहवाँ नालाग्राम में, बारहवाँ वेरंज में, तेरहवाँ चालियगिरि में, चौदहवाँ श्रावस्ती में, पंद्रहवाँ कपिलवस्तु में, सोलहवाँ आलवी में, सत्रहवाँ राजगृह में, अठारहवाँ चालियगिरि में, उन्नीसवाँ राजगृह में, इसके अनंतर श्रावस्ती में। इस प्रकार अस्सी वर्ष की आयु तक बुद्ध धर्म का प्रचार करते हुए उत्तर प्रदेश और बिहार के जनपदों में घूमते रहे। श्रावस्ती में उनका सर्वाधिक निवास हुआ और उसके बाद राजगृह, वैशाली और कपिलवस्तु में।

कौसल में राजा प्रसेनजित् और रानी मल्लिका बुद्ध में श्रद्धालु थे। श्रेष्ठियों में कोटिपति अनाथपिंडक और विशाखा उपासक बने और उन्होंने श्रावस्ती में संघ को क्रमशः जेतवन विहार और पूर्वाराम मृगारमातृ प्रासाद का दान किया। अग्निक भारद्वाज, पुष्कर सादी आदि कौसल के अनेक ब्राह्मणों ने भी बौद्ध धर्म स्वीकार किया। शाक्यगण पहले बुद्ध के अनूकुल नहीं थे किंतु फिर चमत्कार देखकर उनकी रुचि परिवर्तित हुई। यद्यपि बुद्ध स्वयं वैशाली के गणराज्य के विशेष प्रशंसक थे, तथापि वहाँ निर्गंथों के अधिक प्रभाव के कारण सद्धर्म का प्रचार संकुचित रहा। मगध में बिंबिसार की अनुकूलता कदाचित् सद्धर्म के प्रसार में विशेष सहायक थी क्योंकि यह विदित होता है कि यहाँ के अनेक श्रेष्ठी और गृहपति बौद्ध उपासक बने। यह उल्लेख्य है कि महाप्रजापति गौतमी और आनंद के आग्रह से भगवान बुद्ध ने स्त्रियों को भी संघ में स्थान दिया।

प्रसिद्ध महापरिनिर्वाण सूत्र में परवर्ती परिवर्तनों के बावजूद बुद्ध की अंतिम पदयात्रा का मार्मिक विवरण प्राप्त होता है। बुद्ध उस समय राजगृह में थे जब मगधराज अजातशत्रु वज्जि जनपद पर आक्रमण करना चाहता था। राजगृह से बुद्ध पाटलि ग्राम होते हुए गंगा पार कर वैशाली पहुँचे जहाँ प्रसिद्ध गणिका आम्रपाली ने उनको भिक्षुसंघ के साथ भोजन कराया। इस समय परिनिर्वाण के तीन मास शेष थे। वेलुवग्राम में भगवान ने वर्षावास व्यतीत किया। यहाँ वे अत्यंत रुग्ण हुए और आनंद को यह शंका हुई कि संघ से कहे बिना ही कहीं उनका परिनिर्वाण

न हो जाए। इसपर बुद्ध ने कहा भिक्षुसंघ मुझसे क्या चाहता है? मैंने धर्म का निश्शेष उपदेश कर दिया है। ... मेरी यह इच्छा नहीं है कि मैं संघ का नेतृत्व करता रहूँ... अब मैं अस्सी वर्ष का वृद्ध हूँ.... तुम्हें चाहिए कि 'अत्तुदीपा विहरथ अत्तसरणा अनंजसरणा धम्मदीपा धम्मसरणा अनंजसरणा'। वैशाली से भगवान भंडग्राम और भोगनगर होते हुए पावा पहुँचे। वहाँ चुंद कम्मारपुत्त के आतिथ्य ग्रहण में 'सूकर मद्दव' खाने से उन्हें यंत्रणामय रक्तातिसार उत्पन्न हुआ। रुग्णावस्था में ही उन्होंने कुशीनगर की ओर प्रस्थान किया और हिरण्यवती नदी पार कर वे शालवन में दो शालवृक्षों के बीच लेट गए। सुभद्र परिव्राजक को उन्होंने उपदेश दिया और भिक्षुओं से कहा कि उनके अनंतर धर्म ही संघ का शास्ता रहेगा। छोटे मोटे शिक्षापदों में परिवर्तन करने की अनुमति भी इन्होंने संघ को दी और छन्न भिक्षु पर ब्रह्मदंड का विधान किया। पालि परंपरा के अनुसार भगवान के अंतिम शब्द थे 'वयधम्मा संखारा अप्पमादेन संपादेथाति।'

परंपरा के अनुसार बुद्ध प्रातः शरीर परिकर्म के अनंतर भिक्षाचर्या के समय तक एकांत आसन में बैठते थे। भिक्षाचर्या कभी अकेले, कभी भिक्षुसंघ के साथ करते थे। श्रद्धालुओं के निमंत्रण पर उनके यहाँ भोजन करते एवं उपदेश देते थे। लौटने पर भिक्षुओं को उपदेश देते और फिर मुहूर्त भर विश्राम कर दर्शनार्थियों को उपदेश करते। सायं स्नान ध्यान के अनंतर भिक्षुओं की समस्याएँ हल करते, रात्रि के मध्यम याम में देवताओं के प्रश्नों के उत्तर देते और रात्रि के अंतिम याम में कुछ चंक्रमण और कुछ विश्राम कर बुद्ध चक्षु से लोकावलोकन करते थे।

भगवान् बुद्ध को प्राचीन संदर्भों में ध्यानशील तथा मौन और एकांत के प्रेमी कहा गया है। उनकी दया और बुद्धिस्वातंत्र्य विश्वविदित हैं। वे अंधश्रद्धा के कट्टर विरोधी थे और प्रत्यात्मवेदनीय सत्य का उपदेश करते थे। उनकी देशना में जातिवाद और कर्मकांड का स्थान नहीं था। विद्या और आचरण से संपन्न पुरुष को ही वे सच्चा ब्राह्मण मानते थे, आभ्यंतरिक ज्योति को ही वास्तविक अग्नि और परसेवा को ही पारमार्थिक अर्चन। इसी कारण उनकी देशना समाज के सभी वर्गों के लिए ग्राह्य थी और बौद्धिकता, नैतिकता एवं आध्यात्मिकता की प्रगति में एक विशिष्ट नया चरण थी।

## *बुद्ध देशना*

भगवान् बुद्ध की मूल देशना क्या थी, इस पर प्रचुर विवाद है। स्वयं बौद्धों में कालांतर में नाना संप्रदायों का जन्म और विकास हुआ और वे सभी अपने को

बुद्ध से अनुप्राणित मानते हैं। बुद्धवचन भी विभिन्न संप्रदायों में समान रूप से संरक्षित नहीं है। और फिर, जितना उनके नाम से संरक्षित है, विभिन्न भाषाओं और संप्रदायों में, हीनयान और महायान में, उन सब को बुद्धप्रोक्त कोई भी इतिहासकार नहीं मान सकता। स्पष्ट ही बुद्धवचन के संग्रह और संरक्षण में नाना परिवर्तन और परिवर्धन अवश्य स्वीकार करने होंगे और उसके निष्पन्न रूप को एक दीर्घकालीन विकास का परिणाम मानने के अतिरिक्त ऐतिहासिक आलोचना के समक्ष और युक्तियुक्त विकल्प नहीं है। महायानियों ने इस समस्या के हल के लिए एक और दो या तीन धर्मचक्रप्रवर्तनों की कल्पना की और दूसरी ओर 'विनयभेदान् देशनाभेदः' इस सिद्धांत की कल्पना की। अर्थात् भगवान बुद्ध ने स्वयं उपाय कौशल्य से नाना प्रकर की धर्म देशना की। अधिकांश आधुनिक विद्वान् पालि त्रिपिटक के अंतर्गत विनय और सुत्त पिटकों में संगृहीत सिद्धांतों को मूल बुद्धदेशना मान लेते हैं। कुछ विद्वान् सर्वास्तिवाद अथवा महायान के सारांश को मूल देशना स्वीकार करना चाहते हैं। अन्य विद्वान् मूल ग्रंथों के ऐतिहासिक विश्लेषण से प्रारंभिक और उत्तरकालीन सिद्धांतों में अधिकाधिक विवेक करना चाहते हैं, जिसके विपरीत कुछ अन्य विद्वान् इस प्रकार के विवेक के प्रयास को प्रायः असंभव समझते हैं। मतभेद होने पर भी नाना सांप्रदायिक और ऐतिहासिक परिवर्तनों के पीछे मूल देशना की खोज नितांत आवश्यक है क्योंकि इस मूल संलग्नता पर ही आध्यात्मिक प्रामाणिकता निर्भर है।

भगवान् बुद्ध ने प्रचलित मागधी भाषा में उपदेश दिए और सबको इसकी अनुमति दी कि वे उपदेशों को अपनी-अपनी बोली (निरुत्ति) में याद रखें। ऐसी स्थिति में बौद्ध धर्म के प्रादेशिक प्रसार के साथ यह अनिवार्य था कि बुद्धवचन के क्रमशः अनेक संग्रह प्रस्तुत हो जाएँ। इनमें केवल पालि का संग्रह ही अब पूर्ण है। अन्य संग्रहों के कुछ अंश मूल रूप में एवं कुछ अनुवादों में ही मिलते हैं। इस प्रकार पालि त्रिपिटिक का महत्त्व निर्विवाद है। इसकी प्राचीनता भी असंदिग्ध है क्योंकि ई.पू. प्रथम शताब्दी में इसको सुदूर सिंहल में लिपिबद्ध कर दिया गया था। तथापि यह स्वीकार करना कठिन है कि पाल मागधी है, साथ ही अभिधर्म पिटक की बुद्धोत्तरकालीनता आधुनिक विद्वानों में प्रायः निर्विवाद है। **श्रीमती राइज डेविड्स** तथा **फ्राञ्चाल्नर** आदि की खोजों से प्रतीत होता है कि विनय एवं सुत्त पिटकों में प्राचीन और अर्वाचीन अंशों का भेद सर्वदा उपेक्षणीय है। उदाहरण के लिए विनय में प्रातिमोक्ष प्राचीन है, संगीति विवरण अपेक्षाकृत अर्वाचीन, सुत्तपिटक में सुत्तनिपात के अट्टक और पारायण वग्ग

प्राचीन हैं, दीर्घ का महापदान सुत्त अपेक्षाकृत अर्वाचीन। यह कल्पना करना अयुक्त न होगा कि भगवान बुद्ध ने गंभीर आध्यात्मिक सत्य की ओर सरल, व्यावहारिक और मार्मिक रीति से परिस्थिति के अनुकूल संकेत किया और इन सांकेतिक उक्तियों के संग्रह, व्याख्या, परिभाषा, वर्गीकरण आदि के द्वारा नाना सांप्रदायिक सिद्धांतों का विकास हुआ।

बुद्ध के युग में अनेक श्रमण परिव्राजक संसार को एक दु:खमय चक्र मानते थे। इस दृष्टि से बुद्ध सहमत थे और अनित्य संसार के द्वंद्वात्मक दु:ख से युक्त होकर आत्यंतिक शांति को उन्होंने स्वयं अपनी पर्येषणा का लक्ष्य बनाया। ध्यान के द्वारा उन्होंने धर्मरूप परम सत्य का साक्षात्कार अथवा संबोधि की प्राप्ति की। यह पारमार्थिक धर्म तर्क का अगोचर था और उसके दो रूप निर्दिष्ट हैं – प्रतीत्यसमुत्पाद और निर्वाण। प्रतीत्यसमुत्पाद में दु:ख प्रपंच की परतंत्रता संकेतित है और निर्वाण में परम शांति। अनित्य और परतंत्र नाग रूप (चित्त और शरीर) को आत्मस्वरूप समझना ही मूल अविद्या है और उसी से तृष्णा एवं कर्म द्वारा संसारचक्र अनवरत गतिशील रहता है। इसके विपरीत शील अथवा सत्कर्म, वैराग्य, एवं प्रज्ञा संसार की हेतुपरंपरा के निराकरण द्वारा निर्वाण की ओर ले जाते हैं। प्रज्ञा साक्षात्कारात्मक होती है। चार आर्य सत्यों में मूलत: यही संदेश प्रतिपादित है।

एक ओर भगवान बुद्ध ने कर्मतत्त्व को मनोवैज्ञानिक विश्लेषण के द्वारा चित्तप्रसूत बताकर यह प्रदर्शित कर दिया कि संसारवृक्ष का बीज मन ही है – 'मनोपुब्बंगमा धम्मा मनोसेट्ठा मनोमया' और दूसरी ओर मन की अनित्यता और परंतत्रता के द्वारा उसकी अनात्मता और हेयता का उन्होंने स्पष्ट प्रतिपादन कर दिया। संसार चित्त में प्रतिष्ठित है और चित्त दु:ख, अनित्य एवं अनात्म के लक्षणों से परिगृहीत। मूलत: चित्त में नैरात्म्य बोध के द्वारा चित्तोपशम ही निर्वाण है।

प्रथम आर्य सत्य की मीमांसा करते हुए बौद्धों ने त्रिविधदु:खता का प्रतिपादन किया है – दु:ख दु:खता जो संवेदनात्मक स्थूल दु:ख है, परिणाम दु:खता जो कि सुख के अन्यथाभाव से व्यक्त होती है, एवं संस्कारदु:खता जो संस्कारों की संचलनात्मकता है। इस संस्कारदु:खता के कारण ही 'सर्वं दु:खम्' इस लक्षण का कहीं भी व्यभिचार नहीं होता। दु:ख के सूक्ष्म एवं विराट् रूप का सम्यग्बोध आध्यात्मिक संवेदनशीलता के विकसित होने पर ही संभव होता है। बौद्धों के अनुसार दु:ख सत्य का साक्षात्कार होने पर पृथग्जन की स्थिति छूटकर आर्यत्व का उन्मेष होता है।

द्वितीय आर्य सत्य प्रतीत्यसमुत्पाद ही है। प्रतीत्यसमुत्पाद की अनेक प्राचीन और नवीन व्याख्याएँ हैं। कुछ व्याख्याकारों ने प्रतीत्यसमुत्पाद का मम कार्य-कारण-भाव का बोध एवं उसका आध्यात्मिक क्षेत्र में प्रयोग बताया है। अविद्या-संस्कार-विज्ञान-नाम-रूप-षडायतन-स्पर्श-वेदना, तृष्णा, उपादान, भव, जाति, जरा, मरण इन द्वादश निदानों अथवा कारणों की परंपरा प्रतीत्यसमुत्पाद है। एक अन्य व्याख्या के अनुसार प्रतीत्यसमुत्पाद शाश्वत और उच्छेद सदृश परस्पर विरुद्ध अंतों का वर्जन करनेवाली मध्यम प्रतिपद् है। इस मध्यम प्रतिपद् का अर्थ एक ओर जगत् की प्रवाहरूपता किया गया है और दूसरी ओर सभी वस्तुओं को अ-योन्यापेक्षता अथवा स्वभावशून्यता बताया गया है। स्पष्ट ही, इन और अन्य अनेक व्याख्याओं में एक मूल अविश्लिष्ट भाव का विविध विकास देखा जाता है।

तृतीय आर्य सत्य दु:खनिरोध है। यहाँ पर यह प्रश्न स्वाभाविक है कि क्या निर्वाण का एक अभावमात्र है? कुछ सौत्रांतिकों को छोड़कर अन्य बौद्ध संप्रदायों में निर्वाण को भाव रूप नहीं स्वीकार किया गया है। स्थविरवादी निर्वाण को भावरूप मानते हैं, वैभाषिक धर्मस्वभाव रूप, योगाचार तथा स्वरूप और माध्यमिक चतुष्कोटि विनिर्मुक्त शून्य स्वरूप। इतना निस्संदेह है कि निर्वाण में दु:ख, क्लेश कर्म और अविद्या का अभाव है। निर्वाण परम शांत और परम अर्थ है, असंस्कृत, निर्विकार और अनिर्वचनीय है। आध्यात्मिक साधना में जैसे-जैसे चित्त शुद्ध, प्रभास्वर और शांत होता जाता है वैसे-वैसे ही वह निर्वाण के अभिमुख होता है। इस साधनानिरत चित्तसंतति की अंतिम अवस्था अथवा लक्ष्यप्राप्ति का पूर्वावस्थाओं अथवा संतति संबंध स्थापित कर सकना संभव प्रतीत नहीं होता। इस कठिनाई को दूर करने के लिए अनेक उपायों का आविष्कार किया गया था, तथा वैभाषिकों के द्वारा 'प्राप्ति' और 'अप्राप्ति' नाम के विशिष्ट धर्मों की कल्पना वस्तुत: अंतिम अवस्था में अनिर्वचनीयता के आश्रम के अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं है।

प्राय: निर्वाण की भावाभावता का प्रश्न साभिप्राय होता है। पुद्गलवादियों के अतिरिक्त अन्य बौद्ध संप्रदायों में आत्मा अथवा जीव की सत्ता का सर्वथा तिरस्कार बुद्ध का अभीष्ट माना गया है। प्राय: इस प्रकार का आत्मातत्त्व तथा नैरात्म्यवाद बौद्ध दृष्टि की विशेषता बताई जाती है। बौद्ध दर्शन में आत्मा के स्थान पर पांच स्कंधों का अनित्य संघात स्वीकार किया जाता है। पाँच स्कंध हैं - रूप, विज्ञान, वेदना, संज्ञा एवं संस्कार। स्कंध संतति का पूर्वापद संबंध प्रतीत्य

समुत्पाद अथवा हेतु प्रत्यय के अधीन है। अनुभव के घटक इन अनेक और अनित्य तत्त्वों में कोई भी ऐसा स्थिर और समान तत्त्व नहीं है, जिसे आत्मा माना जा सके। ऐसी स्थिति में कर्ता और भोक्ता के बिना ही कर्म और भोग की सत्ता माननी होगी। अथवा यह कहना चाहिए कि कर्म और भोग में ही कर्तृत्व और भोक्तृत्व को प्रतिभासित या अध्यास्त मानना होगा। स्मृति एवं प्रत्यभिज्ञान को समझाने के लिए इस दर्शन में केवल संस्कार अथवा वासना को पर्याप्त समझा गया। इस प्रकार के नैरात्म्य के स्वीकार करने पर निर्वाण अनुभव के अभाव के अतिरिक्त और हो ही क्या सकता है? सांख्य, योग और वेदांत में चित्तनिरोध होने पर आत्मा स्वरूप प्रतिष्ठित होती है, अर्थात् अज्ञान की निवृत्ति होने पर आत्म ज्ञान की प्राप्ति होती है। जैन दर्शन में कर्मनिवृत्ति होने पर जीव को अपने पारमार्थिक स्वरूप और शक्ति की उपलब्धि होती है।

प्रश्न यह है कि अनात्मवादी बौद्ध दर्शन में अज्ञान अथवा चित्त की निवृत्ति पर क्या शेष रहता है? निर्वाण प्राप्त किसे होता है? इसका एक उत्तर यह है कि सर्वं दु:खम् को मान लेने पर निश्शेषता को ही श्रेयसी मानना चाहिए, यद्यपि इससे असंतुष्ट होकर वात्सीपुत्रीय योगाचार संप्रदायों में 'पुद्गल' अथवा 'आलय विज्ञान' के नाम से एक आत्मवत् तत्त्व की कल्पना की गई। **नागार्जुन** का कहना है 'आत्मेत्यपि देशितंप्रज्ञपितमनात्मेत्यपि। बुद्धैरात्मा न चानात्मा कश्चिदित्यपि देशितम्। ' यहाँ इस तथ्य की ओर संकेत है कि प्राचीन बौद्ध आगम में आत्मविषयक उक्तियाँ सब एकरस नहीं हैं। इस उक्तिभेद पर सूक्ष्मता से विचार कर कुछ आधुनिक विद्वानों ने यह मत प्रतिपादित किया है कि स्वयं बुद्ध ने अनात्म तत्त्वों का अनात्मत्व बनाया था न कि आत्मा का अनस्तित्त्व। उन्होंने यह कहीं नहीं कहा कि आत्मा है ही नहीं। उन्होंने केवल यह कहा कि रूप, विज्ञान, आदि स्कंध आत्मा नहीं हैं। अर्थात् बुद्ध का आत्मप्रतिषेध वास्तव में अहंकारप्रतिषेध के तुल्य है। आत्मा का स्कंधों से अभिप्रेत अभाव अन्योन्यभाव है न कि आत्मा का सर्वत्र अत्यंताभाव। इसी कारण बुद्ध ने संयुत्तनिकाय में स्पष्ट पूछे जाने पर भी आत्मा का प्रतिषेध नहीं किया और न तथागत का मृत्यु के अनंतर अभाव बताया। यह स्मरणीय है कि आत्मा के अनंत और अपरिच्छिन्न होने के कारण उन्होंने उसके अस्तित्त्व का भी ख्यापन नहीं किया क्योंकि साधारण अनुभव में 'अस्ति' और 'नास्ति' पद परिच्छिन्न गोचर में ही सार्थक होते हैं। इस दृष्टि से आत्मा और निर्वाण पर बुद्ध के गंभीर अभिप्राय को शाश्वत और उच्छेद से परे

एक अतर्क्य माध्यमिक प्रतिपद् मानना चाहिए। यही उनके आर्य मौन से पूरी तरह समंजस हो सकता है।

चतुर्थ आर्यसत्य या निरोधगामिनी प्रतिपद् प्रायः आर्य अष्टांगिक मार्ग से अभिन्न प्रतिपादित है। अष्टांगिक मार्ग के अंग हैं - सम्यक् दृष्टि, संकल्प, वाक्, कर्मा, आजीव, यायाम, स्मृति और .समाधि। वस्तुतः यह अष्टक बोधपाक्षिक धर्मों का संग्रह विशेष है। प्रायः 37 बोधिपाक्षिक धर्म उल्लेखित हैं। प्रकारांतर से शील, समाधि और प्रज्ञा, इन तीन में आध्यात्मिक साधन संगृहीत हो जाता है। **बुद्धघोष** ने 'विसुद्धिमग्गो' में इसी क्रम का आश्रय लिया है। यह स्मरणीय है कि, जिस क्रम से दुःख उत्पन्न होता है, उसके विपरीत क्रम से वह आपाततः निरुद्ध होता है। दुःख की कारणपरंपरा है अविद्याः - क्लेश-कर्म, जिसमें उत्तरोत्तर स्थूल है। दुःख निवृत्ति की परंपरा में पहले शील के द्वारा कर्म का विशोधन होता है, फिर समाधि अथवा भावना के द्वारा क्लेशप्रहाण और फिर प्रज्ञा अथवा साक्षात्कार के द्वारा अविद्या का अपाकरण। यह अवधेय है कि शीलाभ्यास के पूर्व ही सम्यग्दृष्टि आवश्यक है। सम्यग्दृष्टि स्वयं परोक्षज्ञानरूपा है, किंतु साधन की दिग्दर्शिका है। शील और समाधि दोनों ही संयम के रूप हैं - स्थूल और सूक्ष्म, पहले से कर्म का परिष्कार होता है, दूसरे से क्लेशों का तनूकरण। शील में सफलता समाधि को सरल बनाती हैं, समाधि में सफलता शील को पूर्णता प्रदान करती है। समाधि में पूर्णता होने पर सम्यग्दृष्टि का स्थान प्रज्ञा ले लेती है।

पटिसंभिदामग्ग के अनुसार शील चेतना है, शील चेतसिक है, शील संवर है, शील अव्यतिक्रम है। उपासकों के लिए पांच-शील उपदिष्ट हैं, अनुपसंपन्न श्रामणेरो के लिए दशशील विहित हैं, उपसंपन्न भिक्षु के लिए प्रातिमोक्ष संवर आदि प्रज्ञप्त हैं। पंचशील में अहिंसा, अस्तेय, सत्य, अव्यभिचार और मद्यानुपसेवन संगृहीत हैं। यह स्मरणीय है कि पंचशील पंच विरतियों के रूप में अभिहित हैं, यथा प्राणातिपात से विरति, अदत्तादान से विरति इत्यादि। सिगालोवाद सुत्तंत आदि में उपासक धर्म का और अधिक विस्तृत विवरण उपलब्ध होता है।

प्रव्रज्या प्राप्त करने पर भिक्षु श्रामणेर कहलाता था और उसे एक उपाध्याय एवं आचार्य के निश्रय में रहना पड़ता था। उसके लिए शील में 10 विरतियाँ या वर्जनाएँ संगृहीत हैं - प्राणघात से, चोरी से, अब्रह्मचर्य से, झूठ से, शराब और नशीली वस्तुओं से, विकाल-भोजन से, नाच, गाना बजाना और तमाशा देखने से, माला, गंध, विलेपन और अलंकरण से, ऊँची शय्या और बहुमूल्य शय्या से और

सोना चाँदी ग्रहण करने से। पिंडपात, चीवर, शयनासन, ग्लान प्रत्यय भेषज्य भिक्षु के चार निश्रय कहलाते हैं। इनमें क्रमशः अतिरिक्त लाभ की अनुमति भिक्षुजीवन और संघ की समृद्धि में प्रगति सूचित करती है। भिक्षु जीवन और संगठन के नियम विनयपिटक में संगृहीत हैं। इनका भी एक विकास अनुमेय है। प्रारंभिक अवस्था में भिक्षुओं के एकांत जीवन पर अत्यधिक जोर था। पीछे क्रमशः आवासिक जीवन पल्लवित हुआ। चातुर्दिश संघ प्रायः तीन योजन से अनधिक सीमा के अनेक स्थानीय संघारामों में विभक्त था, जिनमें गणतंत्र की प्रणाली से कार्यनिर्वाह होता था। एकत्रित भिक्षुसमूह में ऐकमत्य, उद्वाहिका, शलाकाग्रहण, अथवा बहुमत से निश्चय पर पहुँचा जाता था।

भिक्षु उपोसथ के लिए प्रतिपक्ष एकत्र होते थे और उस अवसर पर प्रातिमोक्ष का पाठ किया जाता था। प्रातिमोक्ष के आठ विभाग हैं – पाराजिक, संघावशेष, अनियत, नैसर्गिक पातायंतिक, पातयंतिक प्रतिदेशनीय, शैक्ष एवं अधिकरण शमथ। इनके अंतर्गत नियमों की संख्या सब संप्रदायों में समान नहीं है। किंतु यह संख्याभेद मुख्यतः शैक्ष धर्मों के परिगणन में है। शेष वर्गों में संख्या प्रायः समान है और प्राचीन 'दियट्ठसिक्खापदसत' के उल्लेख से समंजस है। प्रत्येक वर्ग के पाठ के बाद सबसे तीन बार पूछा जाता था 'क्या आप लोग इन दोषों से शुद्ध हैं?' अपराधी भिक्षु अपने व्यतिक्रम की आदेशना करते थे और उनपर उचित प्रायश्चित्त अथवा दंड की व्यवस्था की जाती थी। वर्षावास के अपने नियम थे और उनके अनंतर प्रवारणा नाम का पर्व होता था।

## संगीतियाँ और निकाय

बौद्ध परंपरा के अनुसार परिनिर्वाण के अनंतर ही राजगृह में प्रथम संगीति हुई थी और इस अवसर पर विनय और धर्म का संग्रह किया गया था। इस संगीति की ऐतिहासिकता पर इतिहासकारों में प्रचुर विवाद रहा है, किंतु इस विषय की खोज की वर्तमान अवस्था को इस संगीति की ऐतिहासिकता अनुकूल कहना होगा, तथापि यह संदिग्ध रहता है कि इस अवसर पर कौन-कौन से संदर्भ संगृहीत हुए। दूसरी संगीति परिनिर्वाण सौ वर्ष पश्चात् वैशाली में हुई जब कि महावंस के अनुसार मगध का राजा कालाशोक था। इस समय सद्धर्म अवंती से वैशाली और मथुरा से कौशांबी तक फैला हुआ था। संगीति वैशाली के भिक्षुओं के द्वारा प्रचारित 10 वस्तुओं के निर्णय के लिए हुई थी। ये 10 वस्तुएँ इस प्रकार थीं – शृंगि-लवण-कल्प, द्वि अंगुल-कल्प, ग्रामांतरकल्प, आवास-कल्प,

अनुमत-कल्प, आचीर्ण-कलप, अर्मथित-कल्प, जलोगीपान-कल्प, अदशक-कल्प, जातरूप-रजत-कल्प। इन कल्पों को वज्जिपुत्तक भिक्षु विहित मानते थे और उन्होंने आयुष्मान् यश के विरोध का तिरस्कार किया। इसपर यश के प्रयत्न से वैशाली में 700 पूर्वी और पश्चिमी भिक्षुओं की संगीति हुई, जिसमें दसों वस्तुओं को विनयविरुद्ध ठहराया गया। दीपवंस के अनुसार वज्जिपुत्तकों ने इस निर्णय को स्वीकार न कर स्थविर अर्हंतों के बिना एक अन्य 'महासंगीति' की, यद्यपि यह स्मरणीय है कि इस प्रकार का विवरण किसी विनय में उपलब्ध नहीं होता। कदाचित् दूसरी संगीति के अनंतर किसी समय महासांघिकों का विकास एवं संघभेद का प्रादुर्भाव मानना चाहिए।

दूसरी संगीति से अशोक तक के अंतराल में 18 विभिन्न बौद्ध संप्रदायों का आविर्भाव बताया गया है। इन संप्रदायों के आविर्भाव का क्रम सांप्रदायिक परंपराओं में भिन्न-भिन्न रूप से दिया गया है। उदाहरण के लिए दीपवंस के अनुसार पहले महासांघिक पृथक् हुए। उनसे कालांतर में एकब्बोहारिक और गोकुलिक, गोकुलिकों से पंजत्तिवादी, बाहुलिक और चेतियवादी। दूसरी ओर थेरवादियों से महिंसासक और वज्जिपुत्तक निकले। वज्जिपुत्तकों से धम्मुत्तरिय, भद्दयातिक, छन्नगरिक, एवं संमितीय, तथा महिंसासकों से धम्मगुत्तिक, एवं सब्बत्थिवादी, सब्बत्थिवादियों से कस्सपिक, उनसे संकंतिक और संकंतिकों से सुत्तवादी। यह विवरण थेरवादियों की दृष्टि से है। दूसरी ओर सर्वास्तिवादियों की दृष्टि वसुमित्र के समचभेदोपरचनचक्र में संगृहीत है। इसके अनुसार महासांघिक तीन शाखाओं में विभक्त हुए। एकव्यावहारिक, लोकोत्तरवादी एवं कौक्कुलिक। पीछे उनसे बहुश्रुतीय और प्रज्ञप्तिवादियों का आविर्भाव हुआ, तथा बुद्धाब्द के दूसरे शतक के समाप्त होते उनसे चैत्यशैल, अपरशैल और उत्तरशैल शाखाएँ निकलीं। दूसरी ओर स्थविरवादी सर्वास्तिवादी अथवा हेतुवादी, तथा मूलस्थविरवादी निकायों में विभक्त हुए। मूल स्थविर ही हैमवत कहलाए। पीछे सर्वास्तिवादियों से वात्सीपुत्रीय, महीशासक, काश्यपीय, एवं सौत्रंतिकों का आविर्भाव हुआ। वात्सीपुत्रियों में धर्मोत्तरीय, भद्रयाणीय, सम्मतीय, एवं षण्णगरिक निकाय उत्पन्न हुए, तथा महीशासकों से धर्मगुप्तों का आविर्भाव हुआ।

इन और अन्य सूचियों को देखने से इतना निश्चित होता ही है कि कुछ प्रमुख नैकायिक धाराएँ दूसरी बुद्धाब्द शती में प्रकट हुईं। इनमें महासांघिकों के अनुसार बुद्ध और बोधिसत्वों का जन्म सर्वथा लोकोत्तर होता है। बुद्ध का स्वभाव और सब धर्म लोकोत्तर हैं। उनका लोकवत् प्रतीयमान व्यवहार केवल लोकानुवर्तन

हैं। उनकी रूपकाय, आयु और प्रभाव अमित हैं। उनकी देह अनास्त्रव धर्मों से निर्मित है। वे शाश्वत समाधि में स्थित रहते हैं और उनके शब्द केवल प्रतीत होते हैं। महासांघिक प्रकृतिभास्वर चित्त को असंस्कृत धर्म मानते थे। त्रिपिटक के अतिरिक्त उनमें संयुक्त पिटक और धारणीपिटक भी विदित थे। यह प्रायः स्वीकार किया जाता है कि महासांघिक धारा ने महायान के आविर्भाव में विशेष भाग ग्रहण किया। महासांघिकों का आग्रह एक ओर बुद्ध और बोधिसत्व की अलौकिकता पर था, दूसरी ओर अर्हतों की परिहाणीयता पर। उनकी एक शाखा का नाम ही लोकोत्तरवादी था और इनका एक प्रमुख ग्रंथ 'महावस्तु' सुविदित महासांघिक, वात्सीपुत्रीय, सर्वस्तिवादी एवं स्थविरवादी, ये चार प्रमुखतम निकाय थे। ह्वेनसांग ने इनके विहार बामियाँ में पाए थे और तारानाथ ने उनकी पाल युग में सत्ता सूचित की है। आँध्रदेश में महासांघिकों का विशेष विकास हुआ। अमरावती और नागार्जुनीकोण्ड के अभिलेखों में उनके 'चैत्यक', 'पूर्वशैलीय', 'अपरशैलीय' आदि निकायों के नाम मिलते हैं। महासांघिकों के इन प्रभेदों को बुद्धघोष ने भी 'अंधक' अथवा अंध्रक कहा है।

वात्सीपुत्रियों की कई शाखाओं के नाम मथुरा और अपरांत के अभिलेखों में उपलब्ध होते हैं। ह्वेनसांग ने उनके विहार प्रधानतया पश्चिम में देखे थे और इत्सिग के विवरण से इसका समर्थन होता है। इनकी सर्वाधिक प्रसिद्ध शाखा सम्मितियों की थी। वात्सीपुत्रियों का मुख्य सिद्धांत पुद्गलवाद था। उनका कहना था कि पुद्गल न स्कंधों से भिन्न है न अभिन्न। आगम के प्रसिद्ध भारहार सूत्र का इस संप्रदाय में विशेष आदर था। कथावस्तु में सर्वप्रथम पुद्गलवाद का खंडन मिलता है और यह विचारपूर्वक प्रतिपादित किया गया है कि यह प्रथम पुद्गलकथा निस्संदेह कथावत्थु के प्राचीनतम अंशों में है।

परंपरा के अनुसार कथावत्थु की रचना मोग्गलिपुत्त तिस्स ने अशोककालीन तृतीय बौद्ध संगीति के अवसर पर की थी। सिंहली परंपरा अपने को मूल और प्रामाणिक स्थविरवाद की परंपरा मानती है, जिसे अशोक के प्रयत्नों ने सिंहल तक पहुँचाकर प्रतिष्ठित किया। इस परंपरा के अनुसार अशोक ने अपने समय में संघ की दुरवास्था देखकर मोग्गलिपुत्त तिस्स की प्रमुखता में पाटलिपुत्र में एक संगीति का आयोजन किया, जिसमें स्थविरवाद (विभज्यवाद) की स्थापना हुई तथा अन्य विरोधी मतों का खंडन किया गया। संघ से उन भिक्षुओं का भी निष्कासन हुआ, जिनकी दृष्टि एवं शीतल अशुद्ध थे। इस प्रकार अशोक के प्रयत्नों से संघ पुनः शुद्ध एवं समग्र हुआ। परंपरा के अनुसार अशोक ने धर्मप्रचार

के लिए नाना विहार, एवं स्तूप बनवाए। साथ ही मोग्गलिपुत्त के नेतृत्व में संघ ने नाना दिशाओं में धर्म के प्रचार के लिए विशेष व्यक्तियों को भेजा। कश्मीर गांधार के लिए मज्झंतिक भेजे गए, महिषमंडल के लिए महादेव, वनवासी के लिए रक्खित, अपरांत के लिए योनक धम्मरक्खित, महारट्ठ के लिए महाधम्मरक्खित, यवनों में महारक्खित, हिमवत्प्रदेश में मज्झिम, काश्यपगोत्र, मूलदेव, सहदेव और दुंदुभिस्सर, सुवण्णभूमि में सोण और उत्तर, ताम्रपर्णी में महेंद्र, 'इट्ठिय', उत्तिय, संबल और भद्दसाल। यह उल्लेखनीय है कि साँची और सोनारी के स्तूपों से प्राप्त अभिलेखों में 'सत्पुरुष मौद्गलीपुत्र', हैमवत दुंदुभिस्वर, सत्पुरुष मध्यम, एवं 'सर्वहैमवताचार्य काश्यपगोत्र' के नाम उपलब्ध होते हैं, जिससे इस इस साहित्यिक परंपरा का समर्थन होता है। दूसरी ओर अशोक के अपने अभिलेखों में तृतीय संगीति का स्पष्ट उल्लेख प्राप्त नहीं होता। अशोक, जिस धर्म के प्रचार का सतत् उल्लेख करता है उसे बौद्ध धर्म मानना भी सरल नहीं है। अशोक का धर्म आपाततः सब धर्मों का सार ही प्रतीत होता हे। इस कारण इतिहासकारों की यह प्रापित उक्ति कि अशोक के प्रयत्नों से मगध का एक स्थानीय धर्म विश्व धर्म बन गया, अयुक्त प्रतीत होती है। बौद्ध धर्म का प्रसार मूलतः स्वयं संघ के प्रयत्नों का परिणाम था, यद्यपि इस प्रक्रिया में एकाधिक महान शासकों ने उचित योगदान दिया।

पालि त्रिपिटक सिंहल में राजा वट्टगामणि के सय प्रथम शताब्दी ई.पू. में लिपिबद्ध किया गया। परंपरा के अनुसार महेंद्र अपने साथ अट्टकथाएँ भी लाए थे और ये भी इसी समय लिखी गई। ये सिंहली भाषा में कई शताब्दियों तक उपलब्ध थीं और उन्हीं के आधार पर **बुद्धघोष** ने अपनी प्रसिद्ध पालि अट्टकथाएँ लिखीं। स्थविरवादी अभिधर्म और आचार्यों के अनुसार सत्य धर्मात्मक है। धर्म नाना और पृथक्-पृथक् हैं। प्रत्येक अपने प्रतिविशिष्ट स्वभाव को धारण करता है और हेतु प्रत्यय से धारित होता है। **आचार्य अनिरुद्ध** के अनुसार रूप, चित्त, चैत्त और निर्वाण, ये चार धर्मों के मुख्य प्रकार हैं। चैत्त धर्मों में वेदना, संज्ञा एवं संस्कार संगृहीत हैं। इस प्रकार यह विभाजन प्राचीन पंच स्कंध और असंस्कृत का ही परिष्कृत रूप है। संस्कार स्कंध का विशेष विस्तार किया गया। चित्त का अकुशल, कुशल और अव्याकृत, यह त्रिविधि मौलिक विभाजन किया गया। लोभ, द्वेष और मोह अकुशल मूल हैं। कुशल चित्त चतुर्विध है - कामावचर रूपावचर अरूपावचर और लोकोत्तर। अव्याकृत चित्त द्विविध है विपाक और क्रिया। धम्मसंगणि में कुल 89 प्रकार के चित्तों का विवरण है।

पट्ठानप्पकरण में धर्मों का कार्य-कारण-भाव की दृष्टि से अभिसंबंध आलोचित किया गया है और 24 प्रकार के पच्चयों (प्रत्ययों) का विवरण दिया गया है। यदि यह विश्लेषण ज्ञान मीमांसा और तर्क की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है तो मनोविज्ञान की दृष्टि से वीथिचित्त आदि का विश्लेषण एक अपूर्व गंभीरता और सूक्ष्मता प्रकट करता है। इस प्रकार के विश्लेषण में चित्त की प्रक्रियाओं का नियत अवस्थाक्रम प्रदर्शित किया गया है, जिस प्रकार अशोक और तृतीय संगीति स्थविरवाद के इतिहास के महत्त्वपूर्ण अंग हैं, इसी प्रकार कनिष्क और चतुर्थ संगीति सर्वास्तिवाद के इतिहास में महत्त्वपूर्ण हैं। अशोक और मिलिंद (मेनैडर) के तुल्य ही कनिष्क का नाम बौद्ध इतिहास में जाज्वल्यमान है। इस चतुर्थ संगीति के अध्यक्ष पार्श्व थे जो कनिष्क द्वारा स्थापित पुरुषपुर के आश्चर्य महाविहार के थे। संगीति का स्थान कश्मीर का कुँडलवन बिहार अथवा जालंधर का कुवन बताया गया है। इस संगीति में पार्श्व के साथ 500 अर्हत् और वसुमित्र के साथ 500 बोधिसत्वों का भाग ग्रहण कहा गया है। किंतु बोधिसत्वों का इस प्रसंग में उल्लेख अधिक विश्वास्य नहीं प्रतीत होता। तृतीय संगीति के विरुद्ध इस संगीति में सभी अष्टादश निकायों की प्रामाणिकता का स्वीकार बताया गया है। संगीति का सबसे महत्त्वपूर्ण और स्थायी कार्य 'अभिधर्म महा विभाषा' की रचना थी।

सर्वास्तिवादियों के दो भेद प्रसिद्ध हैं - वैभाषिक और सौत्रंतिक। विभाषा के अनुयायी वैभाषिक कहलाते थे। धर्मत्रत, घोषक, वसुमित्र एवं बुद्धदेव वैभाषिक कहलाते थे। इनमें घोषक तुषारजातीय थे। यह उल्लेख है कि वैभाषिक, जिनका केंद्र गांधार में था। सर्वास्तिवाद का मंथन कर **आचार्य वसुबंधु** ने अपना जगत्प्रसिद्ध 'अभिधर्मकोश' रचा। वसुबंधु का कालनिर्णय प्रचुर विवाद का विषय रहा है। दो वसुबंधुओं की सत्ता को अब सिद्ध मानना चाहिए किंतु यह सिद्ध नहीं है कि इनमें एक महायानी आचार्य विज्ञप्तिमात्रतासिद्धि का रचयिता था और दूसरा कोश का। मुख्य वसुबंधु को पाँचवीं शताब्दी में रखना ही प्रमाणसंगत प्रतीत होता है।

सर्वास्तिवादियों का मुख्य सिद्धांत था 'सर्वमस्ति'। वैभाषिकों के अनुसार इसका अर्थ था सब धर्मों की त्रैयध्विक सत्ता का स्वीकार। अर्थात् अतीत और अनागत धर्मों के अस्तित्त्व का अभ्युपगम। आपाततः यह मत सांख्यों के परिणामवाद एवं प्रवाहनित्यता के सिद्धांत सदृश है। किंतु वैभाषिक संस्कृत लक्षणों के स्वीकार से शाश्वत प्रसंग का निवारण करते थे। संस्कृत लक्षण चार हैं - उत्पाद, स्थिति, व्यय, एवं निरोध या अनित्यता। य आपाततः विरुद्ध होने

पर भी वस्तुतः सहकारी हैं। त्रैयध्विक द्रव्य सत्ता के साथ अध्व भेद स्थापित करने के लिए अनेक मत उद्भावित किए गए, जिनमें वसुमित्र के अवस्थान्यथात्व का वसुबंधु ने शोभन कहा है। वैभाषिकों के विरुद्ध सौत्रतिकों का कहना था कि 'सर्व' शब्द से 'द्वादशायतन' समझना चाहिए।

वैभाषिक संस्कृत धर्मों में रूप, चित्त, चैत्त और चित्तविप्रयुक्त संस्कार गिनते थे। इनके अतिरिक्त वे तीन असंस्कृत धर्म स्वीकार करते थे, आकाश, प्रतिसंख्यानिरोध, अप्रतिसंख्यानिरोध। इन सब धर्मों के कार्य-कारण-भाव के विश्लेषण के द्वारा चार प्रत्यय, छह हेतु एवं पाँच फल निर्धारित किए गए।

यशोमित्र ने सौत्रंतिकों के नामार्थ पर कहा है 'ये सूत्रप्रामाणिका न तु शास्त्रप्रामाणिकास्ते सौत्रंतिकाः। ' ह्वेनसांग ने **कुमारलब्ध** (कुमारलात) को सौत्रंतिक संप्रदाय का प्रवर्तक बताया है। कुमारलब्ध तक्षशिलावासी थे और **अश्वघोष, नागार्जुन** एवं **आर्यदेव** के समकालीन प्रसिद्ध हैं। भारतीय दर्शन के विकास में सौत्रंतिकों की सूक्ष्म समीक्षा अत्यंत सहायक सिद्ध हुई। वैभाषिकों के द्वारा स्वीकृत पंचधर्मों में सौत्रंतिक असंस्कृत को निरोधमात्र एवं चित्तविप्रयुक्त को प्रज्ञप्तिमात्र मानते थे। रूप उनके मत से अनुमेय हो जाता है। इस प्रकार चित्त और चैत्त ही निश्चित और प्रमुख तत्त्व हो जाते हैं। वे एक सूक्ष्म और एकरस मनोविज्ञान की सत्ता मानते थे। इस प्रकार सौत्रंतिकों के सिद्धांतों ने विज्ञानवाद एवं बौद्ध न्याय, दोनों का ही मार्ग प्रशस्त किया।

### *महायान*

हीनयान और महायान, इनका इस प्रकार नामकरण एवं भेद महायान की कल्पना है। हीनयान को श्रावकयान भी कहा गया है, महायान को एकयान अग्रयान, बोधिसत्वयान एवं बुद्धयान भी। यानभेद महायानसूत्रों में आविर्भूत और महायान-शास्त्रों में सविस्तर प्रतिपादित हुआ है। नागार्जुन के अनुसार बुद्ध ने अपनी वास्तविक देशना अधिकारी बोधिसत्वों को दी थी, उनकी प्रकट देशना न्यून अधिकारियों के लिए अर्हद्विषयक थी। इस प्रकार यानभेद का आधार अधिकारभेद एवं लक्ष्यभेद था। महायान के सिद्धांत-पक्ष में बुद्धत्व, शून्यता एवं चित्तमात्रता प्रधान हैं, साधन पक्ष में बोधिसत्वचर्या, जिसमें पारमिताएँ और भूमियाँ महत्त्वपूर्ण हैं।

हीनयानी का लक्ष्य केवल अपने लिए अर्हत्व की प्राप्ति है। महायानी का लक्ष्य सब प्राणियों के उद्धार के लिए बुद्धत्व की प्राप्ति है। यही महायान की

लक्ष्यगत महत्ता है और इसके अनुकूल प्रणिधान की योग्यता ही महायानी का उच्चाधिकार है। पुद्गलशून्यता के बोध से क्लेशावरण का क्षय हो जाता है और इस प्रकार अर्हत्व प्राप्त होता है। किंतु इस साधन से ज्ञेयावरण के न हटने के कारण सर्वज्ञता अथवा बुद्धत्व की प्राप्ति नहीं होती। बुद्धत्व के लिए सर्वप्रथम अशेष प्राणियों के कल्याण के लिए बोधिप्राप्ति का संकल्प आवश्यक है। इस बोधिचित्त प्रणिधान के अनंतर नाना भूमियों में पारमिताओं का साधन किया जाता है। अंत में धर्मशून्यता के बोध से बुद्धत्व की प्राप्ति होती है।

महायान में बोधिसत्वचर्या की तीन मुख्य अवस्थाएँ हैं, जिनमें पहली प्रकृतिचर्या द्विविध है, गोत्रभूमि एवं अधिमुक्तिचर्या। गोत्र वास्तव में एक प्रकार का स्वभाव एवं आध्यात्मिक प्रवृत्ति है, जिसका पूर्वकर्म के प्रभाव से निर्माण होता है। यही प्रकारांतर से 'अधिकार' का मूल है। दूसरी अवस्था बोधिसत्व भूमियों की है।

महायान की उत्पत्ति के कारण, ऐतिहासिक क्रम एवं देश काल के विषय में ऐकमत्य नहीं है। महायानियों ने अपनी दृष्टि की प्रामाणिकता एवं मूल संलग्नता के पक्ष में अनेक युक्तियाँ दी हैं। उनका कहना है कि वास्तविक बुद्ध देशना का लक्षण, जो विनय और सूत्र में उपलब्ध हो तथा धर्मता के अविरुद्ध हो, महायान में ही है। यहाँ वे 'विनय' और 'सूत्र' से महायानिक आगम को ही लेते थे। इस मत के विरोधी – और इनमें अधिकांश आधुनिक इतिहासकार सम्मिलित हैं – महायानिक आगम को बुद्धवचन नहीं मान पाते क्योंकि उनकी उपलब्धि बुद्ध के युग के बहुत बाद में होती है। किंतु सूक्ष्म परीक्षा से यह दिखलाया जा सकता है कि कुछ प्रधान महायानिक सिद्धांत बीज रूप से प्राचीन आगमों में भी संकेतित हैं। और फिर बुद्धवचन का अभिप्राय समझने में धर्मता का आनुलोम्य उपेक्ष्य नहीं हो सकता और महायान के पक्ष में कहना होगा कि उसने बुद्ध के अपने जीवन और साधन को सबके लिए आदर्श बता कर अपना एक अनिवार्य मूल प्रकट किया है। सैद्धांतिक विस्तार और अभिधान की दृष्टि से वास्तव में बुद्ध देशना को पूर्णतः 'हीनयान' अथवा 'महायान' कह सकना कठिन है। अवश्य ही 'हीनयान' का विकास पहले हुआ किंतु उसके कुछ प्राचीन संप्रदायों में ऐसे सिद्धांत एवं प्रवृत्तियाँ थीं जो क्रमशः विकसित होकर महायान में परिणत हुईं। इनमें महासांघिक और सर्वास्तिवादी संप्रदाय उल्लेख्य हैं।

महायान के उत्पत्ति स्थल के विषय में अष्टसाहस्त्रिका की प्रसिद्ध उक्ति महासांघिकों के आंध्र केंद्र की ओर संकेत करती है। ई. शताब्दी के मध्य तक

प्रज्ञापारमिता का चीनी अनुवाद, एवं प्रायः उस समय तक उसपर नागार्जुन का विशाल प्रज्ञापारमिताशास्त्र निबद्ध हो चुके थे। सुदूर पूर्व तक यह प्रसार और इतना शास्त्रीय विकास महायान की उत्पत्ति संभवतः ई.पू. प्रथम शताब्दी में सूचित करता है। महायान-सूत्र-राशि कितनी विशाल है इसका अनुमान इससे लगाया जा सकता है कि महाव्युत्पत्ति में 105 सूत्रों के नाम दिए गए हैं, शिक्षासमुच्चय में प्रायः 100 सूत्रग्रंथों से उद्धरण प्राप्त होते हैं, नंजियों के चीनी त्रिपिटक में सात वर्गों में विभक्त 541 महायानसूत्रों का उल्लेख है। अधिकांश महायान साहित्य अपने मूल रूप में लुप्त हो चुका है तथापि आधुनिक खोज ने अनेक महत्त्वपूर्ण सूत्रों को प्रकाशित किया है। इसमें अष्टसाहस्त्रिका प्रज्ञापारमिता, सद्धर्मपुंडरीक, ललितविस्तर, लंकावतार, सुवर्णप्रभास, गंडव्यूह, समाधिराज, सुखावतीव्यूह, कारंडव्यूह, आदि विशेष रूप से उल्लेख्य हैं। उनमें अष्टसाहस्त्रिका संभवतः प्राचीनतम है और माहायानिक शून्यता का प्रतिपादन करती है। सद्धर्मपुंडरीक में बुद्ध का ऐश्वर्य, उपायकौसल से यान-भेद एवं बुद्ध-भक्ति का प्रतिपादन मिलता है। लंकावतार योगाचार की दृष्टि से विशेष महत्त्वपूर्ण है।

महायान का शास्त्रीय रूप एवं प्रचार सर्वाधिक ऋणी आचार्य नागार्जुन का है। उनके विषय में नाना ऐतिहासिक विवाद हैं, किंतु यह निश्चित है कि वे दाक्षिणात्य थे एवं एक प्रसिद्ध राजा के समकालीन थे जो संभवतः ई. दूसरी शताब्दी का था। उनके अनेक प्रसिद्ध ग्रंथों में माध्यमिक कारिकाएँ मूर्धन्य हैं। इसमें शून्यता को प्रतीत्यसमुत्पाद और माध्यम प्रतिपद् से अभिन्न बताया गया है। धर्मों की परतंत्रता और परापेक्षता ही उनकी निस्स्वभावता का द्योतन करती है। यह निस्स्वभावता न भाररूप है, न अभावरूप। शून्यवाद परमार्थ की निर्विकल्पता और अनिर्वचनीयता सूचित करता है। इस मत की स्थापना केवल एक मत के प्रतिषेध के द्वारा की जा सकती है। नागार्जुन इसका विस्तारशः प्रतिपादन करते हैं कि किसी भी वस्तु की सत्यता स्वीकार करने पर अपरिहार्य रूप से विरोध प्रसक्त होता है। इस तर्क प्रणाली को प्रसंगापादन या प्रासंगिक कहते हैं। नागार्जुन के अनंतर शून्यवाद के प्रमुख प्रतिपादकों में आर्यदेव, भावविवेक, बुद्धपालित एवं चंद्रकीर्ति के नाम उल्लेखनीय हैं।

योगाचार और विज्ञानवाद को प्रायः समानार्थक माना जाता है। यह कहना अधिक सही होगा कि महायान सूत्रों में एवं मैत्रेयनाथ एवं असंग की कृतियों में योगाचार एक आध्यात्मिक दर्शन के रूप में प्रकट होता है। वसुबंधु एवं परवर्ती आचार्यों के दार्शनिक प्रतिपादनों में इसे विज्ञानवाद की आस्था का समुचित विषय

मानना चाहिए। योगाचार के मूल सूत्रों में संधिनिर्मोचन, लंकावतार एवं घनव्यूह उल्लेख्य हैं। इनमें जगत् को स्वप्नवत् विज्ञानधारा में अध्यस्त माना गया है। इनमें पहले सात प्रवृत्तिविज्ञान है, जिनका आलयविज्ञान से तरंग और सागर सा संबंध है क्योंकि आलय में प्रवृत्ति के बीज एवं संस्कार संनिहित रहते हैं।

मैत्रेयनाथ को अब प्रायः ऐतिहासिक महापुरुष स्वीकार किया जाता है। **तारानाथ** और **बुदोन** के अनुसार असंग ने मैत्रेय से पाँच शास्त्र प्राप्त किए – अभिसमयालंकार, सूत्रलंकार, मध्यांतविभंग, धर्मधर्मताविभंग एवं महायानोत्तरतंत्र। इनमें से पहले दो प्रसिद्ध ग्रंथों में बोधिसत्वचर्या के रूप में योगाचार की पद्धति एवं अवस्थाओं का सविस्तार विवरण है। असंग पुरुषपुर के एक ब्राह्मण परिवार में उत्पन्न हुए थे और वसुबंधु के अग्रज थे। उनके ग्रंथों में योगाचारभूमिशास्त्र सबसे प्रसिद्ध हैं। कहा जाता है कि असंग के प्रयत्नों से वसुबंधु ने महायान स्वीकार किया। परमार्थ एवं युवान् च्वांग की गणना से एवं विक्रमादित्य एंव बालादित्य के समकालीन होने से वसुबंधु का समय पाँचवीं शताब्दी ही स्थिर होता है। वसुबंधु ने विज्ञानवाद को शुद्ध तर्कभूमि में उपनीत किया। दिंनाग ने इस न्यायानुसारिता को आगे बढ़ाकर बौद्ध न्याय को सुव्यवस्थित रूप प्रदान किया। न्यायदर्शन के आचार्यों से शास्त्रर्थ के प्रसंग में बौद्ध न्याय की अपूर्व प्रगति हुई तथा वह धर्मकीर्ति की कृतियों में अपने सर्वोच्च शिखर को प्राप्त हुआ। **धर्मकीर्ति** को 'भारतीय कांट' कहा गया है।

जहाँ एक ओर बौद्ध न्याय एवं न्यायानुसारी दर्शन का विकास हो रहा था, वहाँ दूसरी ओर बौद्धों में तंत्र शास्त्र की प्रगति भी निश्चित प्रकाश में आई। बौद्ध तांत्रिक परंपरा के अनुसार तथागत ने धान्यकटक में वज्रयान के लिए तृतीय धर्म चक्र प्रवर्तन किया था। धान्यकटक के उल्लेख से सूचित होता है कि बज्रयान का मूल भी महासांघिकों में ही खोजना चाहिए। इस प्रसंग में उनके रूप और रूपकाय विषयक मत, धारणीपिटक का स्वीकार, एवं वैतुल्यकों के द्वारा आभिप्रायिक मिथुनचर्या का स्वीकार लक्षणीय है। असंग की कृतियों में परावृत्ति एवं अभिसंधि के सिद्धांत स्पष्टतः तांत्रिक प्रतीत होते हैं। प्राचीनतम उपलब्ध तंत्र मंजुश्रीम्लकल्प एवं गुह्यसमाज है। तारानाथ के अनुसार 300 वर्ष तक गुप्त रहकर तांत्रिक परंपरा प्रकाश में आई और धर्मकीर्ति के पश्चात्, विशेष रूप से पाल युग में, उसका अधिकाधिक प्रचार हुआ।

अद्वयवज्र के अनुसार महायान के दो प्रभेद हैं – पारमितानय और मंत्रनय। इनमें मंत्रनय की व्याख्या योगाचार और माध्यमिक स्थिति से होती है। मंत्रनय

ही बौद्ध तंत्र अथवा वज्रयान का प्राण है। वज्रयान में प्रज्ञा एवं उपाय की युगनद्ध सत्ता को ही परमार्थ मानते हैं। इन्हीं प्रज्ञा और उपाय को वज्र और पद्म भी कहते हैं। प्रकारांतर से यही तथागत का स्वरूप है और कार्य वाक्चित्त वज्रधर कहा गया है, जिनसे पंचस्कंधों के अधिष्ठाता पाँच 'ध्यानी' बुद्ध निस्सृत होते हैं। इन बुद्धों के साथ उनकी 'शक्तियाँ' एवं बोधिसत्व मिलकर 'कुल' निष्पन्न होते हैं, जिनके व्यवस्थापन से 'तथागत मंडल' बनता है। बोधिचित्त के उत्पादन के अनंतर मंडल में अद्वैतभावना से शक्ति सहचरित उपासना ही तांत्रिक उपासना है।

## बौद्ध धर्म का ह्रास

**फाहियान** (399-414), **सुंग युन** (418-21), ह्वेनसांग, (629-45), **इत्सिंग** (671-95) **व्ही-चू** (726-29) और **इ-कुंग** (751-90) के विवरणों से बौद्ध धर्म के मध्य एशिया और भारत में क्रमिक ह्रास की सूचना मिलती हैं, जिसकी अन्य साहित्यिक और पुरातात्विक साक्ष्य से पुष्टि होती है। साक्षीय है कि अनेक बौद्ध सूत्रों में सद्धर्म की अवधि 500 अथवा 1000 अथवा 1500 वर्ष बताई गई है। कपिलवस्तु श्रावस्ती, गया एवं वैशाली में ह्रास गुप्त युग में ही लक्ष्य था। गांधार और उड्डियान में हूणों के कारण सद्धर्म की क्षति हुई प्रतीत होती है। ह्वेनसांग ने पूर्वी दक्षिणापथ में बौद्ध धर्म को लुप्तप्राय देखा। इत्सिंग ने अपने समय में केवल चार संप्रदायों को भारत में प्रचारित पाया-महासांघिक, स्थविर, मूलसर्वास्तिवादी एवं सम्मतीय। विहारों में हीनयानी और महामानी मिले जुले थे। सिंध में बौद्ध धर्म अरब शासन के युग में क्रमशः क्षीण और लुप्त हुआ। गांधार और उड्डियान में वज्रयान और मंत्रयान के प्रभाव से बौद्ध धर्म का आठवीं शताब्दी में कुछ उज्जीवन ज्ञात होता है, किंतु **अलबरूनी** के समय तक तुर्की प्रभाव से वह ज्योति लुप्त हो गई थी। कश्मीर में उसका लोप वहाँ भी इसलाम के प्रभुत्व की स्थापना से ही मानना चाहिए। पश्चिमी एवं मध्य भारत में बौद्ध धर्म का लोप राजकीय उपेक्षा एवं ब्राह्मण तथा जैन धर्मों के प्रसार के कारण प्रतीत होता है। मध्यप्रदेश में गुप्तकाल से ही क्रमिक ह्रास देखा जा सकता है, जिसका कारण राजकीय पोषण का अभाव ही प्रतीत होता है। मगध और पूर्व देश में परम सौगत पाल नरेशों की छत्रछाया में बौद्ध धर्म और उसके शिक्षाकेंद्र नालंदा, विक्रमशिला, ओदंतपुरी अपनी ख्याति के चरम शिखर पर पहुँचे। इस प्रदेश में सद्धर्म का ह्रास तुर्की विजय के कारण हुआ। यह स्पष्ट है कि बौद्ध धर्म के ह्रास का मुख्य कारण उसका

अपने को लौकिक सामाजिक जीवन का अनिवार्य अंग न बना सकना था। इस कारण ऐसा प्रतीत होता है कि राजकीय उपेक्षा अथवा विरोध से विहारों के संकटग्रस्त होने पर उपासकों में सद्धर्म अनायास लुप्त होने लगता था। यह स्मरणीय है कि **उदयनाचार्य** के अनुसार ऐसा कोई संप्रदाय न था कि सांवृत्त कहकर भी वैदिक क्रियाओं के अनुष्ठान को स्वीकार न करता हो। उपासकों के लिए बौद्ध धर्म केवल शील अथवा ऐसी भक्ति के रूप में था, जिसे ब्राह्मण धर्म से मूलतः पृथक् कर सकना जनता के लिए उतना ही कठिन था, जितना शून्यता एवं नैरात्म्य के सिद्धांतों को समझ सकना। कदाचित् आजकल की कर्मकाडविमुख एवं बुद्धिवादिनी जनता के लिए शील, प्रज्ञा एवं समाधि का धर्म पहले की अपेक्षा अधिक उपयुक्त हो।

## *बुद्ध के समकालीन*

बुद्ध के प्रमुख गुरु थे- गुरु विश्वामित्र, अलारा, कलम, उद्दाका रामापुत्त, सूरज आजाद आदि

प्रमुख शिष्य थे- आनंद, अनिरुद्ध, महाकश्यप, रानी खेमा (महिला), महाप्रजापति (महिला), भद्रिका, भृगु, किम्बाल, देवदत्त, उपाली आदि।

प्रमुख प्रचारक- अंगुलिमाल, मिलिंद (यूनानी सम्राट), सम्राट अशोक, ह्वेन त्सांग, फा श्येन, ई, जिंग, हे चो, बोधिसत्व आदि।

**गुरु विश्वामित्र**–सिद्धार्थ ने गुरु विश्वामित्र के पास वेद और उपनिषद् तो पढ़े ही, राजकाज और युद्ध-विद्या की भी शिक्षा ली। कुश्ती, घुड़दौड़, तीर-कमान, रथ हांकने में कोई उसकी बराबरी नहीं कर पाता था।

**गुरु अलारा कलम और उद्दाका रामापुत्त**–ज्ञान की तलाश में सिद्धार्थ घूमते-घूमते अलारा कलम और उद्दाका रामापुत्त के पास पहुंचे। उनसे उन्होंने योग-साधना सीखी। कई माह तक योग करने के बाद भी जब ज्ञान की प्राप्ति नहीं हुई तो उन्होंने उरुवेला पहुंच कर वहां घोर तपस्या की। छः साल बीत गए तपस्या करते हुए। सिद्धार्थ की तपस्या सफल नहीं हुई। तब एक दिन कुछ स्त्रियां किसी नगर से लौटती हुई वहां से निकलीं, जहां सिद्धार्थ तपस्या कर रहे थे। उनका एक गीत सिद्धार्थ के कान में पड़ा- 'वीणा के तारों को ढीला मत छोड़ दो। ढीला छोड़ देने से उनका सुरीला स्वर नहीं निकलेगा। पर तारों को इतना कसो भी मत कि वे टूट जाएं। ' बात सिद्धार्थ को जंच गई। वह मान गए कि नियमित आहार-विहार से ही योग सिद्ध होता है। अति किसी बात की अच्छी

नहीं। किसी भी प्राप्ति के लिए मध्यम मार्ग ही ठीक होता है। बस फिर क्या था कुछ ही समय बाद ज्ञान प्राप्त हो गया।

**आनंद** – यह बुद्ध और देवदत्त के भाई थे और बुद्ध के दस सर्वश्रेष्ठ शिष्यों में से एक हैं। यह लगातार बीस वर्षों तक बुद्ध की संगत में रहे। इन्हें गुरु का सर्वप्रिय शिष्य माना जाता था। आनंद को बुद्ध के निर्वाण के पश्चात् प्रबोधन प्राप्त हुआ। वह अपनी स्मरण शक्ति के लिए प्रसिद्ध थे।

**महाकश्यप**–महाकश्यप मगध के ब्राह्मण थे, जो तथागत के नजदीकी शिष्य बन गए थे। इन्होंने प्रथम बौद्ध अधिवेशन की अध्यक्षता की थी।

**रानी खेमा**–रानी खेमा सिद्ध धर्मसंघिनी थीं। यह बीमबिसारा की रानी थीं और अति सुंदर थीं। आगे चलकर खेमा बौद्ध धर्म की अच्छी शिक्षिका बनीं।

**महाप्रजापति**–महाप्रजापति बुद्ध की माता महामाया की बहन थीं। इन दोनों ने राजा शुद्धोदन से शादी की थी। गौतम बुद्ध के जन्म के सात दिन पश्चात् महामाया की मृत्यु हो गई। तत्पश्चात् महाप्रजापति ने उनका अपने पुत्र जैसे पालन-पोषण किया। राजा शुद्धोदन की मृत्यु के बाद बौद्ध मठ में पहली महिला सदस्य के रूप में महाप्रजापिता को स्थान मिला था।

**मिलिंद**– मिलिंदा यूनानी राजा थे। ईसा की दूसरी सदी में इनका अफगानिस्तान और उत्तरी भारत पर राज था। बौद्ध भिक्षु नागसेना ने इन्हें बौद्ध धर्म की दीक्षा दी और इन्होंने बौद्ध धर्म को अपना लिया था।

**सम्राट अशोक**– सम्राट अशोक बौद्ध धर्म के अनुयायी और अखंड भारत के सम्राट थे। इन्होंने ईसा पूर्व 207 ईस्वी में मौर्य वंश की नींव को मजबूत किया था। अशोक ने कई वर्षों तक युद्ध करने के बाद बौद्ध धर्म अपनाया था। इसके बाद उन्होंने युद्ध का बहिष्कार किया और शिकार करने पर पाबंदी लगाई। बौद्ध धर्म का तीसरा अधिवेशन अशोक के राज्यकाल के 17वें साल में संपन्न हुआ।

सम्राट अशोक ने अपने पुत्र महेंद्र और पुत्री संघमित्र को धर्मप्रचार के लिए श्रीलंका भेजा। इनके द्वारा श्रीलंका के राजा तिष्य ने बौद्ध धर्म अपनाया और देवानामप्रिय की उपाधि धारण की, वहां 'महाविहार' नामक बौद्ध मठ की स्थापना की। यह देश आधुनिक युग में भी थेरवाद बौद्ध धर्म का गढ़ है।

**कनिष्क**–कुषाण राजा कनिष्क के विशाल साम्राज्य में विविध धर्मों के अनुयायी विभिन्न लोगों का निवास था। कनिष्क बौद्ध धर्म का अनुयायी था और बौद्ध इतिहास में उसका नाम अशोक के समान ही महत्त्व रखता है। आचार्य

अश्वघोष ने उसे बौद्ध धर्म में दीक्षित किया था। इस आचार्य को वह पाटलिपुत्र से अपने साथ लाया था, और इसी से उसने बौद्ध धर्म की दीक्षा ली थी।

**फाह्यान**—फाह्यान का जन्म चीन के 'वु-वंग' नामक स्थान पर हुआ था। उसने लगभग 399 ई. में अपने कुछ मित्रों 'हुई-चिंग', 'ताओंचेंग', 'हुई-मिंग', 'हुईवेई' के साथ भारत यात्रा प्रारम्भ की। फाह्यान की भारत यात्रा का उदेश्य बौद्ध हस्तलिपियों एवं बौद्ध स्मृतियों को खोजना था। फाह्यान बौद्ध धर्म का अनुयायी था, इसीलिए फाह्यान ने उन्हीं स्थानों के भ्रमण को महत्त्व दिया, जो बौद्ध धर्म से संबंधित थे।

**ह्वेन त्सांग**—भारत में ह्वेन त्सांग ने बुद्ध के जीवन से जुड़े सभी पवित्र स्थलों का भ्रमण किया और उन्होंने अपना अधिकांश समय नालंदा मठ में बिताया, जो बौद्ध शिक्षा का प्रमुख केंद्र था। यहां उन्होंने संस्कृत, बौद्ध दर्शन एवं भारतीय चिंतन में दक्षता हासिल करने के बाद अपना संपूर्ण जीवन बौद्ध धर्मग्रंथों के अनुवाद में लगा दिया। उसने लगभग 657 ग्रंथों का अनुवाद किया था और 520 पेटियों में उन्हें भारत से चीन ले गया था। । इस विशाल खंड के केवल छोटे से हिस्से (1330 अध्यायों में करीब 73 ग्रंथ) के ही अनुवाद में महायान के कुछ अत्यधिक महत्त्वपूर्ण ग्रंथ शामिल हैं।

## *पालि साहित्य*

बुद्ध की शिक्षाओं का ज्ञान हमें पालि त्रिपिटक से ही प्राप्त होता है।

त्रिपिटक (तिपिटक) बुद्ध धर्म का मुख्य ग्रन्थ है। यह पालिभाषा में लिखा गया है। यह ग्रन्थ बुद्ध के परिनिर्वाण के पश्चात् बुद्ध के द्वारा दिए गए उपदेशों को सूत्रबद्ध करने का सबसे वृहद् प्रयास है। बुद्ध के उपदेश को इस ग्रन्थ में सूत्र (सुत्त) के रूप में प्रस्तुत किया गया है। सूत्रों को वर्ग (वग्ग) में बांधा गया है। वग्ग को निकाय (सुत्तपिटक) में वा खण्ड में समाहित किया गया है। निकायौं को पिटक (अर्थः टोकरी) में एकीकृत किया गया है। इस प्रकार से तीन पिटक निर्मित हैं, जिन के संयोजन को त्रि-पिटक कहा जाता है।

पालिभाषा का त्रिपिटक थेरवादी (और नवयान) बुद्ध परम्परा में श्रीलंका, थाइलैंड, बर्मा, लाओस, कैम्बोडिया, भारत आदि राष्ट्र के बौद्ध धर्म अनुयायी पालना करते हैं। पालि के तिपिटक को संस्कृत में भी भाषान्तरण किया गया है, जिस को त्रिपिटक कहते हैं। संस्कृत का पूर्ण त्रिपिटक अभी अनुपलब्ध है। वर्तमान में संस्कृत त्रिपिटक प्रयोजन की जीवित परम्परा सिर्फ नेपाल के नेवार

जाति में उपलब्ध है। इस के अलावा तिब्बत, चीन, मंगोलिया, जापान, कोरिया, वियतनाम, मलेशिया, रुस आदि देश में संस्कृत मूल मन्त्र के साथ में स्थानीय भाषा में बौद्ध साहित्य परम्परा पालना करते है।

## *बुद्ध की शिक्षाएँ*

गौतम बुद्ध के महापरिनिर्वाण के बाद, बौद्ध धर्म के अलग-अलग संप्रदाय उपस्थित हो गये हैं, परंतु इन सब के बहुत से सिद्धांत मिलते हैं।

तथागत बुद्ध ने अपने अनुयायिओं को चार आर्यसत्य, अष्टांगिक मार्ग, दस पारमिता, पंचशील आदि शिक्षाओं को प्रदान किए हैं।

### *चार आर्य सत्य*

तथागत बुद्ध का पहला धर्मोपदेश, जो उन्होने अपने साथ के कुछ साधुओं को दिया था, इन चार आर्य सत्यों के बारे में था।

#### *1. दुःख*

इस दुनिया में दुःख है। जन्म में, बूढे होने में, बीमारी में, मौत में, प्रियतम से दूर होने में, नापसंद चीजों के साथ में, चाहत को न पाने में, सब में दुःख है।

#### *2. दुःख का कारण*

तृष्णा, या चाहत, दुःख का कारण है और फिर से सशरीर करके संसार को जारी रखती है।

**3. दुःख निरोध**–दुःख-निरोध के आठ साधन बताये गये हैं, जिन्हें 'अष्टांगिक मार्ग' कहा गया है।

तृष्णा से मुक्ति पाई जा सकती है।

#### *4. दुःख निरोध का मार्ग*

तृष्णा से मुक्ति अष्टांगिक मार्ग के अनुसार जीने से पाई जा सकती है।

## अष्टांगिक मार्ग

बौद्ध धर्म के अनुसार, चौथे आर्य सत्य का आर्य अष्टांग मार्ग है दुःख निरोध पाने का रास्ता। गौतम बुद्ध कहते थे कि चार आर्य सत्य की सत्यता का निश्चय करने के लिए इस मार्ग का अनुसरण करना चाहिए–

1. सम्यक् दृष्टि- वस्तुओं के यथार्थ स्वरूप को जानना ही सम्यक् दृष्टि है।
2. सम्यक् संकल्प- आसक्ति, द्वेष तथा हिंसा से मुक्त विचार रखना ही सम्यक् संकल्प है।
3. सम्यक् वाक- सदा सत्य तथा मृदु वाणी का प्रयोग करना ही सम्यक् वाक् है।
4. सम्यक् कर्मांत- इसका आशय अच्छे कर्मों में संलग्न होने तथा बुरे कर्मों के परित्याग से है।
5. सम्यक् आजीव- विशुद्ध रूप से सदाचरण से जीवन-यापन करना ही सम्यक् आजीव है।
6. सम्यक् व्यायाम- अकुशल धर्मों का त्याग तथा कुशल धर्मों का अनुसरण ही सम्यक् व्यायाम है।
7. सम्यक् स्मृति- इसका आशय वस्तुओं के वास्तविक स्वरूप के संबंध में सदैव जागरूक रहना है।
8. सम्यक् समाधि– चित्त की समुचित एकाग्रता ही सम्यक् समाधि है।

कुछ लोग आर्य अष्टांग मार्ग को पथ की तरह समझते है, जिसमें आगे बढ़ने के लिए, पिछले के स्तर को पाना आवश्यक है और लोगों को लगता है कि इस मार्ग के स्तर सब साथ-साथ पाए जाते है। मार्ग को तीन हिस्सों में वर्गीकृत किया जाता है–प्रज्ञा, शील और समाधि।

## *पंचशील*

भगवान बुद्ध ने अपने अनुयायिओं को पांच शीलों का पालन करने की शिक्षा दी हैं।

### *1. अहिंसा*

**पालि में–पाणातिपाता वेरमनी सीक्खापदम् सम्मादीयामी।**
**अर्थ–मैं प्राणि-हिंसा से विरत रहने की शिक्षा ग्रहण करता हूँ।**

### *2. अस्तेय*

पाली में–आदिन्नादाना वेरमणी सिक्खापदम् समादियामी।
अर्थ–मैं चोरी से विरत रहने की शिक्षा ग्रहण करता हूँ।

### *3. अपरिग्रह*

**पाली में–कामेसूमीच्छाचारा वेरमणाी सिक्खापदम् समादियामी।**
**अर्थ–मैं व्यभिचार से विरत रहने की शिक्षा ग्रहण करता हूँ।**

### *4. सत्य*

**पाली में–मुसावादा वेरमणाी सिक्खापदम् समादियामी।**
**अर्थ–मैं झूठ बोलने से विरत रहने की शिक्षा ग्रहण करता हूँ।**

### *5. सभी नशा से विरत*

पाली में–सुरामेरय मज्जपमादठटाना वेरमणाी सिक्खापदम् समादियामी।

अर्थ–मैं पक्की शराब (सुरा) कच्ची शराब (मेरय), नशीली चीजों (मज्जपमादठटाना) के सेवन से विरत रहने की शिक्षा ग्रहण करता हूँ।

## *बोधि*

गौतम बुद्ध से पाई गई ज्ञानता को बोधि कहते हैं। माना जाता है कि बोधि पाने के बाद ही संसार से छुटकारा पाया जा सकता है। सारी पारमिताओं (पूर्णताओं) की निष्पत्ति, चार आर्य सत्यों की पूरी समझ और कर्म के निरोध से ही बोधि पाई जा सकती है। इस समय, लोभ, दोष, मोह, अविद्या, तृष्णा और आत्मा में विश्वास सब गायब हो जाते है। बोधि के तीन स्तर होते है : श्रावकबोधि, प्रत्येकबोधि और सम्यकसंबोधि। सम्यकसंबोधि बौद्ध धर्म की सबसे उन्नत आदर्श स्थिति मानी जाती है।

गौतम बुद्ध के महापरिनिर्वाण के बाद, बौद्ध धर्म के अलग-अलग संप्रदाय उपस्थित हो गये हैं, परंतु इन सब के बहुत से सिद्धांत मिलते हैं। सभी बौद्ध सम्प्रदाय तथागत बुद्ध के मूल सिद्धांत ही मानते हैं।

## *प्रतीत्यसमुत्पाद*

प्रतीत्यसमुत्पाद का सिद्धांत कहता है कि कोई भी घटना केवल दूसरी घटनाओं के कारण ही एक जटिल कारण-परिणाम के जाल में विद्यमान होती है। प्राणियों के लिये, इसका अर्थ है कर्म और विपाक (कर्म के परिणाम) के अनुसार अनंत संसार का चक्र। क्योंकि सेब कुछ अनित्य और अनात्मं (बिना आत्मा के) होता है, कुछ भी सच में विद्यमान नहीं है। हर घटना मूलतः शून्य

होती है। परंतु, मानव, जिनके पास ज्ञान की शक्ति है, तृष्णा को, जो दु:ख का कारण है, त्यागकर, तृष्णा में नष्ट की हुई शक्ति को ज्ञान और ध्यान में बदलकर, निर्वाण पाई सकते हैं। तृष्णा शून्य जीवन केवल विपश्यना से संभव है1

### *क्षणिकवाद*

इस दुनिया में सब कुछ क्षणिक है और नश्वर है। कुछ भी स्थायी नहीं। परन्तु वैदिक मत से विरोध है।

### *अनात्मवाद*

आत्मा का अर्थ 'मैं' होता है। किन्तु, प्राणी शरीर और मन से बने हैं, जिसमें स्थायित्व नहीं है। क्षण-क्षण बदलाव होता है। इसलिए, 'मै' अर्थात् आत्मा नाम की कोई स्थायी चीज नहीं, जिसे लोग आत्मा समझते हैं, वो चेतना का अविच्छिन्न प्रवाह है। आत्मा का स्थान मन ने लिया है।

आत्मा होती है वह ना तो नष्ट होती है उत्पन्न, वह सदैव से थी है और रहेगी।

### *अनीश्वरवाद*

बुद्ध ने ब्रह्म-जाल सूत् में सृष्टि का निर्माण कैसे हुआ, ये बताया है। सृष्टि का निर्माण होना और नष्ट होना बार-बार होता है। ईश्वर या महाब्रह्मा सृष्टि का निर्माण नहीं करते क्योंकि दुनिया प्रतीत्यसमुत्पाद अर्थात् कार्यकरण-भाव के नियम पर चलती है। भगवान बुद्ध के अनुसार, मनुष्यों के दु:ख और सुख के लिए कर्म, जिम्मेदार है, ईश्वर या महाब्रह्म नहीं। पर अन्य जगह बुद्ध ने सर्वोच्च सत्य को अवर्णनीय कहा है।

### *शून्यतावाद*

शून्यता महायान बौद्ध संप्रदाय का प्रधान दर्शन है। वह अपने ही संप्रदाय के लोगों को महत्त्व देते हैं।

### *यथार्थवाद*

बौद्ध धर्म का मतलब निराशावाद नहीं है। दुख का मतलब निराशावाद नहीं है, लेकिन सापेक्षवाद और यथार्थवाद है। बुद्ध, धम्म और संघ बौद्ध

धर्म के तीन त्रिरत्ने हैं। भिक्षु, भिक्षुणी, उपसका और उपसिका संघ के चार अवयव हैं।

### *बोधिसत्व*

दस पारमिताओं का पूर्ण पालन करने वाला बोधिसत्व कहलाता है। बोधिसत्व जब दस बलों या भूमियों (मुदिता, विमला, दीप्ति, अर्चिष्मती, सुदुर्जया, अभिमुखी, दूरंगमा, अचल, साधुमती, धम्म-मेघा) को प्राप्त कर लेते हैं तब 'बुद्ध' कहलाते हैं। बुद्ध बनना ही बोधिसत्व के जीवन की पराकाष्ठा है। इस पहचान को बोधि (ज्ञान) नाम दिया गया है। कहा जाता है कि बुद्ध शाक्यमुनि केवल एक बुद्ध हैं - उनके पहले बहुत सारे थे और भविष्य में और होंगे। उनका कहना था कि कोई भी बुद्ध बन सकता है। अगर वह दस पारमिताओं का पूर्ण पालन करते हुए बोधिसत्व प्राप्त करे और बोधिसत्व के बाद दस बलों या भूमियों को प्राप्त करे। बौद्ध धर्म का अन्तिम लक्ष्य है– सम्पूर्ण मानव समाज से दु:ख का अंत। 'मैं केवल एक ही पदार्थ सिखाता हूँ - दु:ख है, दु:ख का कारण है, दु:ख का निरोध है, और दु:ख के निरोध का मार्ग है' (बुद्ध)। बौद्ध धर्म के अनुयायी अष्टांगिक मार्ग पर चलकर इन के अनुसार जीकर अज्ञानता और दु:ख से मुक्ति और निर्वाण पाने की कोशिश करते हैं।

### *सम्प्रदाय*

बौद्ध धर्म में संघ का बड़ा स्थान है। इस धर्म में बुद्ध, धम्म और संघ को 'त्रिरत्न' कहा जाता है। संघ के नियम के बारे में गौतम बुद्ध ने कहा था कि छोटे नियम भिक्षुगण परिवर्तन कर सकते है। उन के महापरिनिर्वाण पश्चात् संघ का आकार में व्यापक वृद्धि हुआ। इस वृद्धि के पश्चात् विभिन्न क्षेत्र, संस्कृति, सामाजिक अवस्था, दीक्षा, आदि के आधार पर भिन्न लोग बुद्ध धर्म से आबद्ध हुए और संघ का नियम धीरे-धीरे परिवर्तन होने लगा। साथ ही में अंगुत्तर निकाय के कालाम सुत्त में बुद्ध ने अपने अनुभव के आधार पर धर्म पालन करने की स्वतन्त्रता दी है। अत:, विनय के नियम में परिमार्जन-परिवर्तन, स्थानीय सांस्कृतिक-भाषिक पक्ष, व्यक्तिगत धर्म का स्वतन्त्रता, धर्म के निश्चित पक्ष में ज्यादा वा कम जोड़ आदि कारण से बुद्ध धर्म में विभिन्न सम्प्रदाय वा संघ में परिमार्जित हुए। वर्तमान में, इन संघ में प्रमुख सम्प्रदाय या पंथ थेरवाद, महायान

और वज्रयान है। भारत में बौद्ध धर्म का नवयान संप्रदाय है, जो पुर्णत शुद्ध, मानवतावादी और विज्ञानवादी है।

### *थेरवाद*

थेरवाद बुद्ध के मौलिक उपदेश ही मानता है।

श्रीलंका, थाईलैंड, म्यान्मार, कम्बोडिया, लाओस, बांग्लादेश, नेपाल आदि देशों में थेरवाद बौद्ध धर्म का प्रभाव हैं।

### *महायान*

महायान बुद्ध की वास्तविक शिक्षाओं का पालन नहीं करता।

बुद्ध के अलावा हजारों बोधिसत्व की पूजा करता है।

## बोधिसत्त्वयान

### *बोधिसत्त्वसूत्रयान*

*बोधिसत्त्वतन्त्रयान/वज्रयान*

महायान में बुद्ध की पूजा की जाती है।

चीन, जापान, उत्तर कोरिया, वियतनाम, दक्षिण कोरिया आदि देशों में प्रभाव हैं।

### *वज्रयान*

वज्रयान को तिब्बती तांत्रिक धर्म भी कहा जाता हैं।

भूटान में राष्ट्रधर्म

भूटान, तिब्बत और मंगोलिया में प्रभाव।

### *नवयान*

बुद्ध के मूल सिद्धांतों का अनुसरण।

महायान, वज्रयान, थेरवाद के कई शुद्ध सिद्धांत।

अंधविश्वास नहीं हैं,

विज्ञानवाद पर विश्वास,

भारत में (मुख्यत महाराष्ट्र में) प्रभाव।

## प्रमुख तीर्थ

भगवान बुद्ध के अनुयायिओं के लिए विश्व भर में पांच मुख्य तीर्थ मुख्य माने जाते हैं–

## धार्मिक स्थल

चार मुख्य स्थल
लुम्बिनी– बोध गया
सारनाथ– कुशीनगर
चार अन्य स्थल
श्रावस्ती– राजगीर
सनकिस्सा– वैशाली

## अन्य स्थल

पटना– गया
कौशाम्बी– मथुरा
कपिलवस्तु– देवदहा
केसरिया– पावा
नालंदा– वाराणसी
बाद के स्थल
साँची– रत्नागिरी
एल्लोरा– अजंता

## भरहुत

(1) **लुम्बिनी**–जहां भगवान बुद्ध का जन्म हुआ,
(2) **बोधगया**–जहां बुद्ध ने ज्ञान प्राप्त हुआ,
(3) **सारनाथ**–जहां से बुद्ध ने दिव्यज्ञान देना प्रारंभ किया,
(4) **कुशीनगर**–जहां बुद्ध का महापरिनिर्वाण हुआ,
(5) **दीक्षाभूमि, नागपुर**–जहां भारत में बौद्ध धर्म का पुनःस्थान हुआ।

## लुम्बिनी

यह स्थान नेपाल की तराई में नौतनवां रेलवे स्टेशन से 25 किलोमीटर और गोरखपुर-गोंडा लाइन के नौगढ़ स्टेशन से करीब 12 किलोमीटर दूर है। अब तो

नौगढ़ से लुम्बिनी तक पक्की सड़क भी बन गई है। ईसा पूर्व 563 में राजकुमार सिद्धार्थ गौतम (बुद्ध) का जन्म यहीं हुआ था। हालांकि, यहां के बुद्ध के समय के अधिकतर प्राचीन विहार नष्ट हो चुके हैं। केवल सम्राट अशोक का एक स्तंभ अवशेष के रूप में इस बात की गवाही देता है कि भगवान बुद्ध का जन्म यहां हुआ था। इस स्तंभ के अलावा एक समाधि स्तूप में बुद्ध की एक मूर्ति है। नेपाल सरकार ने भी यहां पर दो स्तूप और बनवाए हैं।

### *बोधगया*

करीब छह साल तक जगह-जगह और विभिन्न गुरुओं के पास भटकने के बाद भी बुद्ध को कहीं परम ज्ञान न मिला। इसके बाद वे गया पहुंचे। आखिर में उन्होंने प्रण लिया कि जब तक असली ज्ञान उपलब्ध नहीं होता, वह पीपल वृक्ष के नीचे से नहीं उठेंगे, चाहे उनके प्राण ही क्यों न निकल जाएं। इसके बाद करीब छह दिन तक दिन रात एक पीपल वृक्ष के नीचे भूखे-प्यासे तप किया। आखिर में उन्हें परम ज्ञान या बुद्धत्व उपलब्ध हुआ। सिद्धार्थ गौतम अब बुद्धत्व पाकर आकाश जैसे अनंत ज्ञानी हो चुके थे, जिस पीपल वृक्ष के नीचे वह बैठे, उसे बोधि वृक्ष यानी ज्ञान का वृक्ष कहा जाता है। वहीं गया को तक बोधगया (बुद्ध गया) के नाम से जाना जाता है।

### *सारनाथ*

बनारस छावनी स्टेशन से छह किलोमीटर, बनारस-सिटी स्टेशन से साढ़े तीन किलोमीटर और सड़क मार्ग से सारनाथ चार किलोमीटर दूर पड़ता है। यह पूर्वोत्तर रेलवे का स्टेशन है और बनारस से यहां जाने के लिए सवारी तांगा और रिक्शा आदि मिलते हैं। सारनाथ में बौद्ध-धर्मशाला है। यह बौद्ध तीर्थ है। लाखों की संख्या में बौद्ध अनुयायी और बौद्ध धर्म में रुचि रखने वाले लोग हर साल यहां पहुंचते हैं। बौद्ध अनुयायिओं के यहां हर साल आने का सबसे बड़ा कारण यह है कि भगवान बुद्ध ने अपना प्रथम उपदेश यहीं दिया था। सदियों पहले इसी स्थान से उन्होंने धर्म-चक्र-प्रवर्तन प्रारंभ किया था। बौद्ध अनुयायी सारनाथ के मिट्टी, पत्थर एवं कंकरों को भी पवित्र मानते हैं। सारनाथ की दर्शनीय वस्तुओं में अशोक का चतुर्मुख सिंह स्तंभ, भगवान बुद्ध का प्राचीन मंदिर, धामेक स्तूप, चौखंडी स्तूप, आदि शामिल हैं।

### *कुशीनगर*

कुशीनगर बौद्ध अनुयायियों का बहुत बड़ा पवित्र तीर्थ स्थल है। भगवान बुद्ध कुशीनगर में ही महापरिनिर्वाण को प्राप्त हुए। कुशीनगर के समीप हिरन्यवती नदी के समीप बुद्ध ने अपनी आखिरी सांस ली। रंभर स्तूप के निकट उनका अंतिम संस्कार किया गया। उत्तर प्रदेश के, जिला गोरखपुर से 55 किलोमीटर दूर कुशीनगर बौद्ध अनुयायियों के अलावा पर्यटन प्रेमियों के लिए भी खास आकर्षण का केंद्र है। 80 वर्ष की आयु में शरीर त्याग से पहले भारी संख्या में लोग बुद्ध से मिलने पहुंचे। माना जाता है कि 120 वर्षीय ब्राह्मण सुभद्र ने बुद्ध के वचनों से प्रभावित होकर संघ से जुड़ने की इच्छा जताई। माना जाता है कि सुभद्र आखिरी भिक्षु थे, जिन्हें बुद्ध ने दीक्षित किया।

### *दीक्षाभूमि*

दीक्षाभूमि, नागपुर महाराष्ट्र राज्य के नागपुर शहर में स्थित पवित्र एवं महत्त्वपूर्ण बौद्ध तीर्थ स्थल है। बौद्ध धर्म भारत में 12वीं शताब्धी तक रहा, बाद हिंदुओं और मुस्लिमों के हिंसक संघर्ष से शांतिवादी बौद्ध धर्म का प्रभाव कम होता गया और 12वीं शताब्दी में बौद्ध धर्म भारत से गायब हो गया। 12वीं से 20वीं शताब्दी तक हिमालयीन प्रदेशों के अलावा पूरे भारत में बौद्ध धर्म के अनुयायिओं की संख्या बहुत ही कम रही। लेकिन, दलितों के मसीहा डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकर ने 20वीं शताब्दी के मध्य में अशोक विजयादशमी के दिन 14 अक्टूबर, 1956 को पहले स्वयं अपनी पत्नी डॉ. सविता आंबेडकर के साथ बौद्ध धर्म की दीक्षा ली और फिर अपने 5, 00, 000 हिंदू दलित समर्थकों को बौद्ध धर्म की दीक्षा दी। बौद्ध धर्म की दीक्षा देने के लिए बाबासाहेब ने त्रिशरण, पंचशील एवं अपनी 22 प्रतिज्ञाएं अपने नव-बौद्धों को दी। अगले दिन नागपुर में 15 अक्टूबर को फिर बाबासाहेब ने 3, 00, 000 लोगों को धम्म दीक्षा देकर बौद्ध बनाया, तीसरे दिन 16 अक्टूबर को बाबासाहेब दीक्षा देने हेतु चंद्रपुर गये, वहां भी उन्होंने 3, 00, 000 लोगों को बौद्ध धम्म की दीक्षा दी। इस तरह सिर्फ तीन दिन में डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर ने 10, 00, 000 से अधिक लोगों को बौद्ध धर्म की दीक्षा देकर विश्व के बौद्धों को जनसंख्या 10 लाख बढ़ा दी। यह विश्व का सबसे बड़ा धार्मिक रूपांतरण या धर्मांतरण माना जाता है। बौद्ध विद्वान, बोधिसत्व डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकर ने भारत में बौद्ध धर्म का पुनःस्थान किया। एक सर्वेक्षण के अनुसार मार्च 1959 तक लगभग 1.5 से 2 करोड़ दलितों ने बौद्ध धर्म ग्रहण किया। 1956 से आज तक हर साल यहाँ देश और विदशों से

20 से 25 लाख बुद्ध और बाबासाहेब के बौद्ध अनुयायी दर्शन करने के लिए आते हैं। इस पवित्र एवं महत्त्वपूर्ण तीर्थ स्थल को महाराष्ट्र सरकार द्वारा 'अ' वर्ग पर्यटन एवं तीर्थ स्थल का दर्जा दिया गया है।

## *बौद्ध समुदाय*

संपूर्ण विश्व में लगभग 53 करोड़ बौद्ध हैं। इनमें से लगभग 70% महायानी बौद्ध और शेष 25% से 30% थेरावादी, नवयानी (भारतीय) और वज्रयानी बौद्ध है। महायान और थेरवाद (हीनयान), नवयान, वज्रयान के अतिरिक्त बौद्ध धर्म में इनके अन्य कई उपसंप्रदाय या उपवर्ग भी हैं, परन्तु इन का प्रभाव बहुत कम है। सबसे अधिक बौद्ध पूर्वी एशिया और दक्षिण पूर्व एशिया के देशों में रहते हैं। दक्षिण एशिया के दो देशों में भी बौद्ध धर्म बहुसंख्यक है। अमेरिका, ऑस्ट्रेलिया, अफ्रीका और यूरोप जैसे महाद्वीपों में भी बौद्ध रहते हैं। विश्व में लगभग 8 से अधिक देश ऐसे हैं जहां बौद्ध बहुसंख्यक या बहुमत में हैं। विश्व में कई देश ऐसे भी हैं जहां की बौद्ध जनसंख्या के बारे में कोई विश्वसनीय जानकारी उपलब्ध नहीं है।

## *जैन धर्म*

विश्व के सबसे प्राचीन दर्शन या धर्म, सनातन हिंदू में से निकला एक धर्म है। यह भारत की श्रमण परम्परा से निकला तथा इसके प्रवर्तक हैं 24 तीर्थंकर, जिनमें अंतिम व प्रमुख महावीर स्वामी हैं। जैन धर्म की अत्यंत प्राचीनता सिद्ध करने वाले अनेक उल्लेख साहित्य और विशेषकर पौराणिक साहित्यों में प्रचुर मात्रा में हैं। वैदिक दर्शन का प्रभाव भी इनके साहित्य में दिखाई पड़ता है। श्वेतांबर व दिगंबर जैन धर्म के दो सम्प्रदाय हैं, तथा इनके धर्मग्रंथ आगम, महापुराण, व तत्त्वार्थ सूत्र हैं। जैनों के धार्मिक स्थल, जिनालय या मंदिर कहलाते हैं।

'जिन परम्परा' का अर्थ है – 'जिन द्वारा प्रवर्तित दर्शन'। जो 'जिन' के अनुयायी हों उन्हें 'जैन' कहते हैं। 'जिन' शब्द बना है संस्कृत के 'जि' धातु से। श्जि' माने – जीतना। 'जिन' माने जीतने वाला, जिन्होंने अपने मन को जीत लिया, अपनी तन-मन-वाणी को जीत लिया और विशिष्ट आत्मज्ञान को पाकर सर्वज्ञ या पूर्णज्ञान प्राप्त किया उन आप्त पुरुष को, जिनेन्द्र या, जिन कहा जाता है'। जैन धर्म अर्थात् 'जिन' भगवान का धर्म।

अहिंसा जैन धर्म का मूल सिद्धान्त है। इसे बड़ी सख्ती से पालन किया जाता है। खानपान, आचार-नियम में विशेष रुप से देखा जा सकता है। जैन दर्शन

में भगवान से कण-कण स्वतंत्र है। इस सृष्टि का या किसी जीव का कोई कर्ताधर्ता नहीं है। सभी जीव अपने-अपने कर्मों का फल भोगते हैं। जैन दर्शन के भगवान नहीं कर्ता और भोगता नहीं माने जाते। जैन दर्शन में सृष्टिकर्ता को स्थान नहीं दिया गया है। जैन धर्म में अनेक शासन देवी-देवता हैं पर उनकी आराधना को कोई विशेष महत्त्व नहीं दिया जाता। जैन धर्म में तीर्थंकरों, जिन्हें, जिनदेव, जिनेंद्र या वीतराग भगवान कहा जाता है, इनकी आराधना का ही विशेष महत्त्व है। इन्हीं तीर्थंकरों का अनुसरण कर आत्मबोध, ज्ञान और तन और मन पर विजय पाने का प्रयास किया जाता है।

### *भगवान*

जैन ईश्वर को मानते हैं, जो सर्व शक्तिशाली त्रिलोक का ज्ञाता द्रष्टा है पर त्रिलोक का कर्ता नहीं। जैन धर्म में, जिन या अरिहन्त और सिद्ध को ईश्वर मानते हैं। अरिहंतों और केवलज्ञानी की आयुष्य पूर्ण होने पर जब वे जन्ममरण से मुक्त होकर निर्वाण को प्राप्त करते है तब उन्हें सिद्ध कहा जाता है। उन्हीं की आराधना करते हैं और उन्हीं के निमित्त मंदिर आदि बनवाते हैं। जैन ग्रन्थों के अनुसार अर्हत् देव ने संसार को द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा से अनादि बताया है। जगत् का न तो कोई कर्ता है और न जीवों को कोई सुख दु:ख देनेवाला है। अपने-अपने कर्मों के अनुसार जीव सुख दु:ख पाते हैं। जीव या आत्मा का मूल स्वभान शुद्ध, बुद्ध, सच्चिदानंदमय है, केवल पुद्गल या कर्म के आवरण से उसका मूल स्वरूप आच्छादित हो जाता है, जिस समय यह पौद्गलिक भार हट जाता है उस समय आत्मा परमात्मा की उच्च दशा को प्राप्त होता है। जैन मत 'स्याद्वाद' के नाम से भी प्रसिद्ध है। स्याद्वाद का अर्थ है अनेकांतवाद अर्थात् एक ही पदार्थ में नित्यत्व और अनित्यत्व, सादृश्य और विरुपत्व, सत्व और असत्व, अभिलाष्यत्व और अनभिलाष्यत्व आदि परस्पर भिन्न धर्मों का सापेक्ष स्वीकार। इस मत के अनुसार आकाश से लेकर दीपक पर्यंत समस्त पदार्थ नित्यत्व और अनित्यत्व आदि उभय धर्म युक्त है।

## तीर्थंकर

### *भगवान महावीर*

जैन धर्म में 24 तीर्थंकरों को माना जाता है। तीर्थंकर धर्म तीर्थ का प्रवर्तन करते है। इस काल के 24 तीर्थंकर है-

## *तीर्थंकर*

1. ऋषभदेव- इन्हें 'आदिनाथ' भी कहा जाता है
2. अजितनाथ
3. सम्भवनाथ
4. अभिनंदन जी
5. सुमतिनाथ जी
6. पद्ममप्रभु जी
7. सुपार्श्वनाथ जी
8. चंदाप्रभु जी
9. सुविधिनाथ- इन्हें 'पुष्पदन्त' भी कहा जाता है
10. शीतलनाथ जी
11. श्रेयांसनाथ
12. वासुपूज्य जी
13. विमलनाथ जी
14. अनंतनाथ जी
15. धर्मनाथ जी
16. शांतिनाथ
17. कुंथुनाथ
18. अरनाथ जी
19. मल्लिनाथ जी
20. मुनिसुव्रत जी
21. नमिनाथ जी
22. अरिष्टनेमि जी - इन्हें 'नेमिनाथ' भी कहा जाता है। जैन मान्यता में ये नारायण श्रीकृष्ण के चचेरे भाई थे।
23. पार्श्वनाथ
24. वर्धमान महावीर - इन्हें वर्धमान, सन्मति, वीर, अतिवीर भी कहा जाता है।

वैदिक दर्शन परम्परा में भी ऋषभदेव का विष्णु के 24 अवतारों में से एक के रूप में संस्तवन किया गया है। भागवत में अर्हन् राजा के रूप में इनका विस्तृत वर्णन है।

हिन्दूपुराण श्रीमद्भागवत के पाँचवें स्कन्ध के अनुसार मनु के पुत्र प्रियव्रत के पुत्र आग्नीध्र हुये, जिनके पुत्र राजा नाभि (जैन धर्म में नाभिराय नाम से उल्लिखित) थे। राजा नाभि के पुत्र ऋषभदेव हुये जो कि महान प्रतापी सम्राट हुये। भागवतपुराण अनुसार भगवान ऋषभदेव का विवाह इन्द्र की पुत्री जयन्ती से हुआ। इससे इनके सौ पुत्र उत्पन्न हुये। उनमें भरत चक्रवर्ती सबसे बड़े एवं गुणवान थे। उनसे छोटे कुशावर्त, इलावर्त, ब्रह्मावर्त, मलय, केतु, भद्रसेन, इन्द्रस्पृक, विदर्भ और कीकट ये नौ राजकुमार शेष नब्बे भाइयों से बड़े एवं श्रेष्ठ थे। उनसे छोटे कवि, हरि, अन्तरिक्ष, प्रबुद्ध, पिप्पलायन, आविर्होत्र, द्रुमिल, चमस और करभाजन थे।

विष्णु पुराण में श्री ऋषभदेव, मनुस्मृति में प्रथम, जिन (यानी ऋषभदेव) स्कंदपुराण, लिंगपुराण आदि में बाईसवें तीर्थंकर अरिष्टनेमि का उल्लेख आया है।

जैन नगर पुराण में कलयुग में एक जैन मुनि को भोजन कराने का फल सतयुग में दस ब्राह्मणों को भोजन कराने के बराबर कहा गया है। अंतिम दो तीर्थंकर, पार्श्वनाथ और महावीर स्वामी ऐतिहासिक पुरुष है। महावीर का जन्म ईसा से 540(कहीं पर 599) वर्ष पहले होना ग्रंथों से पाया जाया है। शेष के विषय में अनेक प्रकार की अलौकिक और प्रकृतिविरुद्ध कथाएँ हैं। ऋषभदेव की कथा भागवत आदि कई पुराणों में आई है और इनमें विष्णु के 24 अवतारों के रूप में की गई है। महाभारत के अनुशासन पर्व, महाभारत के शांतिपर्व, स्कन्ध पुराण, जैन प्रभास पुराण, जैन लंकावतार आदि अनेक ग्रंथो में अरिष्टनेमि का उल्लेख है।

## दर्शन

### *अहिंसा परमो धर्म*

रागद्वेषी शत्रुओं पर विजय पाने के कारण 'वर्धमान महावीर' की उपाधि 'जिन' थी। अतः उनके द्वारा प्रचारित धर्म 'जैन' कहलाता है। जैन धर्म में अहिंसा को परमधर्म माना गया है। सब जीव जीना चाहते हैं, मरना कोई नहीं चाहता, अतएव इस धर्म में प्राणिवध के त्याग का सर्वप्रथम उपदेश है। केवल प्राणों का ही वध नहीं, बल्कि दूसरों को पीड़ा पहुँचाने वाले असत्य भाषण को भी हिंसा का एक अंग बताया है। महावीर ने अपने भिक्षुओं को उपदेश देते हुए कहा है

कि उन्हें बोलते-चालते, उठते-बैठते, सोते और खाते-पीते सदा यत्नशील रहना चाहिए। अयत्नाचार पूर्वक कामभोगों में आसक्ति ही हिंसा है, इसलिये विकारों पर विजय पाना, इंद्रियों का दमन करना और अपनी समस्त वृत्तियों को संकुचित करने को जैनधर्म में सच्ची अहिंसा बताया है। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति में भी जीवन है, अतएव पृथ्वी आदि एकेंद्रिय जीवों की हिंसा का भी इस धर्म में निषेध है।

जैनधर्म का दूसरा महत्त्वपूर्ण सिद्धांत है कर्म। महावीर ने बार-बार कहा है कि जो जैसा अच्छा, बुरा कर्म करता है उसका फल अवश्य ही भोगना पड़ता है तथा मनुष्य चाहे जो प्राप्त कर सकता है, चाहे जो बन सकता है, इसलिये अपने भाग्य का विधाता वह स्वयं है। जैनधर्म में ईश्वर को जगत् का कर्ता नहीं माना गया, तप आदि सत्कर्मों द्वारा आत्मविकास की सर्वोच्च अवस्था को ही ईश्वर बताया है। यहाँ नित्य, एक अथवा मुक्त ईश्वर को अथवा अवतारवाद को स्वीकार नहीं किया गया। ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, अंतराय, आयु, नाम और गोत्र इन आठ कर्मों का नाश होने से जीव जब कर्म के बंधन से मुक्त हो जाता है तो वह ईश्वर बन जाता है तथा राग-द्वेष से मुक्त हो जाने के कारण वह सृष्टि के प्रपंच में नहीं पड़ता।

जैन धर्म के मुख्यत: दो सम्प्रदाय हैं श्वेताम्बर:उजला वस्त्र पहनने वाला)और दिगम्बर(नग्न रहने वाला)।

जैनधर्म में जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल नाम के छ: द्रव्य माने गए हैं। ये द्रव्य लोकाकाश में पाए जाते हैं, अलोकाकाश में केवल आकाश ही है। जीव, अजीव, आस्त्रव, बंध संवर, निर्जरा और मोक्ष ये सात तत्त्व हैं। इन तत्त्वों के श्रद्धान से सम्यग्दर्शन की प्राप्ति होती है। सम्यग्दर्शन के बाद सम्यग्ज्ञान और फिर व्रत, तप, संयम आदि के पालन करने से सम्यक्चारित्र उत्पन्न होता है। इन तीन रत्नों को मोक्ष का मार्ग बताया है। जैन सिद्धांत में रत्नत्रय की पूर्णता प्राप्त कर लेने पर मोक्ष की प्राप्ति होती है। ये 'रत्नत्रय ' हैं-सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान तथा सम्यक् चारित्र्य। मोक्ष होने पर जीव समस्त कर्मों के बंधन से मुक्त हो जाता है, और ऊर्ध्वगति होने के कारण वह लोक के अग्रभाग में सिद्धशिला पर अवस्थित हो जाता है। उसे अनंत दर्शन, अनंत ज्ञान, अनंत सुख और अनंत वीर्य की प्राप्ति होती है और वह अंतकाल तक वहाँ निवास करता है, वहाँ से लौटकर नहीं आता।

अनेकान्तवाद जैनधर्म का तीसरा मुख्य सिद्धांत है। इसे अहिंसा का ही व्यापक रूप समझना चाहिए। राग द्वेषजन्य संस्कारों के वशीभूत ने होकर दूसरे के दृष्टिबिंदु को ठीक-ठीक समझने का नाम अनेकांतवाद है। इससे मनुष्य सत्य के निकट पहुँच सकता है। इस सिद्धांत के अनुसार किसी भी मत या सिद्धांत को पूर्ण रूप से सत्य नहीं कहा जा सकता। प्रत्येक मत अपनी-अपनी परिस्थितयों और समस्याओं को लेकर उद्‌भूत हुआ है, अतएव प्रत्येक मत में अपनी-अपनी विशेषताएँ हैं। अनेकांतवादी इन सबका समन्वय करके आगे बढ़ता है। आगे चलकर जब इस सिद्धांत को तार्किक रूप दिया गया तो यह स्याद्वाद नाम से कहा जाने लगा तथा, 'स्यात् अस्ति', 'स्यात् नास्ति', 'स्यात् अस्ति नास्ति', श्स्यात् अवक्तव्य,' 'स्यात् अस्ति अवक्तव्य', 'स्यात् नास्ति अवक्तव्य' और 'स्यात् अस्ति नास्ति अवक्तव्य', इन सात भागों के कारण सप्तभंगी नाम से प्रसिद्ध हुआ।

पार्श्वनाथ के चार महाव्रत थे–

1.अहिंसा, 2.सत्य, 3.अस्तेय तथा 4.अपरिग्रह।

महावीर ने पाँचवा महाव्रत 'ब्रह्मचर्य' के रूप में भी स्वीकारा। जैन सिद्धांतों की संख्या 45 है, जिनमें 11 अंग हैं।

जैन सम्प्रदाय में पंचास्तिकायसार, समयसार और प्रवचनसार को 'नाटकत्रयी ' कहा जाता है।

जैन मत में 3 प्रमाण हैं-प्रत्यक्ष, अनुमान तथा आगम(आगम)।

## *आचार-विचार*

जैन धर्म में आत्मशुद्धि पर बल दिया गया है। आत्मशुद्धि प्राप्त करने के लिये जैन धर्म में देह-दमन और कष्टसहिष्णुता को मुख्य माना गया है। निग्रंथ और निष्परिग्रही होने के कारण तपस्वी महावीर नग्न अवस्था में विचरण किया करते थे। यह बाह्य तप भी अंतरंग शुद्धि के लिये ही किया जाता था। प्राचीन जैन सूत्रों में कहा गया है कि भले ही कोई नग्न अवस्था में रहे या एक-एक महीने उपवास करे, किंतु यदि उसके मन में माया है तो उसे सिद्धि मिलने वाली नहीं। जैन आचार-विचार के पालन करने को 'शूरों का मार्ग' कहा गया है। जैसे लोहे के चने चबाना, बालू का ग्रास भक्षण करना, समुद्र को भुजाओं से पार करना और तलवार की धार पर चलना दुस्साध्य है, वैसे ही निग्रंथ प्रवचन के आचरण को भी दुस्साध्य कहा गया है।

बौद्ध धर्म की भाँति जैन धर्म में भी जातिभेद को स्वीकार नहीं किया गया। प्राचीन जैन गथों में कहा गया है कि सच्चा ब्राह्मण वही है, जिसने राग, द्वेष और भय पर विजय प्राप्त की है और जो अपनी इंद्रियों पर निग्रह रखता है। जैन धर्म में अपने-अपने कर्मों के अनुसार ही ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र की कल्पना की गई है, किसी जाति विशेष में उत्पन्न होने से नहीं। महावीर ने अनेक म्लेच्छ, चोर, डाकू, मछुए, वेश्या और चांडालपुत्रों को जैन धर्म में दीक्षित किया था। इस प्रकार के अनेक कथानक जैन ग्रंथों में पाए जाते हैं।

जैन धर्म के सभी तीर्थंकर क्षत्रिय कुल में हुए थे। इससे मालूम होता है कि पूर्वकाल में जैन धर्म क्षत्रियों का धर्म था, लेकिन आजकल अधिकांश वैश्य लोग ही इसके अनुयायी हैं। वैसे दक्षिण भारत में सेतवाल आदि कितने ही जैन खेतीबारी का धंधा करते हैं। पंचमों में ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य इन तीनों वर्णों के धंधे करनेवाले लोग पाए जाते हैं, जिनसेन मठ (कोल्हापुर) के अनुयायियों को छोड़कर और किसी मठ के अनुयायी चतुर्थ नहीं कहे जाते। चतुर्थ लोग साधारणतया खेती और जमींदारी करते हैं। सतारा और बीजापुर, जिलों में कितने ही जैन धर्म के अनुयायी जुलाहे, छिपी, दर्जी, सुनार और कसेरे आदि का पेशा करते हैं।

## *सात तत्त्व*

जैन ग्रंथों में सात तत्त्वों का वर्णन मिलता हैं। यह हैं-

जीव- जैन दर्शन में आत्मा के लिए 'जीव' शब्द का प्रयोग किया गया हैं। आत्मा द्रव्य जो चैतन्यस्वरूप है,

अजीव- जड़ या की अचेतन द्रव्य को अजीव (पुद्गल) कहा जाता है,

आस्त्रव - पुद्गल कर्मों का आस्त्रव करना,

बन्ध- आत्मा से कर्म बन्धना,

संवर- कर्म बन्ध को रोकना,

निर्जरा- कर्मों को क्षय करना,

मोक्ष - जीवन व मरण के चक्र से मुक्ति को मोक्ष कहते हैं।

## *व्रत*

जैन धर्म में श्रावक और मुनि दोनों के लिए पाँच व्रत बताए गए हैं। तीर्थंकर आदि महापुरुष, जिनका पालन करते है, वह महाव्रत कहलाते हैं -

अहिंसा – किसी भी जीव को मन, वचन, काय से पीड़ा नहीं पहुँचाना। किसी जीव के प्राणों का घात नहीं करना।

सत्य – हित, मित, प्रिय वचन बोलना।

अस्तेय – बिना दी हुई वस्तु को ग्रहण नहीं करना।

ब्रह्मचर्य – मन, वचन, काय से मैथुन कर्म का त्याग करना।

अपरिग्रह– पदार्थों के प्रति ममत्वरूप परिणमन का बुद्धिपूर्वक त्याग।

मुनि इन व्रतों का सूक्ष्म रूप से पालन करते है, वही श्रावक स्थूल रूप से करते हैं।

## *नौ पदार्थ*

जैन ग्रंथों के अनुसार जीव और अजीव, यह दो मुख्य पदार्थ हैं। आस्त्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा, मोक्ष, पुण्य, पाप अजीव द्रव्य के भेद हैं।

## *छह द्रव्य*

छः शाश्वत द्रव्य

जैन धर्म के अनुसार लोक 6 द्रव्यों (substance) से बना है। यह 6 द्रव्य शाश्वत हैं अर्थात् इनको बनाया या मिटाया नहीं जा सकता। यह है जीव, पुद्गल, धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाश और काल।

## *त्रिरत्न*

सम्यक् दर्शन – सम्यक् दर्शन को प्रगताने के लिए तत्त्व निर्णय की साधना करनी चहिये। तत्त्व निर्णय – मैं इस शरीर आदि से भिन्न एक अखंड अविनाशी चैतन्य तत्त्व भगवान आत्मा हू, यह शरीरादी मैं नहीं और यह मेरे नहीं।

**सम्यक् ज्ञान** – सम्यक ज्ञान प्रगताने के लिए भेद ज्ञान की साधना करनी चहिये। भेद ज्ञान –, जिस जीव का, जिस दृव्य का, जिस समय जो कुछ भी होना है, वह उसकी तत्समय की योग्यतानुसार हो रहा है और होगा। उसे कोई ताल फेर बदल सकता नहीं।

**सम्यक् चारित्र** – सम्यक चारित्र की साधना के लिए वस्तु स्वरूप की साधना करना चहिये। सम्यक चरित्र का तात्पर्य नैतिक आचरण से है। पंचमहाव्रत का पालन ही शिक्षा है, जो चरित्र निर्माण करती है।

यह रत्नत्रय आत्मा को छोड़कर अन्य किसी द्रव्य में नहीं रहता। सम्यक्त्व के आठ अंग है–नि:शंकितत्त्व, नि:कांक्षितत्त्व, निर्विचिकित्सत्त्व, अमूढ़दृष्टित्व, उपबृंहन/उपगूहन, स्थितिकरण, प्रभावना, वात्सल्य।

### *चार कषाय*

क्रोध, मान, माया, लोभ यह चार कषाय है, जिनके कारण कर्मों का आस्त्रव होता है। इन चार कषाय को संयमित रखने के लिए माध्यस्थता, करुणा, प्रमोद, मैत्री भाव धारण करना चहिये।

### *चार गति*

चार गतियाँ, जिनमें संसारी जीव का जन्म मरण होता रहता है– देव गति, मनुष्य गति, तिर्यंच गति, नर्क गति। मोक्ष को पंचम गति भी कहा जाता है।

### *चार निक्षेप*

नाम निक्षेप, स्थापना निक्षेप, द्रव्य निक्षेप, भाव निक्षेप।

### *अहिंसा*

अहिंसा और जीव दया पर बहुत जोर दिया जाता है। सभी जैन शाकाहारी होते हैं। अहिंसा का पालन करना सभी मुनियों और श्रावकों का परम धर्म होता है। जैन धर्म का मुख्य वाक्य हि 'अहिंसा परमो धर्म' है।

### *अनेकान्तवाद*

अनेकान्त का अर्थ है- किसी भी विचार या वस्तु को अलग-अलग दृष्टिकोण से देखना, समझना, परखना और सम्यक भेद द्धारा सर्व हितकारी विचार या वस्तु को मानना ही अंनेकात है।

### *स्यादवाद*

स्यादवाद का अर्थ है- विभिन्न अपेक्षाओं से वस्तुगत अनेक धर्मों का प्रतिपादन।

### *मन्त्र*

जैन धर्म का परम पवित्र और अनादि मूलमंत्र है-

णमो अरिहंताणं। णमो सिद्धाणं। णमो आइरियाणं।

णमो उवज्झायाणं। णमो लोए सव्वसाहूणं।।

अर्थात् अरिहंतों को नमस्कार, सिद्धों को नमस्कार, आचार्यों को नमस्कार, उपाध्यायों को नमस्कार, सर्व साधुओं को नमस्कार। ये पंच परमेष्ठी हैं।

## *काल चक्र*

जैन कालचक्र दो भाग में विभाजित है–उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी।

जिस प्रकार काल हिंदुओं में मन्वंतर कल्प आदि में विभक्त है उसी प्रकार जैन में काल दो प्रकार का है– उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी। अवसर्पिणी काल में समयावधि, हर वस्तु का मान, आयु, बल इत्यादि घटता है, जबकि उत्सर्पिणी में समयावधि, हर वस्तु का मान और आयु, बल इत्यादि बढ़ता है, इन दोनों का कालमान दस क्रोड़ाक्रोड़ी सागरोपम का होता है अर्थात् एक समयचक्र बीस क्रोड़ाक्रोड़ी सागरोपम का होता है। प्रत्येक उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी में 24 तीर्थंकर, 12 चक्रवर्ती, 9 बलदेव, 9 नारायण और 9 प्रतिनारायण का जन्म होता है। इन्हें त्रिसठ शलाकापुरुष कहा जाता है। ऊपर जो 24 तीर्थंकर गिनाए गए हैं वे वर्तमान अवसर्पिणी के हैं। प्रत्येक उत्सिर्पिणी या अवसर्पिणी में नए-नए जीव तीर्थंकर हुआ करते हैं। इन्हीं तीर्थंकरों के उपदेशों को लेकर गणधर लोग द्वादश अंगो की रचना करते हैं। ये ही द्वादशांग जैन धर्म के मूल ग्रंथ माने जाते हैं।

## *इतिहास*

जैन धर्म कितना प्राचीन है, ठीक-ठीक नहीं कहा जा सकता। जैन ग्रंथों के अनुसार जैन धर्म अनादिकाल से है। महावीर स्वामी या वर्धमान ने ईसा से 468 वर्ष पूर्व निर्वाण प्राप्त किया था। इसी समय से पीछे कुछ लोग विशेषकर यूरोपियन विद्वान् जैन धर्म का प्रचलित होना मानते हैं। जैनों ने अपने ग्रंथों को आगम, पुराण आदि में विभक्त किया है। **प्रो. जेकोबी** आदि के आधुनिक अन्वेषणों के अनुसार यह सिद्ध किया गया है कि जैन धर्म बौद्ध धर्म से पहले का है। उदयगिरि, जूनागढ़ आदि के शिलालेखों से भी जैनमत की प्राचीनता पाई जाती है। हिन्दू ग्रन्थ, स्कन्द पुराण (अध्याय 37) के अनुसार: 'ऋषभदेव नाभिराज के पुत्र थे, ऋषभ के पुत्र भरत थे, और इनके ही नाम पर इस देश का नाम 'भारतवर्ष' पड़ा'।

भारतीय ज्योतिष में यूनानियों की शैली का प्रचार विक्रमीय संवत् से तीन सौ वर्ष पीछे हुआ। पर जैनों के मूल ग्रंथ अंगों में यवन ज्योतिष का कुछ भी आभास नहीं है, जिस प्रकार वेद संहिता में पंचवर्षात्मक युग है और कृत्तिका से नक्षत्रों की गणना है उसी प्रकार जैनों के अंग ग्रंथों में भी है। इससे उनकी प्राचीनता सिद्ध होती है।

## *भगवान महावीर के बाद*

भगवान महावीर के पश्चात् इस परम्परा में कई मुनि एवं आचार्य भी हुये है, जिनमें से प्रमुख हैं-

भगवान महावीर के पश्चात् 62 वर्ष में तीन केवली (527-465 B.C.),
आचार्य गौतम गणधर (607-515 B.C.),
आचार्य सुधर्मास्वामी (607-507 B.C.),
आचार्य जम्बूस्वामी (542-465 B.C.),
इसके पश्चात् 100 वर्षो में पाँच श्रुत केवली (465-365 B.C.),
आचार्य भद्रबाहु- अंतिम श्रुत केवली (433-357),
आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी (200A.D.),
आचार्य उमास्वामी (200A.D.),
आचार्य समन्तभद्र,
आचार्य पूज्यपाद (474-525),
आचार्य वीरसेन (790-825),
आचार्य, जिनसेन (800-880),
आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती।

## *सम्प्रदाय*

तीर्थंकर महावीर के समय तक अविछिन्न रही जैन परंपरा ईसा की तीसरी सदी में दो भागों में विभक्त हो गयी–दिगंबर और श्वेताम्बर। **मुनि प्रमाणसागर** जी ने जैनों के इस विभाजन पर अपनी रचना 'जैनधर्म और दर्शन' में विस्तार से लिखा है कि आचार्य भद्रबाहु ने अपने ज्ञान के बल पर जान लिया था कि उत्तर भारत में 12 वर्ष का भयंकर अकाल पड़ने वाला है इसलिए उन्होंने सभी साधुओं को निर्देश दिया कि इस भयानक अकाल से बचने के लिए दक्षिण भारत की ओर विहार करना चाहिए।

आचार्य भद्रबाहु के साथ हजारों जैन मुनि (निर्ग्रन्थ) दक्षिण की ओर, वर्तमान के तमिलनाडु और कर्नाटक की ओर, प्रस्थान कर गए और अपनी साधना में लगे रहे। परन्तु कुछ जैन साधु उत्तर भारत में ही रुक गए थे। अकाल के कारण यहाँ रुके हुए साधुओं का निर्वाह आगमानुरूप नहीं हो पाई रहा था इसलिए उन्होंने अपनी कई क्रियाएँ शिथिल कर लीं, जैसे कटि वस्त्र धारण करना, 7 घरों से भिक्षा ग्रहण करना, 14 उपकरण साथ में रखना आदि। 12 वर्ष बाद दक्षिण से लौट कर आये साधुओं ने ये सब देखा तो उन्होंने यहाँ रह रहे साधुओं को समझाया कि आप लोग पुनः तीर्थंकर महावीर की परम्परा को अपना लें पर साधु राजी नहीं हुए और तब जैन धर्म में दिगंबर और श्वेताम्बर दो सम्प्रदाय बन गए।

### *दिगम्बर*

दिगम्बर साधु (निर्ग्रन्थ) वस्त्र नहीं पहनते हैं, नग्न रहते हैं। दिगम्बर मत में तीर्थकरों की प्रतिमाएँ पूर्ण नग्न बनायी जाती हैं और उनका शृंगार नहीं किया है। दिगंबर समुदाय तीन भागों में विभक्त हैं।

तारणपंथ,
दिगम्बर तेरापन्थ,
बीसपंथ।

### *श्वेताम्बर*

श्वेताम्बर एवं साध्वियाँ और संन्यासी श्वेत वस्त्र पहनते हैं, तीर्थकरों की प्रतिमाएँ प्रतिमा पर धातु की आंख, कुंडल सहित बनायी जाती हैं और उनका शृंगार किया जाता है।

श्वेताम्बर भी दो भाग में विभक्त हैं–

देरावासी – ये तीर्थकरों की प्रतिमाएँ की पूजा करते हैं।

स्थानकवासी – ये मूर्ति पूजा नहीँ करते बल्कि साधु संतों को ही पूजते हैं।

स्थानकवासी के भी दो भाग हैं––

बाईस पंथी,
श्वेताम्बर तेरापन्थ।

## *धर्मग्रंथ*

दिगम्बर आचार्यों द्वारा समस्त जैन आगम ग्रंथों को चार भागो में बांटा गया है –

(1) प्रथमानुयोग,
(2) करनानुयोग,
(3) चरणानुयोग, और
(4) द्रव्यानुयोग।

तत्त्वार्थ सूत्र- सभी जैनों द्वारा स्वीकृत ग्रन्थ।

## *दिगम्बर ग्रन्थ*

प्रमुख जैन ग्रन्थ हैं –

षट्खण्डागम- मूल आगम ग्रन्थ।

आचार्य कुंद कुंद द्वारा विरचित ग्रन्थ- समयसार, प्रवचनसार, नियमसार, रयणसार,

रत्नकरण्ड श्रावकाचार,
पुरुषार्थ सिद्धयुपाय,
आदिपुराण,
इष्टोपदेश,
आप्तमीमांसा,
मूलाचार,
द्रव्यसंग्रह,
गोम्मटसार,
भगवती आराधना,
योगसार,
परमात्म प्रकाश,
श्रीरविषेणाचार्य कृत पद्मपुराण,
श्रेणिक चरित्र,
हरिवंश पुराण,
तिलोय पण्णत्ती,
तत्त्वार्थ सूत्र,
जिनसहस्त्र नाम स्त्रोत,

अष्टपाहुड,
आलाप पद्धति,
ज्ञानार्णव।

आचार्य तारण स्वामी विरचित–यमालारोहण, पंडित पूजा, कमलबत्तीसी, तारण तरण श्रावकाचार, न्यानसमुच्चय साथ, उपदेशशुद्ध सार, त्रिभंगीसार, चौबीस ठाणा, ममलपाहुड, षातिकाविशेष, सिद्धस्वभाव, सुन्नस्वभाव, छद्मस्थवाणी, नाममाला।

कार्तिकेयानुप्रेक्षा,
समयसार कलश,
हरिवंश पुराण,
पार्श्व पुराण,
उत्तर पुराण,
सर्वार्थ सिद्धि,
त्रिलोकसार,
दर्शनसार,
श्वेताम्बर ग्रन्थ,
कल्पसूत्र (जैन)।

**त्यौहार**

जैन धर्म के प्रमुख त्यौहार इस प्रकार हैं:

पंचकल्याणक,
महावीर जयंती,
पर्युषण,
ऋषिपंचमी,
जैन धर्म में दीपावली,
ज्ञान पंचमी,
दशलक्षण धर्म।

# 5

# महाजनपदों की शासकीय व्यवस्था

शासन संचालन की गतिविधि को शासन कहते हैं, या दूसरे शब्दों में कहें तो, राज करने या राज चलाने को शासन कहा जाता है। इसका संबंध उन निर्णयों से है, जो उम्मीदों को परिभाषित करते हैं, शक्ति देते हैं, या प्रदर्शन को प्रमाणित करते हैं। यह एक अलग प्रक्रिया भी हो सकती है या प्रबंधन अथवा नेतृत्व प्रक्रिया का एक खास हिस्सा भी हो सकती है। कभी-कभी लोग इन प्रक्रियाओं और व्यवस्थाओं के संचालन के लिए सरकार की स्थापना करते हैं।

किसी कारोबार अथवा गैर-लाभकारी संगठन के सन्दर्भ में, शासन का तात्पर्य अविरुद्ध प्रबंधन, एकीकृत नीतियों, मार्गदर्शन, प्रक्रियाओं और किसी दिए गए क्षेत्र के निर्णायक-अधिकारों से संबंधित है। उदाहरण के लिए, कॉर्पोरेट स्तर पर प्रबंधन के लिए गोपनीयता, आंतरिक निवेश, तथा आंकड़ों के प्रयोग संबंधी नीतियाँ बनाना शामिल हो सकता है।

अगर सरकार और शासन शब्दों में अंतर किया जाए, तो जो निकलकर सामने आएगा वो यह है कि एक सरकार जो करती है वही शासन है। यह कोई भी भू-राजनीतिक सरकार (राष्ट्र-राज्य), कॉर्पोरेट सरकार (कारोबारी संस्था), सामाजिक-राजनीतिक सरकार (जाति, परिवार इत्यादि) या किसी भी अन्य प्रकार की सरकार हो सकती है। लेकिन शासन शक्ति और नीति के प्रबंधन की गतिज प्रक्रिया है, जबकि सरकार वह माध्यम (आमतौर पर सामूहिक) है, जो इस प्रक्रिया को अंजाम देती है। वैसे सरकार शब्द का इस्तेमाल शासन के

पर्यायवाची शब्द के तौर पर भी किया जाता है, जैसा कि कनाडाई स्लोगन के तहत 'शांति, व्यवस्था और अच्छी सरकार' है।

## शब्द की उत्पत्ति

शासन शब्द यूनानी क्रिया कुबेरनाओ से लिया गया है, जिसका मतलब परिचालन है और इसे पहली बार प्लेटो ने सांकेतिक रूप से इस्तेमाल किया था। फिर यह शब्द लैटिन भाषा में प्रसारित हुआ और वहां से कई भाषाओं में पहुंच गया।

## प्रक्रियाएं और शासन

एक प्रक्रिया के रूप में, शासन किसी भी आकार के संगठन में काम कर सकता है– एक अकेले व्यक्ति से लेकर पूरी मानव जाति तक और यह किसी भी उद्देश्य के लिए काम कर सकता है, चाहे वह अच्छा हो या बुरा और फायदे के लिए हो अथवा नहीं। वैसे शासन का तर्कसंगत या बुद्धिसंगत उद्देश्य (कभी-कभी दूसरों की ओर से) तो यह होना चाहिए कि कोई संगठन खराब परिस्थितियों से बचते हुए सार्थक नतीजे देने की कोशिश करे।

जो शासित होते हैं उनकी तरफ से बात करें, तो नैतिक और प्राकृतिक रूप से शासन का उद्देश्य संभवत: उन्हें अवांछनीय पैटर्न से परहेज योग्य शासन व्यवस्था मुहैया कराना होना चाहिए। जाहिर है आदर्श उद्देश्य बिना बुरे के अच्छे पैटर्न के लिए आश्वस्त किया जाना होना चाहिए। एक सरकार शासन करने वाली आपस में जुड़ी विभिन्न अवस्थाओं से मिलकर बनी होती है, जो अपनी शक्तियों का इस्तेमाल करती हैं, विशेषकर बल-आधारित शक्तियों का।

इसी विचार को आगे बढ़ाएं, तो एक अच्छी सरकार में बलपूर्वक सत्ता का इस्तेमाल करने वाले कई अंतर-संबंधित पद शामिल हो सकते हैं, जो अपेक्षाओं को परिभाषित, शक्ति प्रदान करने वाले और प्रदर्शन की पुष्टि करने वाले निर्णयों द्वारा शासित व्यक्तिओं के लिए अवांछित परिस्थितियों से बचते हुए अच्छे परिणामों का आश्वासन देते हैं।

राजनीति शासन को संचालित करने का एक माध्यम है। उदाहरण के लिए, राजनीतिक गतिविधियों द्वारा लोग अपनी आकांक्षाओं का चयन कर सकते हैं, राजनीतिक गतिविधि के माध्यम से वे शक्ति प्रदान कर सकते हैं और राजनीतिक व्यवहार से वे प्रदर्शन को परख सकते हैं।

इस तरह शासन की कल्पना कर कोई व्यक्ति इस अवधारणा को राज्यों, निगमों, गैर-लाभकारी, गैर-सरकारी संगठनों, साझेदारियों और दूसरी संस्थाओं, परियोजना-दलों या किसी खास उद्देश्य वाली गतिविधि में संलग्न लोगों पर लागू कर सकता है।

## विभिन्न परिभाषाएं

विश्व बैंक ने शासन को कुछ इस तरह परिभाषित किया है

समाज की समस्याओं और मामलों के प्रबंधन के लिए राजनीतिक अधिकार और संस्थागत संसाधनों का इस्तेमाल किया जाना शासन है।

विश्व बैंक की द वर्ल्डवाइड गवर्नेंस इंडिकेटर्स परियोजना शासन को कुछ इस तरह से परिभाषित करती है–

किसी देश में परंपराएं और संस्थाएं, जिन अधिकारों से संचालित होती हैं। यहां उन प्रक्रियाओं को शामिल किया जाता है, जिनसे सरकारों का चयन, निगरानी और परिवर्तन किया जाता है, प्रभावी ढंग से अच्छी नीतियां बनाना और उन्हें लागू करने की सरकार की क्षमता, साथ ही नागरिकों का सम्मान और उनके बीच आर्थिक व सामाजिक मेल-मिलाप के लिए संस्थाएं तैयार करना।

शासन की एक वैकल्पिक परिभाषा कुछ इस तरह हो सकती है–

संस्थाओं, प्राधिकारों के ढांचे का इस्तेमाल और यहां तक कि संसाधनों को आवंटित करने की साझेदारी और समाज या अर्थव्यवस्था में गतिविधियों को संचालित या नियंत्रित करने को शासन कहा जा सकता है।

अंग्रेजी भाषी व्यक्ति कभी-कभी शासन शब्द को सरकार शब्द से भ्रमित करते हैं।

दक्षिणी अमेरिका में संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम के तहत स्थानीय शासन के लिए चलाई जा रही क्षेत्रीय परियोजना के मुताबिक:–

शासन को इस तरह परिभाषित किया गया है कि यह राजनीतिक प्रक्रिया के वे नियम हैं, जिनसे लोगों के बीच मतभेदों को खत्म किया जाता है और फैसला (वैधता) लिया जाता है। इसका इस तरह से भी वर्णन किया गया है कि संस्थाएं सही तरीके से कार्य करें और लोग उन्हें स्वीकार करें (तर्कसंगत)। और इसका इस्तेमाल सरकार की क्षमता के आह्वान और लोकतांत्रिक तरीके से बहुमत की उपलब्धि के तौर पर भी किया गया है (सहभागिता)।

## राज्य और राजनीति

कुछ लोग शासन और राजनीति की अवधारणाओं में स्पष्ट अंतर का सुझाव देते हैं। राजनीति में वे प्रक्रियाएं शामिल होती हैं, जिनसे लोगों का एक समूह शुरुआत में विभिन्न मतों और स्वार्थों के साथ किसी सामूहिक फैसले पर पहुंचता है, जो आमतौर पर पूरे समूह के लिए जरूरी होता है और, जिसे सार्वजनिक नीति के तौर पर लागू किया जाता है। वहीं दूसरी ओर शासन इसकी विरोधी चीजों के बजाए शासन करने वाले प्रशासनिक और क्रिया-मूलक तत्त्वों के बारे में है। राजनीति और प्रशासन के बीच पारंपरिक अलगाव को लेकर इस तरह तर्क की संभावना हमेशा ही बनी रहती है। वर्तमान में शासन, जिस तरह से व्यवहार और नीति में है, वे कभी-कभी इस भेद पर सवाल खड़े करते हैं, जो यह बताता है कि शासन और राजनीति दोनों में ही सत्ता के पहलू शामिल हैं।

सामान्य तौर पर शासन तीन बड़े तरीकों से होता है–

पब्लिक-प्राइवेट पार्टनरशिप के नेटवर्कों को शामिल कर या सामुदायिक संगठनों की साझेदारी से,

बाजार प्रक्रियाओं के इस्तेमाल से जहां सरकार के नियमों के तहत काम करते हुए बाजार की प्रतियोगी नीतियों से संसाधनों का आवंटन होता है,

टॉप-डाउन पद्धति के माध्यम से, जिसमें मुख्य रूप से सरकारें और राज्य के नौकरशाह शामिल होते हैं।

शासन के ये तरीके अक्सर वर्गीकरण, बाजार और नेटवर्कों में दिखते हैं।

### *कॉर्पोरेट संगठन*

कार्पोरेट संगठन शासन शब्द का प्रयोग निम्न दोनों बातों के लिए करते हैं–

कानून और नियम (नियमों) जो उस मामले में लागू होते हैं,

एक तरीके से, जिसमें बोर्ड्स या उनके जैसी दूसरी संस्थाओं को निगम निर्देश देते हैं।

### *निष्पक्ष शासन*

एक निष्पक्ष शासन का तात्पर्य एक ऐसी व्यवस्था से है जहां इस तरह काम होता है, जिसमें लोकतंत्र की भावना के तहत अधिकारियों को हितग्राहियों के अधिकारों और हितों की रक्षा करने में आसानी हो।

## शासन के प्रकार

### *वैश्विक शासन*

शासन के पारंपरिक अर्थ के विपरीत, **जेम्स रोसेनाओ** जैसे कुछ लेखकों ने एक सर्वव्यापी राजनीतिक सत्ता के अभाव में अन्योन्याश्रित संबंधों के नियमों को निरूपित करने के लिए 'वैश्विक शासन' शब्द का प्रयोग किया है। इसके सबसे अच्छे उदाहरण को अंतरराष्ट्रीय प्रणाली या स्वतंत्र राज्यों के बीच के संबंधों में देखा जा सकता है। वैसे इस शब्द का इस्तेमाल वहां किया जा सकता है, जहां समान अधिकार वाले स्वतंत्र लोग कोई नियमित संबंध बनाना चाहते हों।

### *कार्पोरेट शासन*

कार्पोरेट शासन में वे प्रक्रियायें, नियम, नीतियां, कानून और संस्थायें शामिल होती हैं, जो लोगों द्वारा किसी कंपनी को चलाने, व्यवस्थित रखने या नियंत्रण को प्रभावित करती हैं। कार्पोरेट शासन में सभी संबंधित व्यक्तिओं (स्टेकहोल्डर्स) के बीच के संबंध और कार्पोरेट लक्ष्य भी शामिल होते हैं। इसके प्रमुख कर्ताओं में शेयरधारक, प्रबंधन और निदेशक मंडल शामिल हैं। अन्य हितधारकों में कर्मचारी, आपूर्तिकर्ता, ग्राहक, बैंक और दूसरे देनदार, नियामक, पर्यावरण और बड़े पैमाने पर समुदाय शामिल हैं।

'कार्पोरेट शासन' शब्द का पहली बार प्रलेखित इस्तेमाल **रिचर्ड ईल्स** (1960, पृष्ठ 108) ने 'कार्पोरेट व्यवस्था की बनावट और कार्य' को दर्शाने के लिए किया था। हालांकि 'कार्पोरेट सरकार' की अवधारणा काफी पुरानी है और 20वीं सदी की शुरुआत में वित्तीय पाठ्यपुस्तकों (बेच्ट, बॉल्टन, रोएल 2004) में इसका इस्तेमाल हो चुका था। ये उत्पत्तियां कार्पोरेट शासन के विभिन्न हितग्राहियों की परिभाषा का समर्थन करती हैं।

### *परियोजना शासन*

उद्योग (खासकर सूचना प्रौद्योगिकी (आईटी) क्षेत्र में) में शासन शब्द का इस्तेमाल उन प्रक्रियाओं के वर्णन के लिए होता है, जिनकी मौजूदगी एक परियोजना की कामयाबी के लिए आवश्यक होती है।

### *सूचना प्रौद्योगिकी शासन*

आईटी शासन मुख्य रूप से बिजनेस फोकस और आईटी प्रबंधन के बीच संबंधों पर काम करता है। स्पष्ट शासन का लक्ष्य निवेश को आश्वस्त करना है, जिससे कारोबारी क्षमता पैदा हो और आईटी परियोजनाओं के साथ जुड़े खतरे भी कम किए जा सकें।

### *सहभागितापूर्ण शासन*

सहभागितापूर्ण शासन राज्य के साथ-साथ शासन प्रक्रिया में नागरिकों की भागीदारी के माध्यम से लोकतांत्रिक क्रियाओं को मजबूत बनाने पर केंद्रित है। विचार यह है कि नागरिकों को सार्वजनिक तौर पर लिए जाने वाले फैसलों में ज्यादा और सीधी भूमिका निभानी चाहिए या फिर कम से कम राजनीतिक मुद्दों से और गहराई से जुड़ना चाहिए। सरकारी अधिकारियों को भी इस तरह की गतिविधियों के प्रति ज्यादा उत्तरदायी होना चाहिए। व्यवहार में सहभागितापूर्ण शासन में सीधे तौर पर शामिल होकर नागरिक मतदाता या निगरानी रखने वाले के तौर पर अपनी भूमिका निभा सकते हैं।

### *गैर-लाभकारी शासन*

गैर-लाभकारी शासन मुख्य रूप से बोर्ड ऑफ ट्रस्टी (जिन्हें कभी-कभार निदेशक भी कहा जाता है) द्वारा जनता के स्पष्ट विश्वास पर अपने अधिकार का इस्तेमाल करने संबंधी, जिम्मेदारी पर केंद्रित होताय ऐसा माना जाता है कि जनता का यह विश्वास संगठन के मिशन तथा उसके द्वारा सेवित लोगों के बीच मौजूद रहता है।

शासन को मापना स्वाभाविक रूप से एक विवादास्पद और राजनीतिक कार्य है। इसलिए बाहरी आकलन, साथियों के आकलन और खुद के आकलन के बीच इस मामले में स्पष्ट भेद किया जाता है। बाहरी आकलन के उदाहरण डोनर असेसमेंट या अंतर्राष्ट्रीय गैर-सरकारी संगठनों द्वारा किए गए तुलनात्मक आकलन के सूचकांक हो सकते हैं। साथियों के आकलन का एक उदाहरण अफ्रीकन पीयर रिव्यू मेकेनिज्म हो सकता है। देशों के आकलन, जिसकी अगुवाई सरकार, नागरिक समाज, अध्ययनकर्ताओं और या दूसरे लाभकारियों द्वारा देश को लेकर किए जाने वाले आकलन आत्म-आकलन के उदाहरण हो सकते हैं।

इन कोशिशों में से एक अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर शासन को तुलनात्मक रूप से मापने के तरीके को इजाद करना है और बाहरी आकलन का एक उदाहरण विश्व बैंक के सदस्यों और विश्व बैंक संस्थान द्वारा विकसित वर्ल्डवाइड गवर्नेंस इंडिकेटर्स प्रोजेक्ट है। प्रोजेक्ट रिपोर्ट में 200 से ज्यादा देशों के शासन की आवाज और जवाबदेही, राजनीतिक स्थिरता और हिंसा में कमी, सरकार की प्रभावशीलता, नियामक की गुणवत्ता, कानून का शासन और भ्रष्टाचार पर नियंत्रण जैसे छह अलग-अलग आयामों का संपूर्ण और व्यक्तिगत सूचकांक शामिल है। व्यापक स्तर पर देशों में किए गए इस वर्ल्डवाइड गवर्नेंस इंडिकेटर्स की मदद के लिए विश्व बैंक संस्थान ने वर्ल्ड बैंक गवर्नेंस सर्वे विकसित किया है, जो कि देश के स्तर पर शासन के आकलन की पद्धति है, जो माइक्रो या सब-नैशनल स्तर पर काम करती है और देश के नागरिकों, कारोबारी लोग और सार्वजनिक क्षेत्र के कर्मचारियों से प्राप्त सूचनाओं का इस्तेमाल शासन की खामियों का निदान करने और भ्रष्टाचार से मुकाबला करने के ठोस उपाय भी सुझाती है।

एक नया वर्ल्ड गवर्नेंस इंडेक्स (WGI) विकसित किया गया है और इसमें सुधार के लिए इसे लोगों की भागीदारी के लिए खुला रखा गया है। WGI का विकास हासिल करने के लिए संकेतकों और समग्र सूचकांकों के रूप में निम्नलिखित क्षेत्रों का चयन किया गया है– शांति और सुरक्षा, कानून का शासन, मानवाधिकार और भागीदारी, सतत विकास और मानव विकास।

इसके अतिरिक्त 2009 में बर्टेल्समैन फाउंडेशन ने सस्टेनेबल गवर्नेंस इंडिकेटर्स (SGI) प्रकाशित किया था, जो कि ऑर्गनाइजेशन फॉर इकोनॉमिक को-ऑपरेशन एंड डेवलपमेंट (OECD) देशों में व्यवस्थित तरीके से सुधार की जरूरत और सुधार की क्षमता की माप करता है। यह परियोजना इस बात की जांच करती है कि सरकारें किस हद तक समाज को भविष्य की चुनौतियों से निपटने के लिए पूरी तरह तैयार करने और उनके उज्ज्वल भविष्य को सुनिश्चित करने वाले प्रभावी सुधारों की पहचान करके उन्हें निरूपित तथा कार्यान्वित करती हैं।

## राष्ट्रों के नेतृत्व में किये गए आकलन
## राजनीतिक प्रणालियां और पदाधिकारी वर्ग

प्राचीन भारत में प्रशासनिक तन्त्र एवं पदाधिकारियों स्वरूप और प्रवृत्तियों के परीक्षण के पूर्व उस काल में प्रचलित शासन प्रणालियों का सर्वेक्षण आवश्यक है। छठी शताब्दी ई. पू. तक उत्तर भारत में अनेक बड़े छोटे

जनपद का अस्तित्त्व मिलता है, जिनमें से कुछ महाजनपद के रूप में स्थापित थे। महाजनपदों में अधिकांश में राजतन्त्रीय अथवा नृपतंत्री प्रणाली का प्रचलन था, और कुछ गणों के महासंघों के रूप में भी ज्ञात थे। उदाहरण के लिए वज्जि और मल्ल गणों के संघ प्रतीत होते है। जबकि कौसल, मगध, जैसे महाजनपद स्पष्टत: नृपतंत्रीय प्रणाली आधारित थे। कुछ छोटे या शक्तिहीन हो चुके राज्य या गण राज्य किसी बड़े महाजनपद की सम्प्रभुता स्वीकार करते भी दृष्टिगत होते हैं। भले ही उन्हें अपनी शासकीय स्वायत्ता प्राप्त रही हो। इसके उदाहरण शाक्य, कोलीय जैसे गण और काशी जैसे जनपद माने जा सकते है। इन समस्त छोटे-बड़े राज्यों या महाजनपदों में किसी एक प्रकार के प्रशासनिक तंत्र की कल्पना नहीं जा सकती है, और नहीं किसी एक रुपीय शासन प्रणाली की परन्तु यह अवश्य कि छठी शताब्दी ई. पू. तक राज्य शासन अपना रूप ले चुका था। और अब वह किसी जन या गण सीमित और आत्म केन्द्रीय व्यवस्था के रूप में नहीं रह गया था। वैदिक ग्रन्थों में ही राज्य और राजा के लिए भिन्न-भिन्न प्रकार के सम्बोध और विशेषण प्रयुक्त होते दिखाई देते हैं। राज्यों के लिए भोज्य राज्य, वैराज्य, द्वैय राज्य तथा राजाओं के लिए राजा, अधिराट, सम्राट, स्वराज, विराट, पुरुष मेध, सर्वराट(राधाकुमुद मुखर्जी - चन्द्रगुप्त और उसका काल पृ. 14) आदि शब्द आते है। सामान्यत: ये सभी शब्द नृपतंत्रीय व्यवस्था के विकास के सूचक है। परन्तु कतिपय राज्यों में कुलीन तंत्रीय, अभिजातीय और द्विराज्यीय प्रणाली के अस्तित्त्व के संकेत भी मिलते है।

निसंदेह वैदिक कालीन जन आधारित अथवा जनविशेष विषय पर निर्भर राज्य व्यवस्था का लोप हो चला था। उत्पादन की नई प्रणाली और उसके सम्बन्धों के नए स्वरूप के साथ विकसित हो रही सामाजिक जटिलताओं के नियन्त्रण के लिए राज्य व्यवस्था क्रमश: एक अधिक शक्तिशाली संस्था के रूप में स्थापित हो रही थी। विस्तृत हो रहे राज्य क्षेत्र में केन्द्रीय सत्ता और शासन की भूमिका नये प्रकार के प्रशासनिक तन्त्र को उत्प्रेरित कर रही थी। जो शासक अपने संकुचित जन आधार से आगे निकल कर वृहत्तर क्षेत्र का स्वामी बनने की शक्ति रखता था, उसके साथ उसकी प्रजा गण के सम्बन्ध का भी नया रूप निर्मित हो रहा था। इस दृष्टि से छठीं शताब्दी ईसा पूर्व और इसके बाद के काल में स्थापित हो रही शासन प्रणालियों और उसके प्रशासनिक तन्त्र को विवेचत कारण अपेक्षित होगा।

## *राजतंत्रीय शासन प्रणाली*

प्राचीन भारतीय शासन व्यवस्था में एक राज अर्थात् नृपतंत्र के उदाहरण अधिक देखने को मिलते हैं। किन्तु इसका आरम्भ कब से माना जाये ? प्राचीन साहित्य में नृपतंत्र की उत्पत्ति के अलग-अलग अवधारणए सामने आती है। ब्राह्मण ग्रंथों में जहाँ देव-असुर संघर्ष नृपतंत्र के उदय का कारण लगता है (ऐतरेय ब्राह्मण 1,4, तैतरीय ब्राह्मण 2,2,7,2, जैमिनी ब्राह्मण 152), वहीं महाभारत में राग-द्वेष से दु:खी जनसमूह ब्रम्हा से स्वयंभू मनु को राजा के रूप में पाने की प्रार्थना करता नजर आता है (महाभारत - शांतिपर्व अध्याय 58 श्लोक 13, 14, 15, अध्याय 56 श्लोक 14 -17, 33 -34)। कौटिल्य ने भी महाभारत के सिद्धांत को थोड़ा परिवर्तन के साथ मत्स्य न्याय का उदाहरण देते हुए वैवस्वम के पुत्र मनु को नृपतंत्र का जन्म दाता माना है।

कारण जो भी रहा हो, छठीं शताब्दी ई. पू. तक नृपतंत्रीय व्यवस्था अपने पूर्ण विकसित अवस्था में आ चुकी थी।

# 6

# महाजनपदों की अर्थव्यवस्था और व्यापार

भारत का आर्थिक विकास सिंधु घाटी सभ्यता से आरम्भ माना जाता है। सिंधु घाटी सभ्यता की अर्थव्यवस्था मुख्यत: व्यापार पर आधारित प्रतीत होती है, जो यातायात में प्रगति के आधार पर समझी जा सकती है। लगभग 600 ई.पू. महाजनपदों में विशेष रूप से चिह्नित सिक्कों को ढालना आरम्भ कर दिया था। इस समय को गहन व्यापारिक गतिविधि एवं नगरीय विकास के रूप में चिह्नित किया जाता है। 300 ई.पू. से मौर्य काल ने भारतीय उपमहाद्वीप का एकीकरण किया। राजनीतिक एकीकरण और सैन्य सुरक्षा ने कृषि उत्पादकता में वृद्धि के साथ, व्यापार एवं वाणिज्य से सामान्य आर्थिक प्रणाली को बढ़ावा मिला।

अगले 1500 वर्षों में भारत में राष्ट्रकूट, होयसल और पश्चिमी गंग जैसे प्रतिष्ठित सभ्यताओं का विकास हुआ। इस अवधि के दौरान भारत को प्राचीन एवं 17वीं सदी तक के मध्ययुगीन विश्व की सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था के रूप में आंकलित किया जाता है। इसमें विश्व की कुल सम्पति का एक तिहाई से एक चौथाई भाग मराठा साम्राज्य के पास था, इसमें यूरोपीय उपनिवेशवाद के दौरान तेजी से गिरावट आयी।

आर्थिक इतिहासकार **अंगस मैडीसन** की पुस्तक द वर्ल्ड इकॉनमी: ए मिलेनियल पर्स्पेक्टिव (विश्व अर्थव्यवस्था: एक हजार वर्ष का परिप्रेक्ष्य) के अनुसार भारत विश्व का सबसे धनी देश था और 17वीं सदी तक दुनिया की सबसे बड़ी अर्थव्यस्था था।

भारत में इसके स्वतंत्र इतिहास में केंद्रीय नियोजन का अनुसरण किया गया है, जिसमें सार्वजनिक स्वामित्व, विनियमन, लाल फीताशाही और व्यापार अवरोध विस्तृत रूप से शामिल है। 1991 के आर्थिक संकट के बाद केन्द्र सरकार ने आर्थिक उदारीकरण की नीति आरम्भ कर दी। भारत आर्थिक पँजीवाद को बढ़ावा देन लग गया और विश्व की तेजी से बढ़ती आर्थिक अर्थव्यवस्थाओं में से एक बनकर उभरा।

## सिंधु घाटी सभ्यता

सिंधु घाटी सभ्यता विश्व का सबसे पहला ज्ञात स्थायी और मुख्य रूप से नगरीय आबादी का उदाहरण है। इसका विकास 3500 ई.पू. से 1800 ई.पू. तक हुआ जो उन्नत और संपन्न आर्थिक प्रणाली की ओर बढ़ा। यहाँ के नागरिकों ने कृषि, पालतू जानवर, तांबे, कांसा एवं टिन से तीक्ष्ण उपकरणों और शस्त्रों का निर्माण तथा अन्य नगरों के साथ इसका विक्रय करना आरम्भ किया। घाटी के बड़े नगरों हड़प्पा, लोथल, मोहन जोदड़ो और राखीगढ़ी में सड़कें, अभिविन्यास, जल निकासी प्रणाली और जलापूर्ति के साक्ष्य, उनके नगरीय नियोजन के ज्ञान को उद्घाटित करता है।

## प्राचीन और मध्ययुगीन विशेषताएँ

यद्यपि प्राचीन भारत में महत्त्वपूर्ण नगरीय जनसंख्या पायी जाती है, लेकिन भारत की अधिकतर जनसंख्या गाँवों में निवास करती थी, जिसकी अर्थव्यवस्था विस्तृत रूप से पृथक और आत्मनिर्भर रही है। आबादी का मुख्य व्यवसाय कृषि था और कपड़ा, खाद्य प्रसंस्करण तथा शिल्प जैसे हाथ आधारित उद्योगों के लिए कच्चा माल उपलब्ध कराने के अलावा खाद्य आवश्यकताएँ भी कृषि से पूर्ण होती थी। कृषकों के अलावा अन्य वर्गों के लोग नाई, बढ़ई, चिकित्सक (आयुर्वेद चिकित्सक अथवा वैद्य), सुनार, बुनकर आदि कार्य करते थे।

### *धर्म*

आर्थिक गतिविधियों को रूप देने में मुख्यत: हिन्दू धर्म और जैन धर्म प्रभावशाली भूमिका निभाते हैं।

तीर्थस्थल कस्बे जैसे इलाहाबाद, बनारस, नासिक और पुरी, जो मुख्यत: नदियों के तटों पर स्थित हैं व्यापार एवं वाणिज्य के केन्द्र के रूप में विकसित

हुये। धार्मिक उत्सव, त्योहार और तीर्थ यात्रा पर जाने की प्रथा ने तीर्थ अर्थव्यवस्था को उत्कर्ष पर पहुँचाया।

जैन धर्म में अर्थव्यवस्था को तीर्थकर महावीर और उनके सिद्धान्तों एवं दर्शन ने प्रभावित किया। इसके पीछे का इतिहास उनके दर्शन से समझाया जाता है। वो जैन धर्म के फैलाने वाले अन्तिम और 24वें तीर्थंकर थे। आर्थिक प्रसंग में उन्होंने 'अनेकांत (गैर-निरेपक्षतावाद) के सिद्धान्त से समझाया।

## *पारिवारिक व्यवसाय*

**सन् 1750 से 1913 के बीच विश्व के प्रमुख देशों का उत्पादन**

**प्रतिशत**

| | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| यूरोप | 1750 | 1800 | 1830 | 1860 | 1880 | 1900 | 1913 |
| यूरोप | 23.1 | 28.0 | 34.1 | 53.6 | 62.0 | 63.0 | 57.8 |
| यूके | 1.9 | 4.3 | 9.5 | 19.9 | 22.9 | 18.5 | 13.6 |
| जर्मनी | 2.9 | 3.5 | 3.5 | 4.9 | 8.5 | 13.2 | 14.8 |
| फ्रांस | 4.0 | 4.2 | 5.2 | 7.9 | 7.8 | 6.8 | 6.1 |
| इटली | 2.4 | 2.5 | 2.3 | 2.5 | 2.5 | 2.5 | 2.4 |
| रूस | 5.0 | 5.6 | 5.6 | 7.0 | 7.6 | 8.8 | 8.2 |
| नव-यूरोप | | | | | | | |
| नव-यूरोप | 0.1 | 0.8 | 2.4 | 7.2 | 14.7 | 23.6 | 32.0 |
| संयुक्त राज्य | | | | | | | |
| अमेरिका | 0.1 | 0.8 | 2.4 | 7.2 | 14.7 | 23.6 | 32.0 |
| ऊष्णकटिबंधीय | | | | | | | |
| ऊष्णकटिबंधीय | 76.8 | 71.2 | 63.3 | 39.2 | 23.3 | 13.4 | 10.2 |
| जापान | 3.8 | 3.5 | 2.8 | 2.6 | 2.4 | 2.4 | 2.7 |
| चीन | 32.8 | 33.3 | 29.8 | 19.7 | 12.5 | 6.2 | 3.6 |
| भारत | 24.5 | 19.7 | 17.6 | 8.6 | 2.8 | 1.7 | 1.4 |

भारत की अर्थव्यवस्था को मोटे तौर पर तीन भागों में बांटा जा सकता है–

1. ब्रिटिश काल से पहले,
2. ब्रिटिश काल में,
3. आजादी के बाद।

## ब्रिटिश काल के पूर्व भारत में उद्योग-धंधे

### *वस्त्र उद्योग*

वस्त्र उद्योग में सूती, ऊनी और सिल्क प्रमुख थे। सूती वस्त्र उद्योग बड़ा व्यापक था। इस उद्योग में बहुत से लोग लगे हुए थे। कपास का धुनना और कातना आमतौर पर घरों में ही होता था, परन्तु किन्हीं क्षेत्रों में इस कार्य में विशिष्टता प्राप्त हो गई थी। बारीक से बारीक सूत काता जाता था। **थेवेनॉट** को अहमदाबाद के समीप कारीगरों का एक समूह मिला, जिसका कोई निश्चित घर था और जो एक गाँव से दूसरे गाँव को काम की तलाश में जाता था। यह बिनौलों से कपड़ा निकालने, रूई को साफ करने और धुनने का कार्य करते थे। भारत के ग्रामों में ही नहीं, बड़े-बड़े नगरों में जुलाहे परिवार रहते थे जो वस्त्रनिर्माण का कार्य करते थे। तैयार कपड़े को धोने का कार्य धोबी करते थे जो तैयार कपड़े को धोने के लिए पहले गर्म पानी में औटाया जाता था। इसके पश्चात् उसे धोया और धूप में सुखाया जाता था। मोटे कपड़े को धोते समय धोबी उसे पत्थर पर पीटते थे। बारीक कपड़ों को पीटा नहीं जाता था। उन्हें धूप में सुखाने के लिये फैला दिया जाता था। कपड़ा धोने के लिये विशेष प्रकार के पानी की आवश्यकता पड़ती थी। नर्मदा नदी का पानी कपड़े की धुलाई के लिये इस नदी के पानी में लाया जाता था। नर्मदा नदी के तट पर बसा भड़ौंच नगर कपड़े की धुलाई के लिए प्रसिद्ध था। इस प्रकार ढाका के समीपवर्ती क्षेत्रों में बहुत से धोबी रहते थे, क्योंकि यहाँ का पानी कपड़े धोने के बड़ा उपर्युक्त था। कपड़े को नील से डाई किया जाता था।

भारतीय कपड़े की विदेशी में बड़ी माँग थी। विश्व के लगभग हर भाग में भारत से कपड़ा जाता था। ढाका की मलमल संसार-प्रसिद्ध थी। इसका धागा बहुत बारीक होता था जो चर्खे पर हाथ से काता जाता था। मलमल का थान एक अँगूठी के बीच से निकल सकता था। यूरोपीय यात्रियों ने इसकी भूरी-भूरी प्रशंसा की है। उच्च कोटि सी मलमल विभिन्न नामों के पुकारी जाती थी, जैसे मलमल खास (बादशाह की मलमल), सरकारे आली (नवाब की मलमल), आबे खाँ (बहता हुआ पानी) इत्यादि। भड़ौच में निर्मित 'बफ्ता' वस्त्र की सारे देश और विदेशों में बड़ी मांग थी। यात्री **टेवरनियर** के अनुसार, 'बफ्ता' विभिन्न रंगों में रंगा जाता था। रँगने के लिये इसे आगरा और अहमदाबाद लाया जाता था। 'बफ्ता' की लम्बाई 15 गज और चौड़ाई 25 इंच होती थी। अधिक चौड़ाई का

'बफ्ता' 36 इंच चौड़ा होता था। सफेद कपड़े का, जिसे अँग्रेज व्यापारी 'केलिको' कहते थे, बड़ी मात्रा में निर्माण होता था। इसके अतिरिक्त बढ़िया और कीमती कपड़े का भी निर्माण होता था। इसमें सोने और चाँदी के तार पड़े होते थे। सूरत, आगरा, बनारस और अहमदाबाद इस प्रकार के वस्त्र निर्माण के प्रमुख केन्द्र थे।

प्रिण्टेड कपड़े की भी बड़ी माँग थी। कपड़े पर प्रिन्ट या तो हाथ से ब्रुश की सहायता से किया जाता था, या लकड़ी पर बने छापे द्वारा, जिस पर ब्लाक बना होता था। कपड़ा, जिस पर ब्रुश से प्रिन्ट किया जाता था, 'कलमकार' कपड़ा कहलाता था। दूसरा तरीका, लकड़ी पर खोदकर छापा बना लिया जाता था, उसे रँग में भिगोकर कपड़े पर लगा दिया जाता था। इंगलिश ईस्ट इंडिया कम्पनी के व्यापारी इस कपड़े को 'प्रिन्ट' या 'चिन्ट' के नाम से पुकारते थे। लकड़ी के छापे की अपेक्षा हाथ से ब्रुश की सहायता से प्रिन्ट करना कठिन था।

बच्चे आमतौर पर बड़ों की 'प्रिन्ट' के कार्य में सहायता करते थे। 1670 ई. में **फायर** ने कोरोमण्डल तट की वर्णन करते हुए लिखा है- 'पेंटिंग का काम बड़ो के साथ-साथ छोटे बच्चों द्वारा भी किया जाता है। वे कपड़े को जमीन पर फैलाते हैं और अनेक प्रकार से बड़ों की इस कार्य में सहायता करते हैं।' पेंटिंग का कार्य आमतौर पर लकड़ी की बनी मेज पर या तख्ते पर होता था। वर्कशाप अधिकतर खुली जगह में होती थीं और ऊपर शेड पड़ा होता था। प्रिन्टेड क्लाथ के लिए कारोमण्डल तट बड़ा प्रसिद्ध था। यहाँ कपड़ा अन्य स्थानों की अपेक्षा सस्ता, अच्छा और चमकदार होता था।

ऊनी वस्त्र उद्योग के केन्द्र कश्मीर, काबुल, आगरा, लाहौर और पटना थे। कश्मीर के शाल, कम्बल, पट्टू और पश्मीना प्रसिद्ध थे। फतेहपुर सीकरी में ऊनी दरियाँ बनती थी। ऊनी वस्त्रों का प्रयोग सामान्यतः धनी वर्ग करता था। कीमत अधिक होने के कारण ऊनी वस्त्र का प्रयोग जन-साधारण की सामार्थ्य से बाहर था। जन-साधारण के लिये सस्ते और खुरदरे कम्बलों का निर्माण किया जाता था। इंगलिश ईस्ट इंडिया कम्पनी ने इंगलैड में बने ऊनी कपड़े के लिये भारत में बाजार बनाने का प्रयत्न किया, परन्तु उसे इसमें अधिक सफलता नहीं मिली।

सिल्क उद्योग के लिए बनारस, अहमदाबाद और मुर्शिदाबाद प्रमुख थे। बंगाल से न केवल बड़ी मात्रा में सिल्क का निर्यात होता था, बल्कि सिल्क का कपड़ा भी बनता था। बनारस सिल्क की साड़ी और सिल्क पर जरी के कार्य

के लिये प्रसिद्ध था। सूरत में सिल्क की दरियां बनती थीं। सिल्क के कपड़े पर जरी का काम भी सूरत में होता था।

देश-विदेश में भारतीय कपड़े की बड़ी माँग थी। भारतीय वस्त्र उद्योग संसार के विभिन्न भागों की कपड़े की माँग की पूर्ति करता था। यूरोपीय व्यापारियों के कारण भारतीय कपड़े के निर्यात को बड़ा बढ़ावा मिला। यूरोप भारतीय कपड़े की खपत का प्रमुख केन्द्र बन गया। कपड़े की माँग की पूर्ति स्थानीय बजाज करते थे। वे बड़े व्यापारियों से कपड़ा खरीदते थे। कपड़े के छोटे विक्रेता फेरी वाले थे जो न केवल नगर की गलियों में कपड़ा बेचते थे, बल्कि गाँव में भी कपड़े बेचते थे। गाँव में साप्ताहिक हाट या पेंठ लगती थी, जहाँ बजाज कपड़ा बेचते थे। स्थिति को देखते हुए वे आम तौर पर नगद पैसा लेने की माँग नहीं करते थे और खरीदार किसान फसल के समय उधार धन चुकाता था। कभी-कभी जुलाहे अपना कपड़ा लाकर बाजार में बेचते थे। कासिम बाजार के आस-पास रहने वाले जुलाहे अपना कपड़ा बेचने के लिए नगर के बाजार में लाते थे।

## आभूषण उद्योग

देश में आभूषण पहनने का आम रिवाज था। आजकल की तरह आभूषण पहनना सामाजिक प्रतिष्ठा का चिन्ह था। बादशाह, शाही परिवार एवं सामंत वर्ग रत्नजटिल आभूषणों का प्रयोग करता था। भारतीय नारी की आभूषण-प्रियता संसार प्रसिद्ध है। आभूषणों के निर्माण में निपुण कारीगर लगे हुए थे। आभूषण उद्योग देशव्यापी था। नारी के शरीर के विभिन्न अंगों के लिये अलग-अलग आभूषण थे। मुगलकाल में विभिन्न अंगों में पहनने के लिये निम्नलिखित आभूषणों का प्रचलन था-

सीसफूल सिर का आभूषण था। माथे के आभूषण टीका या माँग टीका, झूमर और बिन्दी थे। माथे पर बिन्दी लगाने का आम रिवाज था और बिन्दी में मोती जड़े होते थे। गले के आभूषण हार, चन्द्रहार, मोहनमाला, माणिक्य माला, चम्पाकली, हँसली, दुलारी, तिलारी, चौसर, पँचलरा और सतलरा थे। दुलारी दो लड़ों, तिलारी तीन लड़ों, चौसर चार लड़ों, पँचलरा पाँच लड़ों और सतलरा सात लड़ों का आभूषण था। कमर का आभूषण तगड़ी या करधनी था। इसमें घुँघरू लगे होते थे जो चलते समय बजते थे। अँगूठी या मूँदरी अँगूली का आभूषण था, जिसका बड़ा प्रचलन था। आरसी अँगूठे का आभूषण था, इसमें एक दर्पण लगा

होता था, जिसमें मुँह देखा जा सकता था। पौंची, कंगन, कड़ा, चूड़ी और दस्तबन्द कलाई के आभूषण थे। भुजा के आभूँषण बाजूबन्द या भुजबन्द थे। बाजुबन्द का संस्कृत नाम भुजबन्द था। पैरों के आभूषण पाजेब, कड़ा थे। पैरों की अँगुलियों में बिछुए पहने जाते थे। पैरों के आभूषण आमतौर पर चाँदी के बने होते थे, जबकि दूसरे आभूषण सोने के बनते थे। गरीब लोग चाँदी के आभूषण पहनते थे।

बहुमूल्य रत्नों का विदेशों से आयात भी होता था और दक्षिण भारत की खानों से भी हीरे निकाले जाते थे। टेवरनियर हीरों का एक प्रसिद्ध व्यापारी था। दक्षिण भारत में हीरों की एक खान का वर्णन करते हुए **टेवरनियर** लिखता है कि इसमें हजारों की संख्या में मजदूर काम करते थे। भूमि के एक बड़े प्लाट को खोदा जाता था। आदमी इसे खोदते थे, स्त्रियाँ और बच्चे उस मिट्टी को एक स्थान पर ले जाते थे, जो चारों ओर दीवारों से घिरा होता था। मिट्टी के घड़ों में पानी लाकर उस मिट्टी को धोया जाता था। ऊपरी मिट्टी दीवार में छेदों के द्वारा बहा दी जाती थी और रेत बच रहता था। इस प्रकार जो तत्त्व बचता था, उसे लकड़ी डण्डों से पीटा जाता था और अंत से हाथ से हीरे चुन लिये जाते थे।

मजदूरों को बहुत कम मजदूरी मिलती थी। टेवरनियर के अनुसार मजदूरी 3 पेगोडा वार्षिक थी। हीरे चोरी न हो जायें, इसके लिए 50 मजदूरों पर निगरानी रखने के लिए 12 से 15 तक चौकीदार होते थे। टेवरनियर एक घटना का वर्णन करता है जबकि एक मजदूर ने एक हीरे को अपनी आँखों के पलक के नीचे छुपा लिया था।

## लकड़ी का काम

जहाज, नावें, रथ और बैलगाड़ियाँ इत्यादि बनाने में लकड़ी का प्रयोग होता था। सूरत में पारसी लोग नावें और जहाज बनाने के कार्य में लगे हुए थे। मैसूर में सन्दल की लकड़ी पर सुन्दर कारीगरी का कार्य होता था। भवन-निर्माण में भी लकड़ी का प्रयोग होता था। माल ढोने में बैलगाड़ियों का प्रयोग होता था, इस कारण बड़ी संख्या में इनका निर्माण होता था। पालकी बनाने में भी लकड़ी का प्रयोग होता था। धनवान व्यक्ति और स्त्रियां पालकी में सवारी करते थे। नदियों में नावों द्वारा माल ले जाया जाता था। इससे प्रतीत होता है कि नावों का बड़ी संख्या में निर्माण होता था। **फिंच** ने आगरा से बंगाल तक 180 नावों के

बेड़े के साथ यात्रा की थी। ये नावें छोटी और बड़ी दोनों प्रकार की थी। गंगा पर 400 से 500 टन क्षमता वाली नावें चलती थीं। सूरत, गोवा, बेसीन, ढाका, चटगाँव, मसुलीपट्टम, आगरा, लाहौर और इलाहाबाद इत्यादि में नावें और जहाज बनाये जाते थे। काश्मीर लकड़ी की सुन्दर डिजायनदार चीजें बनाने के लिए प्रसिद्ध था।

## इमारती सामान एवं भवन-निर्माण

भवन निर्माण में ईंट, पत्थर, चूना, लकड़ी और मिट्टी का प्रयोग होता था। 'आइने-अकबरी' में भवन निर्माण में काम आने वाली विभिन्न वस्तुओं के मूल्य दिये हुए है। आईन के अनुसार ईटें तीन प्रकार की होती थी-पकी हुई, अधपकी और कच्ची। इनका मूल्य क्रमशः 30 दाम, 24 दाम और 10 दाम प्रति हजार था। लाल पत्थर का मूल्य 3 दाम प्रति मन था। कुशल कारीगर पत्थर को तराशनने का कार्य करते थे। साधारण जनता के मकान मिट्टी के बने होते थे और उन पर छप्पर पड़ा होता था। मिट्टी की बनी इन छोटी कोठरियों में परिवार के सब सदस्य रहते थे। इतना ही नहीं, उनके पशु गाय, बछड़ा भी उसी में रहते थे। परन्तु धनवान व्यक्ति शानदार मकानों में रहते थे। आगरा, दिल्ली और प्रान्तीय राजधानियों में अनेक विशाल भवन बनाये गये, जिनका निर्माण कुशल कारीगरों ने किया और जिसके फलस्वरूप अनेक राजों, मजदूरों, पत्थरतराशों, बढ़ई एवं अन्य कारीगरों को रोजगार मिला।

मुगल शासक महान भवन-निर्माता थे। बाबर ने बहुत-सी इमारतें बनवायें, किन्तु उनमें से केवल दो, पानीपत का काबुल बाग और संभल की जामा मस्जिद आज भी मौजूद हैं। बाबर के शब्दों में - 'मेरे आगरा, सीकरी, बयाना, धौलपुर, ग्वालियर तथा कोल के भवनों के निर्माण में 1491 पत्थर काटने वाले रोजाना कार्य करते थे।'

हुमायूँ का जीवन संघर्षमय रहा, फिर भी उसने पंजाब के हिसार, जिले में फतेहाबाद में एक सुन्दर मस्जिद बनवायी। शेरशाह के भवनों में उसका सहसराम का मकबरा और पुराने किले में बनी 'किलाए कुहना मस्जिद' प्रसिद्ध हैं। इनमें जामा मस्जिद और बुलन्द दरवाजा बड़े प्रसिद्ध हैं। अन्य भवन 'बीरबल का महल' सुनहला मकान या शाहजादी अम्बर का महल, तुर्की सुल्ताना का महल और दीवाने खास हैं। सिकन्दरा में अकबर का मकबरा भवन-निर्माण कला का अच्छा उदाहरण है। अकबर ने आगरा और लाहौर में किलों का निर्माण

कराया। आगरा के किले में प्रमुख भवन दीवाने आम, दीवाने खास और जहाँगीरी महल है। जहाँगीर की रूचि भवन-निर्माण की अपेक्षा चित्रकला की ओर अधिक थी, परन्तु उसकी कमी की पूर्ति उसकी प्रिय बेगम नूरजहाँ ने की। नूरजहाँ ने अपने पिता की स्मृति में 'इत्तमाद्-उद्दौला' का मकबरा बनवाया। यह संगमरमर का बना है और देखने में बड़ा सुन्दर है। नूरजहाँ ने लाहौर के समीप शाहदरे में जहाँगीर का मकबरा बनवाया।

मुगल बादशाहों में शाहजहाँ सबसे महान भवन-निर्माता था। उसके प्रसिद्ध भवन दिल्ली का लाल किला, जामा मस्जिद और ताजमहल हैं। लाल किले में दीवाने खास सबसे अधिक सुन्दर और अलंकृत है। यहाँ एक खुदे लेख में इसकी सुन्दरता का वर्णन इन शब्दों में किया गया है–

**गर फिरदौस बर रूये जमीं अस्त।**
**हमीं अस्तों हमीं अस्तों, हमीं अस्त॥**

यानी, यदि पृथ्वी पर कहीं स्वर्ग है तो वह यही है, यही है और यही है। शाहजहाँ ने ताजमहल अपनी प्रिय बेगम अर्जमन्द बानू की स्मृति में बनवाया। ताजमहल को बनाने और इसका नक्शा तैयार करने के लिये देश-विदेश के कारीगरों को बुलाया गया। ताजमहल के कई नक्शे प्रस्तुत किये गये और बादशाह ने अंत में एक नक्शे पर अपनी स्वीकृति प्रदान की। पहले ताजमहल का छोटा-सा मॉडल लकड़ी का बनाया गया, जिसे देखकर कारीगरों ने ताज का निर्माण किया। ताजमहल उस्ताद ईसा की देखरेख में तैयार किया गया, जिसे 1000 रु. मासिक वेतन मिलता था। इसके निर्माण पर 50 लाख रु। खर्च हुआ। औरंगजेब ने लाल किले में अपने प्रयोग के लिये मोती मस्जिद बनवायी और लाहौर में बादशाही मस्जिद का निर्माण कराया। औरंगजेब की मृत्यु के बाद मुगल निर्माण कला का ह्रास हो गया।

## चमड़ा उद्योग

चमड़ा जूते बनाने, घोड़ों की जीन, पानी भरने की मशक इत्यादि विभिन्न कार्यों में प्रयोग किया जाता था। दिल्ली चमड़ा उद्योग के लिये प्रसिद्ध था। चमड़ा पशुओं के खाल से प्राप्त किया जाता था। स्थानीय आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये यह उद्योग सारे देश में फैला हुआ था।

### *मिट्टी के बर्तन*

प्राचीन काल से ही मिट्टी के बर्तनों का प्रयोग होता आया है। कुम्हार मिट्टी के बर्तन, पानी पीने के लिये मटके और विभिन्न प्रकार के कलात्मक खिलौने बनाते थे। यह उद्योग सारे देश में फैला हुआ था। जयपुर, बनारस, लखनऊ, दिल्ली, ग्वालियर इस उद्योग के मुख्य केन्द्र थे।

### *हाथीदाँत का काम*

हाथी के दाँत की सुन्दर कलात्मक वस्तुएं बनायी जाती थीं, जैसे चूड़ियाँ, कंगन, शतरंज और शतरंज के मोहरे। विभिन्न प्रकार के खिलौने हाथीदाँत से बनाये जाते थे। दिल्ली और मुल्तान हाथी दाँत के काम के लिये प्रसिद्ध थे।

### *तेल और इत्र*

तेल कोल्हू से पेर कर निकाला जाता था। किसानों के घरेलू उद्योग से निकल कर यह भी एक व्यावसायिक उद्योग बन गया था। तेली इस कार्य को करते थे। कोल्हू को चलाने में बैल का प्रयोग किया जाता था। तेल को बाजार में अथवा तेल व्यापारियों को बेच दिया जाता था। तेल सरसों, तिल, गोला आदि का निकाला जाता था। इत्र का भी निर्माण किया जाता था। बनारस, लाहौर और कैम्बे इत्र-निर्माण के केन्द्र थे।

### *चीनी-उद्योग*

चीनी, गुड़, राब, गन्ने को कोल्हू से पेर कर बनायी जाती थी। गन्ने के रस को लोहे या मिट्टी के मटकों में भरकर आग पर गर्म किया जाता था। गन्ने की खोई गर्म करने के काम आती थी। इस प्रकार गुड़ और बूरे का निर्माण किया जाता था। आरम्भ में यह किसान परिवार का घरेलू उद्योग था। बाद में इस उद्योग ने विशिष्टता प्राप्त कर ली। देश में गुड़ और चीनी की बड़ी खपत थी। गन्ने की पैदावार उत्तर भारत के विस्तृत भू-भाग में होती थी। इस प्रकार यह उद्योग देशव्यापी था, फिर भी इस उद्योग के प्रमुख केन्द्र दिल्ली, आगरा बयाना, पटना, बरार और लाहौर थे। अंग्रेज और डच व्यापारी भारत से चीनी का निर्यात करते थे।

## धातु उद्योग

### *लोहा*

लोहा विभिन्न कायो में प्रयुक्त होता था। लोहे का प्रयोग प्रमुख रूप से हथियार बनाने के लिये होता था। यह हथियार आक्रमण और सुरक्षात्मक दोनों प्रकार के होते थे। बन्दूक, तोप, तलवार, भाले, कवच लोहे के बनते थे। गाँव में लोहार होता था जो ग्रामवासियों की स्थानीय आवश्यकताओं की पूर्ति करता था। खेती के औजार मुख्य रूप से लोहे से बने होते थे। किसानों के अतिरिक्त अन्य लोगों, जैसे लोहार, बढ़ई, राज, मजदूर, दर्जी, तेली, हलवाई, माली, कसाई, नाई को अपने कार्यों के लिये, जिन औजारों की आवश्यकता होती थी, वे पूर्ण रूप से या आंशिक रूप से लोहे के बने होते थे। घरेलू बर्तन जैसे कढ़ाई, करछरी, चिमटा और तथा इत्यादि लोहे के बने होते थे। घरेलू उपयोग में काम आने वाला चाकू लोहे का बना होता था। गोलकुण्डा में उच्चकोटि के लोहे और स्टील का निर्माण होता था। कालिंजर, ग्वालियर, कुमायूँ, सुकेत मण्डी (लाहौर) में लोहे की खानें थीं।

स्वतन्त्रता के बाद भारत का सकल घरेलू उत्पाद तेजी से बढ़ा है।

आजादी के बाद भारत के तत्कालीन प्रधान मंत्री जवाहरलाल नेहरू ने निर्गुट आन्दोलन (नॉन-अलाइंड मूवमेंट) को भारत की प्रमुख विदेश नीति बनाया। इस दौरान भारत ने सोवियत रूस से दोस्ती बढ़ायी। सोवियत रूस में समाजवाद था। यूँ तो भारत ने समाजवाद को पूरी तरह से नहीं अपनाया पर भारत की आर्थिक नीति में समाजवाद के लक्षण साफ देखे जा सकते थे। भारत में ज्यादातर उद्योगों को सरकारी नियंत्रण के अंतर्गत रखे जाने के लिए कई तरह के नियम बनाए गए। इस तरह कि नीति को कई अर्थशास्त्रियों ने लाइसेंस राज और इंस्पेक्टर राज का नाम दिया। बिजली, सड़कें, पानी, टेलीफोन, रेल यातायात, हवाई यातायात, होटल, इन सभी पर सरकारी नियंत्रण था। या तो निजी क्षेत्र को इन उद्योगों में पँजी निवेश की अनुमति नहीं थी या फिर बहुत ही नियंत्रित अनुमति थी। दूसरे कई उद्योगों में (जैसे खिलौने बनाना, रीटेल, वगैरह) बड़ी निजी कम्पनियों को पँजी निवेश की अनुमति नहीं थी। बैंकों को भी सरकारी नियंत्रण में रखा जाता था।

1951 से 1979 तक भारतीय आर्थिक विकास दर 3.1 प्रतिशत थी। पर कैपिटा विकास दर 1.0% थी। विश्व में इसे 'हिन्दू ग्रोथ रेट' के नाम से जाना

जाता था। भारतीय उद्योगों का विकास दर 5.4 प्रतिशत था। कृषि विकास दर 3.0 प्रतिशत था। कई कारणों से भारत की आर्थिक विकास बहुत कम था। मुख्य कारण थे–

कृषि उद्योग में संस्थागत कमियाँ,

देश में कम तकनीकी विकास,

भारत की अर्थव्यवस्था का विश्व के दूसरे विकासशील देशों से एकीकृत (इंटिग्रेटेड) न होना,

चीन और पाकिस्तान से हुए चार युद्ध,

बंग्लादेशी शरणार्थियों की देश में बाढ़,

1965, 1966, 1971 और 1972 पड़े हुए चार सूखे,

देश के वित्तीय संस्थानों का पिछड़ा हुआ होना,

विदेशी पँजी निवेश पर सरकारी रोक,

शेयर बाजार में अनेक बड़े और छोटे घपले,

कम साक्षरता दर,

कम पढ़ी-लिखी भारी जनसंख्या।

भारत में सन् 1985 से भुगतान संतुलन (बैलैंस ऑफ पेमेंट) की समस्या शुरू हुई। 1991 में चन्द्रशेखर सरकार के शासन के दौरान भारत में बैलैंस ऑफ पेमेंट की समस्या ने विकराल रूप धारण किया और भारत की पहले से चर्मरायी हुई अर्थव्यवस्था घुटनों पर आ गई। भारत में विदेशी मुद्रा का भंडार केवल तीन हफ्ते के आयातों के बराबर रह गया। यह एक बहुत ही गम्भीर समस्या थी।

## *1990 के बाद*

नरसिंह राव के नेतृत्व वाली भारतीय सरकार ने भारत में बड़े पैमाने में आर्थिक सुधार करने का फैसला किया। उदारीकरण कहलाने वाले इन सुधारो के आर्किटेक्ट थे मनमोहन सिंह। मन्मोहन सिंह ने आने वाले समय में भारत की अर्थनीति को पूरी तरह से बदलने की शुरुआत की। उनके किये हुए आर्थिक सुधार तीन श्रेणियों में आते हैं–

उदारीकरण (लिब्रलाइजेशन),

वैश्वीकरण (ग्लोबलाइजेशन),

निजीकरण (प्राइवेटाइजेशन)।

1996 से 1998 तक पी चिदम्बरम भारत के वित्त मंत्री हुए और उन्होंने मनमोहन सिंह की नीतियों को आगे बढ़ाया।

1998 से 2004 तक देश में भारतीय जनता पार्टी की सरकार ने और भी ज्यादा उदारीकरण और निजीकरण किया।

इसके बाद 2004 में आधुनिक भारत की अर्थनीति के रचयिता मनमोहन सिंह भारत के प्रधानमंत्री बने और पी चिदम्बरम वित्त मंत्री।

2014 में भाजपा सरकार ने भी इसी दिशा में अर्थव्यवस्था को आगे बढ़ाया। 2014 के आँकड़ों के अनुसार क्रयशक्ति समानता के आधार पर भारत विश्व की तीसरी सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था बन चुका था। 1 जुलाई 2017 से जीएसटी लागू होने से संपूर्ण भारत एकसमान बाजार में परिवर्तित हो गया।

इन सभी सालों में भारत ने काफी तेज तरक्की की। अर्थव्यवस्था में आमूल-चूल परिवर्तन हुए और भारत ने विश्व अर्थव्यवस्था में अपना स्थान बनाना शुरू किया।

### *भविष्य*

आने वाले दशकों में विश्व की अर्थव्यवस्था में भारी परिवर्तन होने के संकेत हैं। विश्व अर्थव्यवस्था में भारत का हिस्सा वर्तमान 5% से बढ़कर सन् 2040 में 20.8% हो जाने का अनुमान है।

**मैथ्यू जोसेफ** (कनिष्ट सलाहकार, ICRIER) द्वारा 2014 से 2040 तक विश्वअर्थव्यवस्था का अनुमान

| | 2011 | 2014 | 2020 | 2030 | 2040 |
|---|---|---|---|---|---|
| जर्मनी | 4.2 | 3.8 | 3.4 | 2.8 | 2.3 |
| यूएसए | 20.4 | 19.2 | 17.6 | 15.3 | 13.9 |
| जापान | 6.2 | 5.6 | 4.7 | 3.7 | 2.9 |
| चीन | 11.3 | 16.3 | 22.2 | 30.9 | 37.4 |
| भारत | 4.9 | 6.3 | 8.5 | 14.3 | 20.8 |

❐❐❐